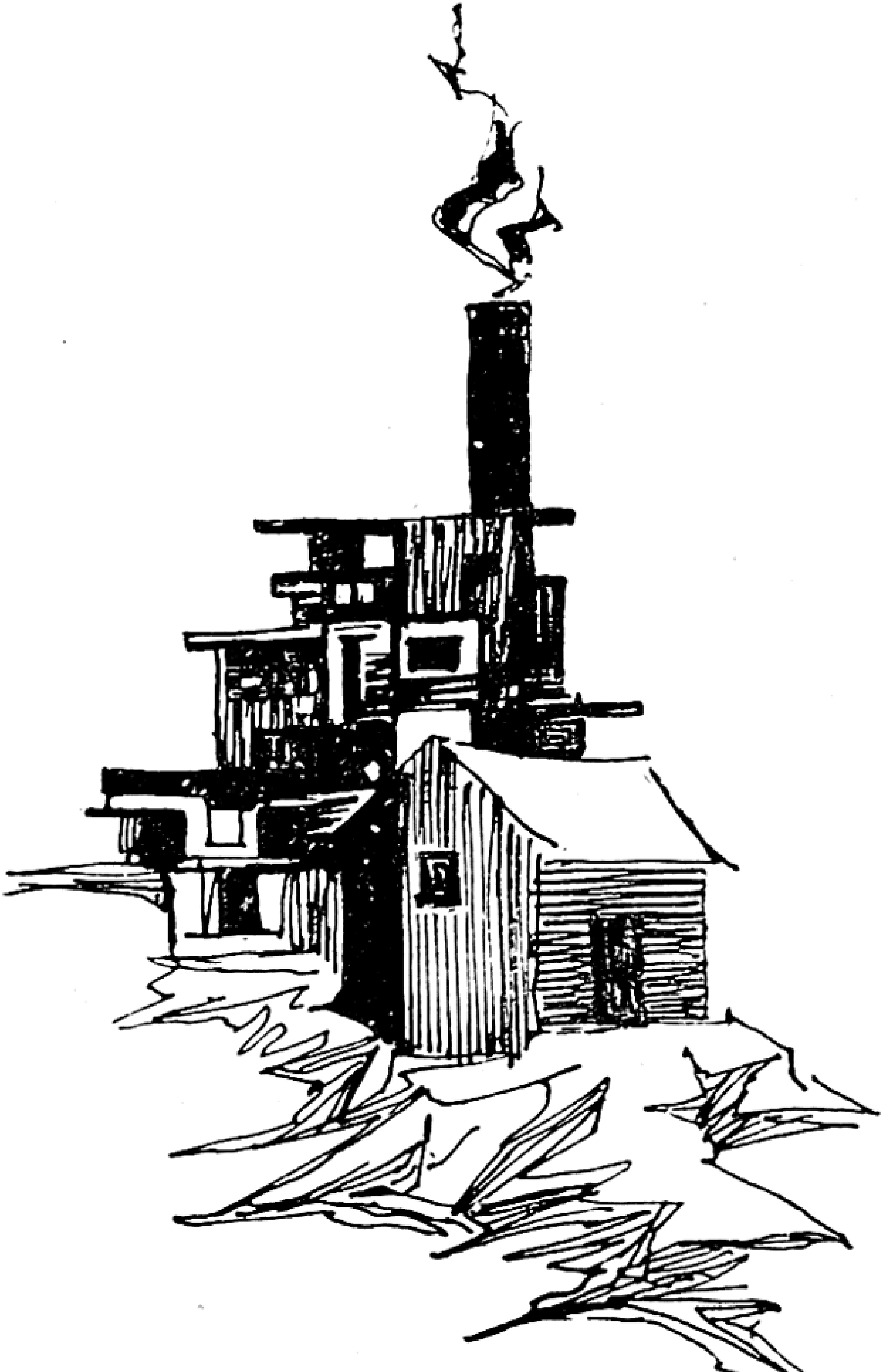
गुरुदत्त

नगर परिमोहन

Sh. Ghulam Mohamed & Son
Booksellers & Publishers
MAISUMA BAZAR.
SRINAGAR.



● प्रकाशक
ओरियन्टल बुक डिपो, नई सड़क,
दिल्ली ।

● मुद्रक :
वार्ष्णेय प्रिंटिंग प्रेस,
विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली-३२ ।

नगर परिमोहन — गुरुदत्त

कथानक की भूमि

आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ-साथ, जनता देहातों से निकल-कर नगरों की ओर आ रही है। इसमें कारण है, भौतिक विज्ञान में उन्नति।

सड़कें, नालियाँ, बिजली, पानी, भव्य भवन तथा अन्य सुख के सामान विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ नगरों में उपलब्ध होते जाते हैं। इन सब साधनों की प्राप्ति में धन व्यय होता है। अतएव नगरों में रहने और शारीरिक सुख-सुविधा प्राप्त करने के लिए धन अत्यन्त आव-श्यक वस्तु हो गई है।

परन्तु जहाँ नगरों में धन के व्यय करने को स्थान है वहाँ धनोपा-र्जन के स्रोत नहीं हैं। वास्तविक धन उत्पन्न होता है, परिश्रम और भूमि से। ये दोनों वस्तुएँ नगरों में नहीं हैं। न तो वहाँ भूमि है और न ही वहाँ पर परिश्रम करने वाले लोग हैं।

इस पर भी धन संचित मिलता है नगरों में। यह धन कैसे नगरों में आता है? इस प्रश्न का उत्तर ही नगर और गाँव की समस्या को सुल-झाने में सहायक हो सकता है। वास्तविक धन (Real wealth) का स्रोत नगर नहीं है। यह देहात अथवा उन स्थानों में, जो नगर के बाहर हैं, उत्पन्न होता है। लहलहाते खेतों में, भूमि के गर्भ में खोदी खानों में तथा सागर तल पर धन के स्रोत हैं। इन स्रोतों से धन निकलता है मानव-परिश्रम से। परिश्रम के फल को बढ़ाकर कई गुणा करने की शक्ति है मशीनों में।

इनमें से किसी का भी अटूट सम्बन्ध नगरों से नहीं है। प्राय: देखा जाता है कि नगरों में भी परिश्रम करने वाला वर्ग कुछ अधिक धन नहीं रखता। धन तो नगरों में उन्हीं के पास एकत्रित होता रहता है, जो किसी प्रकार की हेरा-फेरी करने में चतुर हैं।

नगरों में धन एकत्रित करने वाले जहाँ अपने परिश्रम और बुद्धि का प्रयोग करते हैं, वहाँ वे हेरा-फेरी के उपाय भी प्रयोग में लाते हैं। केवल परिश्रम और बुद्धि के प्रयोग से उतना कुछ प्राप्त नहीं हो सकता, जितना नगरों में सुख-सुविधा के लिए आवश्यक होता है।

इस प्रकार वास्तविक धन पैदा करने वाले तो, चाहे नगर में रहें चाहे देहात में, विज्ञान से प्राप्त सुख आनन्द का भोग नहीं कर सकते।

अतः समस्या यह है कि धन पैदा करने वालों के लिए विज्ञान-जनित सुख-सुविधा कैसे लाई जाए। इसके लिए विज्ञान से प्राप्त सुविधाओं को देहातों तथा उत्पादन करने वाले श्रमिकोंतकपहुँचाना ही नगरों के आकर्षण को मिटाने में समर्थ हो सकता है।

इस समस्या का विश्लेषण और इसका सुझाव ही इस पुस्तक का विषय है।

समस्या बहुरूपी है। सबके सब पहलुओं पर प्रकाश डालना तो सम्भव नहीं था। इस पर भी सिद्धान्त रूप में समस्या का निरूपण किया गया है।

वैसे तो यह उपन्यास ही है। इसमें पात्र, स्थान और काल सर्वथा काल्पनिक हैं। किसी भी व्यक्ति अथवा श्रेणी के मान-अपमान से इस कहानी का कोई सम्बन्ध नहीं।

—गुरुदत्त

प्रथम परिच्छेद

: १ :

सतलुज और बियासा नदियों के बीच के दुआवे में बियासा नदी के बाएं किनारे से कुछ दूर, एक ऊंचे टीले पर, कंडेवाला नाम से एक गांव बसा हुआ है। भूमि अत्यन्त ही उपजाऊ है और गांव में कई खाते-पीते परिवार रहते हैं।

भूमि के मालिक तो धन-धान्य से सम्पन्न हैं ही, साथ ही भूमिरहित कामे भी प्रसन्न हैं। गांव के लोग परिश्रमी, शान्तिप्रिय और ईमानदार हैं। यहां झगड़े भी बहुत कम होते हैं और इसका श्रेय, बहुत सीमा तक गांव के चौधरी सुन्दरसिंह को है।

चौधरी का घर गांव के बीचोंबीच एक खुले मैदान के किनारे पर था। घर पक्का, लम्बा-चौड़ा था और उसके तीन भाग थे जिनमें चौधरी के तीन लड़के अपने-अपने परिवार सहित रहते थे। चौधरी का परिवार अच्छा खासा बड़ा था। लड़के थे, उनकी पत्नियां थीं, और उनके बच्चे थे। सब मिल-मिलाकर बारह-तेरह प्राणी थे और सबके सब बड़े आनन्द से, परस्पर प्रेमपूर्वक रहते थे।

चौधरी की आयु पचास वर्ष से ऊपर हो चुकी थी और उसकी पत्नी का देहान्त हुए दस वर्ष के लगभग हो चुके थे। अब वह अपने सबसे बड़े लड़के सोहनलाल के साथ रहता था। चौधरी की एक लड़की भी थी, नाम था महिन्दर कौर। महिन्दर कौर गांव के बाहर विवाही गई थी, परन्तु विवाह के एक वर्ष के भीतर ही विधवा हो गई थी। उसकी भी एक लड़की थी, मीरा। महिन्दर और मीरा, दोनों चौधरी के घर में ही रहती थीं। सोहनलाल ने इनको भी एक कमरा दे रखा था।

चौधरी के पास एक सौ बीघा के लगभग भूमि थी, जिस पर कई प्रकार की पैदावार की जाती थी। भूमि अत्यन्त ही उपजाऊ थी। परिवार के सब युवक काम करते थे, जिससे चौधरी के घर में लक्ष्मी का वास था। देहाती बैंक में उसका पन्द्रह-सोलह हज़ार रुपया भी जमा था। घर

पर खलिहान अनाज से लदे पड़े थे और गाँव से दस मील के अन्तर पर एक शूगर मिल से, इसी वर्ष दिए गन्ने का दाम, लगभग अढ़ाई हज़ार रुपया अभी चौधरी ने लेना था।

सुन्दरसिंह बहुत ही कोमल स्वभाव और तीव्र बुद्धि का व्यक्ति था। इसी कारण वह बीस वर्षों से गांव के चौधरी के पद पर आसीन था। वह गाँव के प्रत्येक परिवार से परिचित था और सभी परिवारों में उसकी मानप्रतिष्ठा होती थी। सब जानते थे कि यदि कोई झगड़े की बात उसके पास लेकर जाए, तो वह तत्त्व की बात तुरन्त समझ जाएगा और पश्चात् निष्पक्ष तथा निर्लेप भाव से न्याय कर देगा। न्याय के साथ, वह झगड़े वालों को समझा-बुझाकर अपने निर्णय को मनवाने के लिए तय्यार भी कर लेता था।

चौधरी को अपनी दुहिता, अर्थात् महिन्दर कौर की लड़की मीरा, बहुत ही प्यारी लगती थी। लड़की जब अपने नाना के पास बैठती और अपनी बाल-बुद्धि की भोली-भाली बातें सुनाती तो चौधरी हँस-हँस कर दुहरा हो जाया करता था।

सोहनलाल का विवाह गाँव के एक लाला निरंजन की लड़की परमेश्वरी से हुआ था। परमेश्वरी देहात की लड़की होने के कारण एक देहाती घर के सब काम-काज भलीभांति कर सकती थी। वह गाय-भैंस के लिए सानी करना, उनको दुहना, गोबर समेटना, दही जमाना और दही मथकर मक्खन निकालना यह सब काम कुशलतापूर्वक कर सकती थी।

चौधरी तो स्वयं सिख धर्म की पोल लिए हुए था। वह केश रखता था। कड़ा, कच्छ, कंघा इत्यादि भी धारण करता था। उसके पिता ने, जब उसके लड़के के पश्चात् लड़के मरने लगे, तो गुरु ग्रन्थ साहब के सम्मुख यह मनौती की थी कि यदि उसका यह लड़का पाँच वर्ष तक जीवित रहा तो वह उसको सिख धर्म में दीक्षा दिलवाएगा। इस कारण जब सुन्दरसिंह पाँच वर्ष का हुआ तो उसको पौल पिला दी गई। तब से ही सुन्दरसिंह सिख धर्म की दीक्षा लिए हुआ था।

इस पर भी सुन्दरसिंह ने, जब उसका पहिला लड़का, सोहनलाल हुआ, तो अपनी पत्नी के कहने पर उसका मुंडन करा दिया और उसको सहजधारी बना दिया। गाँव के अन्य सिख परिवारों में इसकी भारी चर्चा हुई। उस समय सुन्दरसिंह का पिता जीवित था। उसके पास कुछ सिख पन्थानुयायी उल्हाना लेकर आए कि उसने पन्थ के साथ द्रोह किया है। सुन्दरसिंह के पिता ने उनको डाँटकर कहा, "गुरु के प्यारो! जब मैंने केशधारी न होते हुए अपने लड़के को केशधारी बनाया था, तब तो आप

में से किसी ने नहीं कहा था कि मैंने हिन्दू धर्म के साथ द्रोह किया है। किसी हिन्दू ने भी मुझे इस विषय में कभी कुछ नहीं कहा।"

"सरदार साहब ! हिन्दुओं में तो जान नहीं। उनका धर्म कच्चा सूत है। इससे जब कोई हिन्दू धर्म छोड़ता है तो वे आपत्ति नहीं उठा सकते।"

इस पर मालाराम, यह सुन्दरसिंह के पिता का नाम था, कहने लगा, "नहीं सरदार बहादुर ! यह नहीं। इसका कारण यह है कि हिन्दू प्रायः कट्टरपंथी नहीं होते। उनको पता है कि हिन्दू धर्म और सिख धर्म में कोई अन्तर नहीं। दोनों एक महान् पंथ की शाखाएँ ही हैं।"

"इस पर भी हैं तो दोनों भिन्न-भिन्न।"

"यदि भिन्न-भिन्न होतीं तो मेरी बीवी सुन्दर को सिख न बनाती और सुन्दरसिंह अपने पुत्र को सहजधारी न बनाता। यदि सोहन का हिन्दू बनाया जाना मूर्खता है तो सुन्दर का सिख बनाया जाना क्या मूर्खता नहीं थी ?"

यद्यपि इस युक्ति से सिखपंथियों को सन्तोष नहीं हुआ था, तो भी वे कुछ अधिक नहीं कह सके। इस पर सिख परिवारों में सुन्दरसिंह का मान वह नहीं रहा, जो इस घटना से पहिले था।

इस घटना के कुछ काल पश्चात् सुन्दरसिंह के पिता मालाराम का देहान्त हो गया। मां का तो पहिले ही स्वर्गवास हो चुका था। कालान्तर में सुन्दरसिंह के घर एक और लड़का हुआ पीछे एक लड़की हुई। सुन्दर सिंह की अन्तिम सन्तान भी एक लड़का ही थी। उसने अन्य दोनों लड़कों को सिख धर्म में सम्मिलित कर दिया। वास्तव में उसको सिख और हिंदू धर्म में कोई अन्तर समझ नहीं आया था, इस कारण उसका मन आया तो मोहनसिंह और रामसिंह, दोनों को, उसने पोल पिला दी।

समय व्यतीत होता गया और सिख से हिन्दू बनना और हिन्दू से सिख बनना बुरा समझा जाने लगा। जब सोहनलाल विवाह योग्य हुआ तो कोई सिख उसको लड़की देने के लिए तैयार नहीं हुआ। एक-दो परिवारों से बात चली तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि सोहनलाल केश रखले तो वे अपनी लड़की दे देंगे। इस समस्या के उत्पन्न होने पर एक दिन सुन्दरसिंह ने सोहनलाल से पूछ ही लिया, "क्यों सोहन ! विवाह के लिए सिख बनोगे ?"

सोहनलाल ने अपने पिता से पूछ लिया, "चाचा ! तुम क्या कहते हो ?"

"मुझको हिन्दू और सिख धर्म में कुछ भी अन्तर प्रतीत नहीं होता।

जैसा तुम्हारा मन करे, करो।"

सोहनलाल ने कुछ विचार कर कहा, "चाचा ! मैं भी यही समझता हूं। इस कारण मुझे सिख बनने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। विवाह तो पूर्व जन्म के कर्मों से होता है न। यदि मेरे भाग्य में लिखा होगा तो हो जाएगा।"

पश्चात् गाँव के लाला निरंजनदास की लड़की से विवाह निश्चित हुआ और हो गया।

सुन्दरसिंह के दूसरे लड़के मोहनसिंह का विवाह भी गाँव में ही हुआ था। उसकी पत्नी भी एक हिन्दू परिवार में से थी। नाम था केवली। महिन्दर कौर का विवाह जालन्धर के एक हिन्दू परिवार में हुआ था। विधवा होने के पश्चात् वह अपनी लड़की को लेकर गाँव आ गई थी और घर का कामकाज करती थी।

सुन्दरसिंह प्रातःकाल उठ, स्नानादि तथा पूजा से निवृत्त हो घर के बाहर चौपाल पर एक तख्तपोश पर जा बैठता। इस समय गाँव के लोग अपनी समस्याएं लेकर आ जाते। किसी घर में भाइयों में झगड़ा हो गया है, किसी विधवा के निर्वाह का प्रश्न होता था, कहीं पति-पत्नी में नहीं बन रही, खेतों में पानी का झगड़ा है अथवा खेतों की मेंड़ टूट गई है—इस प्रकार की देहाती समस्याओं का सुझाव सुन्दरसिंह करता था।

यह ठीक था कि सरकार की ओर से अधिकारी थे, जो इन झगड़ों में न्याय करने के लिए नियुक्त थे, परन्तु गाँव वाले अपने अनुभव से जानते थे कि सुन्दरसिंह की चौपाल पर न्याय सरकारी अधिकारियों से कहीं अधिक सुगमता, सरलता तथा कम व्यय करने से मिलता है, इससे लोग वहीं जाना लाभप्रद समझते थे।

कभी कोई मूढ़मति सुन्दरसिंह के निर्णय पर सन्तुष्ट न हो, न्यायालय जाने को तैयार हो जाता तब भी सुन्दरसिंह समझौता कराने में अति कुशल सिद्ध होता इस पर भी ऐसे अवसर कम ही आते थे। सुन्दरसिंह तो गाँव में ही रहता था, और प्रायः झगड़ों की वास्तविकता को अपने निजी ज्ञान से जानने के कारण, उसका निर्णय सत्य, न्याययुक्त और सन्तोषजनक होता था।

आज उसके सम्मुख एक जटिल समस्या उपस्थित हो गई थी। गांव में एक हलवाई था, कर्मचन्द। उसकी पहिली पत्नी के मरने के समय उसकी आयु पचास वर्ष के लगभग थी। उस समय उसने दूसरा विवाह कर लिया। उसकी दूसरी पत्नी की आयु अठारह वर्ष के लगभग थी। स्वाभाविक रूप में दोनों की बननी कठिन थी। कुछ वर्ष तक तो काम

चला पश्चात् झगड़ा होने लगा और पिछली रात कर्मचन्द की पत्नी, पति का घर छोड़ पड़ोस के एक काहनचन्द के घर चली गई थी। कर्मचन्द काहनचन्द के विरुद्ध शिकायत लेकर आया था।

सुन्दरसिंह ने काहनचन्द को, जो गांव में सुनार का काम करता था, बुला भेजा। वह आया तो उसके साथ कर्मचन्द की पत्नी भी चली आई। सुन्दरसिंह ने काहनचन्द से पूछा, "काहन भय्या! यह क्या बात है?"

"चौधरी! कल रात के बारह बजे लक्ष्मी ने मेरे घर का दरवाज़ा खटखटाया। मैंने दरवाज़ा खोला तो इसने बताया कि कर्मचन्द ने उसको पीटा है और कहता है कि जान से मार देगा, इस कारण मैं उसकी रक्षा करूं। मैंने इसे अपने घर के अन्दर बुला लिया और तब से यह मेरे घर में है।"

"कर्मचन्द! सुनाओ तुम क्या कहते हो?" चौधरी ने कर्मचन्द से पूछा।

"मैंने इसको पीटा ज़रूर था, परन्तु इतना नहीं कि यह मर जाती। वास्तव में यह स्त्री बदकार है।"

लक्ष्मी, यह कर्मचन्द की स्त्री का नाम था, ने कहा, "यह झूठ है।"

अब सुन्दरसिंह ने लक्ष्मी से पूछा, "अब अगर कर्मचन्द तुमको वचन दे कि वह तुम्हें नहीं पीटेगा, तो तुम इसके घर चली जाओगी क्या?"

"इसने मुझको इतनी बार पीटा है और वचन दे देकर तोड़ा है कि मुझको विश्वास नहीं आता।"

"मैं इस बात का साक्षी हूं कि यह वचन देता है। क्यों कर्मचन्द?"

"मैं इसे अपने घर नहीं ले जाऊंगा।"

"क्यों?"

"यह बदकार है।"

"तो फिर इसको छोड़ दो। यहां किसलिए आए हो?"

"मैं इस कारण आया हूं कि मुझे इसका खर्चा देने से छुट्टी मिल जाए। मैं किसी दूसरे की बीवी का खर्चा क्यों दूं?"

"तो मैं निर्वाह कैसे करूंगी। इस तरह तो यह मुझे पेशा करने के लिए विवश कर रहा है।"

"क्यों काहन! तुम इसको घर पर रख लोगे?" चौधरी ने पूछा।

"चौधरी! मैंने इसको बुलाया नहीं था। मेरा इससे किसी प्रकार का अनुचित सम्बन्ध नहीं। यह रोती हुई मेरे घर पर आई तो मैंने इस पर दया कर इसको आश्रय दिया। अब यदि यह मेरे घर रहेगी तो इसे निकाल दूंगा नहीं। रख लूंगा, परन्तु उस रूप में नहीं, जिसमें तुम

कहते हो।"

"कर्मचन्द ! तुमको यह सिद्ध करना पड़ेगा कि यह औरत बदकार है। तब ही तुम खर्च से बच सकते हो।"

"यह जिससे चाहे विवाह कर सकती है।"

"वह ऐसा करेगी अथवा नहीं, तुम्हारे कहने से नहीं होगा। जब तक यह विवाह नहीं करती, खर्चा तुमको देना होगा।"

"मान लो, मैं मर जाता हूं, तो फिर क्या होगा ? यह समझ ले कि मैं मर गया हूं और यह विधवा हो गई है।"

सुन्दरसिंह हंस पड़ा और कहने लगा, "कर्मचन्द ! हम मान लेते हैं कि तुम मर गए हो। हम तुम्हारी देह का संस्कार करने श्मशान भूमि ले जाते हैं और तुम्हारा दाह संस्कार कर लौट आते हैं। यह हमने समझ लिया। अब तुम्हारी युवा पत्नी से पूछते हैं, "बताओ लक्ष्मी ! तुम दूसरा विवाह करोगी ?" यह कहती है "नहीं।" तब वह अपने मृत पति की पूर्ण सम्पत्ति पर अधिकार कर लेती है। हम इससे प्रसन्न होंगे।"

काहनचन्द और लक्ष्मी परिस्थिति के इस स्पष्ट चित्रण को देख हंसने लगे। कर्मचन्द का मुख अपने दाह संस्कार की बात सुन पीला पड़ गया। सुन्दरसिंह ने लक्ष्मी से पूछा, "अच्छा लक्ष्मी ! बताओ, ऐसी परिस्थिति में क्या करोगी ?"

"मैं अपने मृत पति की सम्पत्ति पर अधिकार कर लूंगी और यत्न करूंगी कि एक धनी-मानी की विधवा बनकर रहूं।"

सुन्दरसिंह ने अब कर्मचन्द को सम्बोधन कर कहा, "अच्छा कर्मचन्द ! अब तुम बताओ कि हम तुमको मर गया मानें अथवा नहीं ?"

कर्मचन्द चुप था "लक्ष्मी और काहन हँस रहे थे। कर्मचन्द ने उठते हुए अपनी पत्नी को कहा, "उठो भाग्यवान ! चलेंचलो ।"

चौधरी ने पूछा, "पर तुमने इसको पीटा तो ?"

'नहीं चौधरी ! अब नहीं पीटूंगा।"

: २ :

सुन्दरसिंह के सम्मुख विकट समस्या तो उस दिन उपस्थित हुई, जिस दिन उसके सबसे छोटे लड़के रामसिंह की सगाई अमृतसर के एक क्लर्क शामसिंह की लड़की के साथ होने की बातचीत हुई।

कुछ दिन पूर्व रामसिंह दरबार साहब के दर्शन करने अमृतसर गया था। वहां इस सुन्दर युवक को शामसिंह ने देखा तो उसका मन उस पर

रीझ गया। उसने रामसिंह से उसके घर का पता पूछा तथा उसके माता-पिता का परिचय प्राप्त किया। रामसिंह ने परिचय देकर पूछ ही लिया, "आप किस लिए पूछ रहे हैं ?"

"बेटा ! लड़कियों के माता-पिता योग्य लड़कों की खोज में रहते ही हैं। मैं तुम्हारे पिता से मिलने आऊँगा।"

इतना कह शामसिंह रामसिंह से 'वाह गुरु की फतेह बुला, दूर खड़ी अपनी लड़की और पत्नी के पास चला गया। रामसिंह उनकी ओर देखने लगा। उसने देखा कि लड़की सुन्दर है। ऐसी लड़की उसने अपने गाँव तथा आसपास के गाँव में कोई देखी नहीं थी। शामसिंह उसकी पत्नी और लड़की रामसिंह को भली-भांति देखने के लिए उसके पास से निकले। रामसिंह दरबार साहब के सरोवर के किनारे खड़ा चार आंख से इनको देख रहा था। जब सब लोग उसके पास से निकले तो लड़की ने अपनी आंखें नीची कर रखी थीं।

रामसिंह को अब पश्चात्ताप होने लगा कि उसने इनका पता क्यों नहीं पूछा। परन्तु अब वे काफी आगे निकल चुके थे। उनका परिचय प्राप्त करने के लिए उनके पीछे-पीछे जाना उसे ठीक नहीं जँचा। वह मन मार कर रह गया और अपनी भाभियों तथा उनके बच्चों के लिए सामान खरीदने के लिए चल पड़ा।

उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा, जब उसने एक दिन खेत से लौटने पर, शामसिंह को अपने घर पर पिता से बातचीत करते हुए पाया। रामसिंह को आया देख सुन्दरसिंह ने उसे बुला लिया और पूछने लगा, "राम ! इधर आओ। इनको जानते हो क्या ?"

"हाँ पिताजी !"

"इनकी लड़की को देखा है क्या ?"

"जी !"

"ये उसका तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं।"

रामसिंह चुप खड़ा रहा।

चौधरी ने कहा, "मैंने इनको अभी हां नहीं की। मैंने इनका पता और काम पूछ लिया है। ये सरदार शामसिंह, जिला कचहरी में सब जज के 'रीडर' हैं। इनकी लड़की दसवीं श्रेणी तक पढ़ी है। तुम पढ़े हो पाँचवीं तक। ये कई पीढ़ियों से नगर में रहते आ रहे हैं और तुम हो देहात के रहने वाले। अब बताओ, तुम क्या कहते हो ?"

रामसिंह की आंखों के सम्मुख उस लड़की का चित्र आने लगा, जो सामने बैठे व्यक्ति के साथ, दो सप्ताह पूर्व दरबार साहब में उसको देख

ग्राँखें नीची किए हुए उसके पास से निकल गई थी। कुछ देर विचार कर उसने, बिना अपने पिता की बातों पर ध्यान दिए अथवा समझे, कह दिया, "ये चाहें तो मुझे यहाँ विवाह कर प्रसन्नता होगी।"

"देखो बेटा रामसिंह!" शामसिंह ने कहा, "मैंने तुमको देखा है। मेरी स्त्री और लड़की ने भी देखा है। मैंने तुम्हारे परिवार का पूरा परिचय भी, बीच में एक बार इस गाँव में आकर, पा लिया था। यह सब कुछ विचार कर ही आज मैं आया हूं। मैंने तो निश्चय कर लिया है और अब शेष तुम लोगों के विचार की बात है।"

रामसिंह ने अपने पिता को कुछ कहने का अवसर दिए बिना ही कह दिया, "तो फिर ठीक है। चाचा! विवाह आदि की तारीख तुम निश्चय कर लो। मैं राजी हूं।"

यह कह रामसिंह घर के अन्दर चला गया। शामसिंह ने अपने थैले में से एक रेशमी रुमाल में बंधे चौदह छुहारे और एक नारियल निकाल, एक सौ रुपये के साथ चौधरी के सामने रख दिया और कहा, "आप मेरे बड़े भाई के तुल्य हैं। यह स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करिए।"

इस प्रकार की परिस्थिति से सुन्दरसिंह विवश हो गया। उसका मन अभी भी इस सम्बन्ध के लिए सर्वथा तैयार नहीं हुआ था, परन्तु शामसिंह ने बात ऐसे ढंग से की थी कि अस्वीकार करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सका। सुन्दरसिंह ने रुपया और रुमाल उठाकर माथे से लगा लिया औरघर केअन्दर ले जाकर सोहन और मोहन की पत्नियों को बुलाकर सूचना दे दी।

पश्चात् विवाह की तिथि और विधि पर विचार होने लगा। विवाह की तिथि तो तय हो गई परन्तु विधि पर कुछमतभेद हो गया। शामसिंह अमृतसर में 'आनन्द' पढ़ाने के लिए कह रहा था। सुन्दरसिंह ने इसे स्वीकार कर लिया और साथ में कह दिया कि विवाह हिन्दू विधि से ही होगा। उसका कहना था कि आनन्द पढ़ाने के बाद उसी सायंकाल नव-ग्रह पूजा इत्यादि कराकर विवाह की कार्यवाही समाप्त हो।

शामसिंह को यह विचित्र प्रतीत हुआ परन्तु सुन्दरसिंह ने कहा, "सरदार जी! यह तो होगा ही आपकी बात हमने मान ली, आनन्द पढ़ा जाएगा। उसके पश्चात् लड़की हमारी हो जाएगी। हम भी जो रस्म पूरी चाहेंगे, कर लेंगे। आपको इसमें क्या आपत्ति है?"

"चौधरी साहब! यह आपत्ति मुझको नहीं। मुझको भय है कि लड़की आपत्ति करेगी। वह सोलहों आने गुरुमुख है।"

सुन्दरसिंह ने हँसते हुए कहा, "मैं भी गुरुमुख हूं। दसों गुरु महा-

राजों के विवाह जिस प्रकार हुए थे, वैसे ही मैं करने को कहता हूं। परंतु मैं पूछता हूं कि यह मतभेद क्या आरम्भ से ही चलेगा? देखिए, हम आपको अथवा आपकी लड़की को, जैसा आप लोग चाहें करने से मना नहीं करेंगे और हम आशा करते हैं कि आप हमें अपने विचारानुसार आचरण करने से मना नहीं करेंगे।"

"पर आप अपने साथ जो इच्छा हो करिए, लड़की को कैसे आप कह सकते हैं कि वह जिस बात को मानती नहीं, करे?"

"यह करने की हम उससे उसी प्रकार आशा करते हैं, जैसे वह हमसे वह करने की आशा करती है, जो हम मानते नहीं।"

सुन्दरसिंह की युक्ति का उत्तर शामसिंह के पास नहीं था। शामसिंह समझ गया कि आनन्द पढ़ाते समय वह यह पसन्द नहीं करेगा कि रामसिंह के पिता तथा भाई-बन्धु संस्कार में न बैठें। साथ ही उसको सन्देह था कि ऐसी अवस्था में रामसिंह भी मानेगा अथवा नहीं। अतएव वह सुन्दरसिंह की बात को मान गया।

इस प्रकार बात तय हो गई और शामसिंह की लड़की गुणवन्ती का सुन्दरसिंह के सबसे छोटे लड़के रामसिंह के साथ विवाह दो विधियों से हुआ।

अब चौधरी के घर में एक ऐसा तत्त्व आ पहुंचा, जो उनके परिवार की परम्पराओं को उचित नहीं समझता था। सुन्दरसिंह पौलधारी सिख होते हुए भी, नदी के किनारे शिव मन्दिर में जल चढ़ाने जाया करता था और वहां सूर्य भगवान को अर्घ्य भी देता था। गुणवन्ती नित्य प्रातः काल उठ जपजी साहब का पाठ किया करती और वह कच्छ, कड़ा आदि धर्म के चिह्नों को धारण करती। यहां तक तो साधारण बात थी, परंतु जब केवली के राम-राम कहने पर आपत्ति होने लगी तो घर के वातावरण से माधुर्य विलीन होने लगा।

महिन्दर कौर की लड़की मीरा कृष्ण-भक्ति के गीत गाया करती थी, जो गुणवन्ती से न केवल नापसन्द किए जाते थे, प्रत्युत हँसी भी उड़ाए जाते थे। परिणाम यह हो गया कि संयुक्त परिवार होते हुए भी तीनों भाई पृथक-पृथक् से अनुभव करने लगे। केवली और गुणवन्ती में तो केवल मौखिक सम्मान की बात ही शेष रह गई।

इस सब कुछ के होने पर भी कदाचित् विशेष कुछ न होता यदि गुणवन्ती घर की अन्य बहुओं की भांति घर का काम-काज कर सकती। वह नगर की रहने वाली थी और नगर के वातावरण में पली होने के कारण न तो वह गाय भैंस की सानी कर पाती, न ही दही मथ मक्खन

निकालने का उसे ढंग आता। वास्तव में इन कार्यों में उसे रुचि तक नहीं थी।

गुणवन्ती को उपन्यास पढ़ने का बहुत शौक था। और दिन-रात वह पुस्तकें पढ़ने में समय व्यतीत करती। भोजन करना, कपड़े पहनना और शृंगार करना उसके दिन भर के काम थे। कभी नौकरों को डांटने का कार्य भी हो जाता। इससे सुन्दरसिंह ने अपने बड़े लड़के सोहनलाल के साथ उसके घर में रहना आरम्भ कर दिया और महिन्दर तथा मीरा को भी अपने साथ रख लिया।

अब तीन घरों में तीन चूल्हे जलते थे। तीनों के पृथक्-पृथक् पशु थे, जिनसे दूध, दही, मक्खन निकाला जाता। केवली और परमेश्वरी स्वयं मक्खन निकालतीं, परन्तु गुणवन्ती ने इन कामों के लिए नौकर रखा हुआ था।

विवाह का पहिला वर्ष तो लाड़-प्यार में व्यतीत हो गया। गुणवंती के राम-राम पर, शिव मन्दिर में जल चढ़ाने पर तथा सूर्य भगवान को अर्घ्य देने पर हँसने को मज़ाक में उड़ाया जाता रहा, परन्तु उसके हंसने को सहते जाने का परिणाम यह हुआ कि वह परिवार के अन्य सदस्यों को अपने से छोटा, कम बुद्धिमान और पिछड़ा हुआ समझने लगी और सब लोगों का आपस का मेल-जोल कम होने लगा।

एक दिन, विवाह के लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात्, जब कि रामसिंह के घर एक लड़की हो चुकी थी, गुणवन्ती ने लड़की को दूध पिलाते हुए अपने पति से पूछा, "इस वर्ष कितनी आय हुई है आपको खेती से ?"

"खा-पीकर लगभग पांच हज़ार बच गया है।"

"आप तीनों भाई और आपके पिता खेतों में काम करते हैं। स्त्रियाँ घरों पर काम करती हैं। छाँटना, फूंकना, पीसना तक घर पर होता है। इस सारे परिश्रम करने पर भी पांच हज़ार तो कुछ भी न हुआ। मैं तो समझती हूं कि आप गाँव में अपनी जवानी व्यर्थ खराब कर रहे हैं।"

"परन्तु यहां हम सब स्वतन्त्र हैं। नगरों में नौकरी करने पर अफ़-सरों को खुश रखने के लिए उनकी खुशामद करनी पड़ती है।"

"ठीक है। पर नौकरी के अतिरिक्त भी तो बहुत से काम हैं, जिनसे कुछ ही वर्षों में लाखों पैदा किए जा सकते हैं।"

"पर उन कामों के लिए रुपया चाहिए।"

"इच्छा हो तो रुपये का प्रबन्ध भी हो जाता है। आपके पिताजी के पास भी तो रुपया होना चाहिए।"

"हमें कुछ काम भी तो नहीं आता। मैं क्या कर सकता हूं ?"

' काम भी सीखा जा सकता है। देखिए, जीवन में यही दस-पन्द्रह वर्ष काम करने के होते हैं। इसी आयु में कुछ कमा लो तो ठीक है। पीछे तो यह जीवन बोझा बन जाता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आप तो कुछ पढ़े-लिखे हैं नहीं। क्या आप अपने बच्चों को भी अपने जैसा अनपढ़ बनाना चाहते हैं ?"

अन्य युक्तियों ने कुछ प्रभाव उत्पन्न किया हो चाहे न परन्तु यह बच्चों को पढ़ा सकने की बात ने रामसिंह के हृदय को प्रभावित कर लिया। वह गांव छोड़ नगर जाने का विचार करने लगा।

: ३ :

"चाचा ! मैं यह देहात का जीवन पसन्द नहीं करता।"

"क्यों ?"

यह चर्चा रामसिंह ने, एक दिन मध्याह्न के भोजनोपरांत, चला दी। सोहनलाल दो बीघा भूमि पर हल चलाकर आया था और खाने के पश्चात् विश्राम करना चाहता था। मोहनसिंह गन्ने के खेतों में निराई करवाकर आया था। वह उतना थका हुआ नहीं था, जितना सोहन परन्तु उसका भी चित्त इस प्रकार की बातों में लग नहीं रहा था। इस कारण वह भी भोजन के पश्चात् विश्राम करने के लिए लेट गया था।

पिता जी "क्यों" के उत्तर में रामसिंह ने वह सब बात, जो गुणवन्ती ने उसे बताई थी, कह दी। साथ ही उसने यह कह दिया, "मैं नहीं चाहता कि मेरे बच्चे अनपढ़ रह जाएँ। यहाँ बच्चों की पढ़ाई का कुछ भी प्रबन्ध नहीं।"

"क्या करेंगे बच्चे पढ़कर ?"

"वे विद्वान और समझदार बनेंगे। किसी सरकारी दफ्तर में नौकर हो जायेंगे और फिर बड़े अफसर बन सकेंगे।"

"राम !" सुन्दरसिंह ने दृढ़ता से कहा, "तुम जाना चाहते हो तो मैं मना नहीं कर सकता। परन्तु मेरी सम्मति इसके विरुद्ध है। मुझे अपने बड़ों की कहावत स्मरण है कि 'उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, निखिद्ध चाकरी भीख गँवार।" मैं इस कहावत को बिल्कुल ठीक मानता हूँ।"

"चाचा ! किसी गंवार ने ही इस कहावत को बनाया प्रतीत होता है। भला चाकरी निखिद्ध क्यों है ? ये चाकर लोग तो आज राज्य करते हैं और हम लोग उनके सामने जाने तक में भय अनुभव करते हैं। कहीं

किसी अफसर के माथे पर त्यौरी चढ़ी कि लोग थर-थर काँपने लगते हैं।"

"चाकरी निकृष्ट इस कारण है कि जहाँ खेती राज्य है, वहाँ व्यापार उसका मंत्री है। चाकरी तो हरजाई के समान है।"

रामसिंह हँस पड़ा। उसने कहा, "कितना काल हो गया है चाचा! तुमको किसी नगर में गए?"

"मैं समझता हूँ कि बीस वर्ष हो गए हैं। तब अमृतसर में दरबार साहब के दर्शन के लिए गया था। दरबार साहब से चला आ रहा था कि एक बाजार में मकानों की खिड़कियों तथा दरवाजों पर अच्छे-अच्छे वस्त्र-आभूषण पहिने स्त्रियों को देख विस्मय में खड़ा रह गया। मैं समझ नहीं सका था कि ये स्त्रियाँ इस प्रकार सज-धजकर क्यों बैठी हैं। मैंने बाजार में एक चलने वाले से पूछा, "ये यहाँ बैठी क्या कर रही हैं?"

"वह हँसकर बोला, "ये रंडियाँ हैं? पेशा करती हैं।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

"उसने बताया, पैसा कमाने के लिए।"

मेरा प्रश्न था, क्या करती हैं पैसा कमा कर? यदि किसी गाँव में चली जाएँ तो इनको खाने पहिनने को अनायास ही मिल सकता है।

वह राही मेरी बात पर हँस कर चल दिया। मैंने विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि कदाचित् नगरों में रहन-सहन इतना मँहगा है इन बेचारियों को यह पापकर्म करना पड़ता है। तबसे मेरे मन में नगरों से घृणा हो गई।"

"चाचा! तुम तो बहुत बीते काल की बात करते हो।"

"तो क्या अब नगरों में वेश्याएँ नहीं रहीं? अथवा क्या अब नगरों का रहन-सहन बहुत सरल हो गया है?"

"यह तो मैं जानता नहीं। हाँ यह मैं जानता हूं कि सहस्त्रों ऐसे हैं, जो खा-पीकर भी मकान बनाते हैं, मोटरें रखते हैं, रेलगाड़ी के फर्स्ट, सैकेंड क्लास में सफर करते हैं रेशम पहनते हैं और कई प्रकार के आनन्द भोगते हैं।"

"तुम्हारा श्वसुर क्या वेतन लेता है?"

"एक सौ दस रुपया महीना।"

"कितने बाल-बच्चे हैं?"

"गुणवन्ती सबसे बड़ी थी। पांच और हैं। सब पढ़ते हैं। गुणवन्ती से छोटा एक लड़का है, जो कालेज में पढ़ता है। घर वालों का विचार है कि जज बनेगा।"

"ठीक है, परन्तु एक बात मैं पूछता हूं। तुम्हारे श्वसुर का वेतन के अतिरिक्त और भी आय का कोई ढंग है ?"

"मुझे पता नहीं।"

"आश्चर्य है कि यह सब कुछ एक सौ दस रुपये महीने में तो हो नहीं सकता।"

"गुणवंती कहती थी कि नगर में जाकर रहने से धन कमाने के उपाय स्वयमेव आ जाएँगे।"

"तो तुम जा सकते हो। इस पर भी मेरी राय है कि पहले अकेले चले जाओ और वहाँ पर जाकर देखो कि तुम क्या कर सकते हो। जब कुछ कमाने लगोगे तो बच्चों को ले जाना।"

"काम का निश्चय मैंने कर लिया है। गुणवंती के पिता को चिट्ठी लिखी थी। पिछली बार जब मैं वहाँ गया था, तब बातचीत भी हुई थी। उनकी राय है कि दरबार साहब के पिछवाड़े वाले बाजार में छल्ले मोतियों की दुकान कर लूं। दुकान का प्रबन्ध वह कर देंगे। गुणवंती का मामा मेरे साथ दुकान पर बैठेगा। हम दोनों दुकान करेंगे और उनका विचार है कि एक वर्ष में दस हज़ार से कम आय नहीं होगी।"

"यह छल्ले मोती का क्या मतलब है ?"

"नकली भूषण, नकली मोती और मनके आदि स्त्रियों के शृंगार का सामान।"

सुन्दरसिंह गम्भीर हो गया। उसने पूछा, "यह भी भला कोई व्यापार है ?"

"पर चाचा ! इसमें भी तो बीस हज़ार लग जाएगा। गुणवंती के पिता ने लिखा है कि सब रुपया मुझे लगाना पड़ेगा। उनका साला काम करेगा और रुपये में चवन्नी का पत्तीदार होगा।"

"पर इतना रुपया तुम्हारा श्वसुर देगा क्या ?"

"उन्होंने लिखा है कि कुछ तो वे दे ही सकते थे, परन्तु अब कोठी बनवाने के बाद तो उनके पास व्यापार में लगाने को कुछ नहीं है।"

"तुम्हारे पास कितना रुपया है ?"

"मेरे पास नक़द क्या हो सकता है ? जितना भी रुपया है, सब आपके नाम जमा है। उसमें से बीस हज़ार दे दो।"

"मेरे पास बीस हज़ार तो है नहीं। जहाँ तक मुझको मालूम है पन्द्रह हज़ार के लगभग होगा और वह भी तुम्हारे दूसरे भाइयों के पूछे बिना मैं दे नहीं सकता।"

"उनसे पूछने की क्या आवश्यकता है ?"

"इसलिए कि इसके पैदा करने में उन्होंने भी परिश्रम किया है। उन्होंने तुमसे अधिक परिश्रम किया है। सोहन को खेतों पर काम करते हुए पन्द्रह वर्ष हो गए हैं। जब सोहन काम करने लगा था, मेरे पास साठ बीघा भूमि थी। इन पन्द्रह वर्षों में मेरे पास साठ बीघा से सौ बीघा भूमि हो गई है। साथ ही धन एकत्रित होने लगा है।"

रामसिंह ने हिचकते हुए कहा, "तो चाचा ! पूछ लो। मैं जाऊँगा अवश्य। मेरा चित्त इस गाँव में अब लगता नहीं।"

"अच्छी बात है। जाओ दोनों को बुला लाओ। उनकी बहुओं को भी बुला लाना। अपनी बहू को भी बुला लो। सबके सामने तुम्हारी बात होगी। जैसा तुम लोग निश्चय करोगे, मुझे स्वीकार होगा।"

"चाचा ! भाभियों को बुलाने की क्या आवश्यकता है। मैं तो गुण-वन्ती को बुलाने की भी आवश्यकता नहीं समझता। औरतों को इन बातों से क्या मतलब ?"

"औरतें काम नहीं करतीं क्या ? रोटी के लिए आटा कौन पीसता है ? यह जो नित्य दूध, घी, लस्सी, मक्खन आदि खाते हो, कौन बनाता है। घर की सफाई-पुताई कौन करता है ? गोबर कौन इकट्ठा करता है, कपड़े कौन सीता है। तुम्हारी बीवी पढ़ी हुई तो है, परन्तु एक कुर्त्ता तो सी नहीं सकती। कुर्त्ते के बटन लगाते समय सूई उंगली में चुभो लेती है। जो ये सब काम करती हैं, उनको भी सम्मति देने का पूरा अधिकार है।"

विवश रामसिंह को सबको बुलाना पड़ा। यद्यपि सोहनलाल और मोहनसिंह इस समय विश्राम कर रहे थे, इस पर भी पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सके। सब एकत्रित हो गए।

: ४ :

सुन्दरसिंह ने गाँव के स्कूल के मास्टर जगतराम को भी बुला लिया मास्टर चौधरी के एहसान के नीचे दबा हुआ था, इस कारण आज्ञा पाते ही वह स्कूल बंद कर चला आया। जब रामसिंह ने मास्टर को अपने पिता के पास बैठे देखा तो विस्मय में मास्टर का मुख देखने लगा। सुन्दरसिंह ने उसका आशय समझ कहा, "राम! मैंने मास्टर को बुलाया है। रुपये पैसे की बात होने वाली है, इस कारण किसी हिसाब-दान को बुलाकर बात करनी ठीक थी।"

"पर चाचा ! मैं घर की बात बाहर के लोगों के सामने नहीं करना

चाहता।"

"जब घर के लोग झगड़ा करने बैठें, तो कोई बाहर का साक्षी भी रहना चाहिए।" मुझे मास्टर की सूझ-बूझ पर विश्वास है। इसी कारण इसको मैंने बुलाया है।"

सब स्त्रियां-पुरुष एकत्रित हो गए। सुन्दरसिंह ने सबको बैठाकर कहा, "राम को देहात का जीवन पसन्द नहीं। इस कारण यह अमृतसर जाकर दुकान करना चाहता है। दुकान के लिए रुपया चाहिए। इसने बीस हज़ार रुपया मांगा है।"

सोहनलाल के कान में यह बात पहुंच चुकी थी कि गुणवन्ती रामसिंह को देहात से ले जाने का यत्न कर रही है। इस कारण उसने इस विषय पर पहिले ही विचार कर रखा था। सोहनलाल की स्त्री भी परिस्थिति से अवगत थी। मोहनसिंह और उनकी पत्नी केवली के लिए यह एक नवीन समाचार था। महिन्दर कौर, यद्यपि अपने पिता की सम्पत्ति में अपना कोई अधिकार नहीं समझती थी, इस पर भी, अपने पिता के घर में आश्रय पाने के कारण, घर की भलाई और बुराई से अपना घना सम्बन्ध समझती थी।

मोहनसिंह ने पूछा, "किस चीज़ की दुकान की जाएगी?"

"औरतों के शृंगार के सामान तथा नकली भूषणों की।"

इस पर सब हँसने लगे। मोहनसिंह ने कहा, "चाचा! मैं समझता था कि हमारे खेतों में जो अन्न अनाज है, उसके बेचने की दुकान होगी।"

इसका उत्तर रामसिंह ने दिया, "यह अन्न अनाज का काम तो कुलियों का है। मेरे से यह नहीं हो सकेगा।"

सोहनलाल ने पूछा, "पर राम! भूषणों और शृंगार के समान के विषय में तुम क्या जानते हो?"

"मुझे एक जानने वाला पत्तीदार मिल गया है।"

"कौन है वह?"

"गुणवन्ती का मामा है, कृपालसिंह।"

"वह तो आवारागर्द है। इतना बड़ा हो गया है और कुछ भी काम नहीं करता।"

इस पर गुणवन्ती ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "मामा आवारागर्द नहीं है। अभी तक तो वह काम सीखता था। उसके पिता के पास रुपया होता, तो वह अब तक काम चलाता होता।"

"तो फिर वह पत्तीदार कैसे बनेगा?"

"रुपया हमारा लगेगा। वह दुकान का काम जानता है। उसका

दकान चलाने में सहायक होगा। इसके लिए हम उसे चार आने पत्ती देंगे।"

"तो सब रुपया हमको ही देना होगा ?"

'हाँ।" रामसिंह का उत्तर था।

"चाचा ! क्या हमारे पास इतना रुपया है ?" सोहनलाल ने पूछा।

"रुपये का प्रबन्ध हो जाएगा।"

"तो दे दिया जाए।"

परन्तु मोहनसिंह ने आपत्ति उठा दी, "हम न तो दुकान करने में रुचि रखते हैं और न ही दुकानदारी करना जानते हैं। इस कारण राम ने यदि दुकान करनी है तो अपने रुपये में से अपनी जिम्मेदारी पर कर ले।"

"पर मेरे पास तो रुपया है नहीं।"

"तो चाचा यदि दे दें तो उनसे ले लो।"

"कैसे ले लूं ?"

सुन्दरसिंह ने सोहनलाल से पूछा, "तुम क्या कहते हो सोहन ?"

"चाचा ! रुपया है तो दे दो। उधार लेकर मत देना।"

"मैं पूछता हूं कि दिया हुआ रुपया किस रूप में होगा। यह रामसिंह के भाग का रुपया होगा, उधार होगा, दान-दक्षिणा होगी अथवा दुकान परिवार की होगी और रुपया जो उसमें लगेगा, परिवार का होगा ?"

मोहनसिंह ने तुरन्त उत्तर दे दिया, "जायदाद का बँटवारा कर राम का भाग दे दिया जाए।"

इस समय मास्टर जगतराम ने सुन्दरसिंह से स्वीकृति लेकर कहा, "जहाँ तक मुझको पता है, चौधरी साहब की सम्पत्ति केवल बीस बीघा भूमि पैतृक है। शेष भूमि और बैंक में जमा रुपया चौधरी का अपना कमाया हुआ है। साथ ही भूमि तो उसकी ही मानी जानी चाहिए, जो इस पर परिश्रम कर सकता है। इस कारण चौधरी यदि न देना चाहे तो उसके लिए भी इन्कार कर सकता है। इस अवस्था में रामसिंह के भाग में केवल सात बीघा भूमि आती है।"

इस पर सोहनलाल ने कह दिया, "मास्टरजी ने तो कानून से हमारे अधिकारियों पर सीमा बता दी है। मास्टर जी की बात ठीक तो है परन्तु मेरा निवेदन यह है कि रामसिंह जितना मांगता है, दे दिया जाए।"

सुन्दरसिंह ने कहा, "मेरे पास अट्ठारह हजार रुपया बैंक में और गन्ना मील वालों के पास है। वह सब मैं राम को दे दूंगा। बताओ किस को आपत्ति है?"

मोहनसिंह ने कहा, "रुपया राम के नाम का होना चाहिए और उससे लिखा-पढ़ी करा लेनी चाहिए।"

"किस बात की लिखा-पढ़ी करा लेनी चाहिए?"

"शेष सम्पत्ति से फारखती।"

"मैं अभी बँटवारा नहीं कर रहा। यह तो नकद धन में से दे रहा हूँ।"

"पर चाचा! इसमें हमारे परिश्रम का भी तो भाग है।"

"तो तुम भी अपना भाग चाहते हो?"

"हाँ।"

"तो तुम भी घर से जाना चाहते हो?"

"हाँ, यदि चाचा घर से जाने वालों को रुपया बांट रहे हों, तो मैं भी जाऊँगा।"

"तो जितना नकद है, तुम दोनों आधा-आधा बांट लो।"

रामसिंह ने कहा, "पर आधे में से मेरा काम नहीं चलेगा।"

"तो मैं क्या करूँ? तुम दोनों भाई परस्पर निर्णय कर लो।"

मोहनसिंह ने कहा, "चाचा! खेत बेच दिए जाएँ।"

"मैं खेतों में से एक इंच भूमि भी नहीं बेचूंगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि खेत अमूल्य है। इसका मूल्य कोई नहीं दे सकता।"

"आखिर हमने भी तो मोल लिए थे। बाबा के समय तो बीस बीघा ही थे।"

"जिन्होंने बेचे थे, मूर्खता की थी। मैं वही मूर्खता नहीं करूँगा। जानते हो, वह बबूल के पेड़ के चारों ओर की भूमि कमूं चमार की थी। उसने अपनी लड़की के विवाह पर अपनी बिरादरी को भोज दिया था? और उसमें सैकड़ों रुपयों की शराब पिला दी थी। बरातियों को पगड़ियाँ दी थीं, लड़के के माता-पिता को विवाह में नकद इतना दिया था कि गाँव के खत्री महाजन भी दांतों तले उँगलियाँ दबाने लगे थे। उसने अपनी चादर से अधिक पांव पसारे तो उसे भूमि बेचनी पड़ी।

"इसी प्रकार वह स्टेशन को जाने वाली पुलिया के पार वाली भूमि रघुबीरसिंह ने बेची थी। वह भी हमारे राम की तरह नगर में व्यापार करने गया था। सुना है कि वह सिट्टा करता था और फिर जब उसकी

कुर्की हुई तो भूमि नीलाम हो गई और मैंने बोली देकर ले ली।

"मैं ऐसी कोई बात नहीं करना चाहता, तो फिर भूमि क्यों बेचूं।"

अब फिर मास्टर जगतराम ने कहा, "मोहनसिंह! तुम तो कह रहे थे कि तुमको दुकान में कोई रुचि नहीं और न ही तुम दुकानदारी जानते हो। तो फिर रुपया किस लिए मांग रहे हो?"

"मैं रुपया दुकान करने के लिए नहीं मांग रहा। मैं तो इस कारण मांग रहा हूँ कि चाचा बाँट रहे हैं।"

"तो जितना उनके पास है, उतना ही तो बांट सकते हो?"

"पर भूमि भी तो है?"

"जब भूमि बांटने लगेंगे तो भूमि ले लेना। जब जी चाहे वेच देना और जो रखने की इच्छा हो तो रख लेना।

"मैं तो यह कह रहा हूँ कि राम भूल कर रहा है, जो नगर में व्यापारकरने जा रहा है। चाचा उसको रुपया देकर भूल करने में सहायता दे रहे हैं। मैं यह नहीं चाहता।"

"तो तुम ईर्ष्यावश रुपया मांग रहे हो?"

"ईर्ष्या नहीं मास्टर जी! यह तो बाधा डालना कहा जा सकता है।"

"यह तो और भी बुरी बात है। ईर्ष्या करनी मूर्खता है, परन्तु किसी के काम में बाधा डालना तो धूर्तता है। मैं तो तुमको ऐसा नहीं समझता था।"

इस पर सोहनलाल ने कहा, "चाचा! बहस व्यर्थ है। मैं समझता हूं कि राम भूल कर रहा है परन्तु राम के विचार में यह भूल नहीं, प्रत्युत बुद्धिमत्ता है। इसमें मेरा विचार यह है कि राम को अपनी इच्छानुसार काम करने का अवसर देना चाहिए। रुपया चाचा का है, मेरा है अथवा मोहन का है, यह विचारणीय बात नहीं। चाचा घर के बड़े हैं, जैसा उचित समझें कर दें। मुझको आपत्ति नहीं होगी।"

"यदि राम नगर में जाकर उन्नति करता है, तो मुझको दुःख क्यों होगा और जैसा मैं समझता हूँ, यदि वह वहाँ पर हानि उठाता है, तो मेरा भाई है। मैं उसकी यथाशक्ति सहायता करूंगा।"

"तो तुम मुझको स्वीकृति देते हो कि मैं यह रुपया राम को दे दूं?" चौधरी ने पूछा।

"चाचा! यदि राम उन्नति करना चाहता है तो उसकी सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है।"

"क्यों मोहन?"

"मुझे जो कहना था, कह दिया न। इसको जो कुछ भी समझें, मैं राम की बात पसन्द नहीं करता।"

"क्यों परमेश्वरी! तुम क्या चाहती हो?"

"मैं वही कहती हूँ, जो आप करना चाहते हैं। मैं आपका अधिकार समझती हूँ कि आप जिसको जो चाहें दें। यदि कभी हमें ऐसा अनुभव हुआ कि हमारे साथ अन्याय हो रहा है, तो हम घर से पृथक् हो जायेंगे और जो कुछ भी अपनी दो बाहों से पैदा कर सकेंगे, कर लेंगे।"

"तो तुम राम को यह रुपया देना अपने साथ अन्याय नहीं मानती?"

"राम तो अपना ही है। उसको रुपया देना अन्याय कैसे हो गया? कुछ अधिक दिया या कम दिया, भला यह भी कोई झगड़े की बात है!"

"केवली! तुम क्या कहती हो?"

"राम भैया भूल कर रहे हैं, परन्तु उनको इस भूल का ज्ञान कराने के लिए यह बहस व्यर्थ है। राम भैया से सहानुभूति और सहयोग आवश्यक है। इसी से वह हमारी बात समझ सकेगा।"

"महिन्दर कौर! तुम्हारा क्या विचार है?"

"चाचा! रुपया दे दो। यह तो हाथ की मैल है, फिर एकत्रित हो जाएगा।"

"मास्टर जी! आप क्या कहते हैं?"

"चौधरी! पहिले तो मैं अपने मन में इस बात के न्याय और अन्याय पर विचार कर रहा था, परन्तु मुझे केवली भाभी ने भारी शिक्षा दी है। इससे मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया है। जो ये कहती हैं कर दो, यही ठीक है।"

: ५ :

मास्टर जगतराम अमृतसर का रहने वाला था। जब वह गाँव में आया था, तो बहुत ही फटेहाल में था। जूता चलते-चलते घिस चुका था, कपड़ों में पैवन्द लग रहे थे, और मैले थे। भूख से उसकी गालें पिचक रही थीं।

सुन्दरसिंह मन्दिर में जल चढ़ाने गया तो मन्दिर के बाहर चौतरे पर इस अवस्था में एक व्यक्ति को पड़े देख समझा कि कोई भिखारी है, और रात व्यतीत कर रहा है। जल चढ़ाकर भिखारी को कुछ देने के विचार से वह उसके पास आकर खड़ा हो गया। वह सो रहा था। चौधरी ने उसे पुकारा, "उठो भाई! दिन चढ़ आया है।"

वह उठकर बैठ गया और विस्मय में अपने समीप एक प्रौढ़ावस्था के व्यक्ति को खड़े देख बोला, "ओह ! क्षमा करिए। थकावट के कारण नींद नहीं खुली।"

"कहाँ से आ रहे हो ?"

"कल प्रातःकाल जालन्धर से चला था। रात देरी से यहाँ पहुँचा था। चांदनी रात में अभी और चलने का विचार था, परन्तु थकावट के कारण आगे नहीं बढ़ सका। यहाँ चौतरे पर विश्राम करने के लिए लेटा तो नींद आ गई।"

इस वार्तालाप से चौधरी समझ गया कि यह कोई भिखारी नहीं है। इस कारण उसने आगे पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?"

"उत्तर की ओर।"

चौधरी मुस्कराया और पूछने लगा, "कौन से गाँव को जाना है ?"

"मेरी यात्रा लक्ष्यहीन है। विचार आया कि उत्तर को चलता जाऊँ। कहीं तो पहुँचूंगा ही।"

"अच्छी बात है। उठो और स्नानादि से निवृत्त हो जाओ। वह देखो, सामने जो पक्का मकान दिखाई देता है, वहाँ चले आना। भोजन करना और इच्छा हो तो एक आध दिन आराम करलेना। तुम बहुत ही थके मालूम होते हो।"

उस व्यक्ति यह निमंत्रण आश्चर्य में डालने वाला था। इस पर बिना कुछ आगे कहे वह उठा और शौचादि के लिए नदी के किनारे-किनारे दूर निकल गया। चौधरी अर्घ्य देकर घर लौट गया। दो घंटे के पश्चात् मास्टर भी स्नान कर वहाँ आ पहुँचा। चौधरी चौपाल पर बैठा गाँव का एक झगड़ा सुन रहा था। एक आदमी बता रहा था, "चौधरी! नानक ने पिछले वर्ष मुझसे खेतों में काम लिया था। इसने रोटी और चार रुपया महीना देने का वचन दिया था। छः महीने काम करा कर इसने मुझे छुट्टी दे दी और अभी तक एक पैसा नहीं दिया।"

नानक ने कहा, "मैंने इसको वेतन देने को कहा था, परन्तु फसल होने पर खेतों में आग लग गई। फसल तो सारी जल गई। कुछ बचा ही नहीं तो वेतन कहाँ से दूं ?"

कामे का कहना था, "पर अब गन्ने की आय तो काफी हुई है। उसमें से वेतन देना चाहिए था।"

"चौधरी ! गन्ने की आय में से उनको वेतन दिया है, जिन्होंने उसमें काम किया है।"

"तो मैं कहाँ जाऊँ ?"

चौधरी ने बहुत सुन ली और समझ लीं। उसने निर्णय देने से पूर्व नानक से पूछा, "नानक ! कितना गन्ना हुआ है ?"

"पांच सौ मन मिल वालों ने तोला है।"

"तो इसका एक हज़ार रुपया तुमको मिल गया है क्या ?"

"अभी मिला नहीं। मैं कल भी गया था। मुंशी ने कहा है कि दो दिन ठहरकर आना, मिल जाएगा।"

"कितने आदमी इन खेतों में काम करते रहे हैं ?"

"चार।"

"क्या वेतन दिया है उनको ?"

"दो सौ रुपये के लगभग।"

"बीज मोल लेकर लगाया था या अपने ही खेत का।"

"अपने ही खेत का।"

"तो भाई ! गन्ने के खेत में तुमको पांच सौ नकद अवश्य बचा है। उसमें से इसका वेतन दे दो।"

"चौधरी ! वह तो मेरा भाग है। उसमें से मैं दे दूंगा तो मेरा गुज़र मुश्किल से होगा।"

सुन्दरसिंह ने मिन्नत भाव में कहा, "नानक ! गरीब पर दया कर अपने भाग में से ही इसकी मज़दूरी दे दो।"

"बहुत कठिन है चौधरी !"

इस पर मास्टर, जो सारी कथा सुन चुका था, बोल पड़ा, "नानक भाई ! यदि खेत को आग न लगती और फसल बच जाती तो कितनी पैदावार होती ?"

"खेत में गेहूं बोया था। पांच बीघा भूमि थी। उसमें दो सौ मन गेहूं होता।"

"क्या भाव पर बिकता ?"

"आजकल गेहूं का भाव साढ़े तीन रुपया मन है। मुझको उसमें सात सौ रुपया मिलता।"

"कितने आदमी काम करते थे उस खेत में ?"

"बस मैं और यह दो।"

"तो सुनो, सात सौ में से दस रुपए बीज का दाम, पचास रुपया लगान, तीस रुपया आबयाना और दो आदमियों का छः मास का परिश्रम अढ़तालीस रुपया। कुल एक सौ चालीस रुपया। अर्थात् बैलों इत्यादि का खर्चा पचास रुपया और डाल दें तो कुल लगभग दो सौ रुपया हुआ। इस प्रकार यदि खेत को आग न लगती तो तुम्हें पांच सौ

रुपया बच जाता। क्या तुम उस पांच सौ में से आधा इसको बांटने वाले थे?"

"नहीं, खेत तो मेरे हैं। लाभ मुझको होना चाहिए।"

"कितने के मोल लिए थे, खेत?"

"मोल नहीं लिए। ये हमारे खानदानी हैं।"

"अर्थात् तुमने इन पर एक पैसा खर्च नहीं किया। देखो भाई नानक! खेत अपने आप कुछ नहीं देते। इन पर परिश्रम करने से ही अनाज पैदा होता है। परिश्रम तुम दोनों ने की थी और पांच सौ में से इस बेचारे को चौबीस रुपए और तुमको पांच सौ रुपया?"

"पर मैं क्या कर सकता हूं?"

"तुम समझने का यत्न करो कि तुमको पांच सौ का लाभ क्यों हुआ और इसको केवल चौबीस रुपए क्यों मिलें। देखो, मैं बताता हूं: तुम लाभ में से इतना बड़ा भाग इसलिए लेते हो क्योंकि इसमें लाभ-हानि का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। कभी वर्षा कम हो गई और पाला पड़ गया तो लाभ कम हुआ और जब मौसम ठीक रहा तो फसल अच्छी हुई और लाभ अधिक हो गया। दोनों अवस्थाओं में काम करने वाले का वेतन वैसे ही रहता है। इसी प्रकार यदि खेत को आग लग गई है, तो इसको वेतन मिलना ही चाहिए। जैसे यह तुम्हारे लाभ में भागीदार नहीं, वैसे ही उसको तुम्हारी हानि में भी भागीदार नहीं होना चाहिए। इसको तो वेतन मिलना ही चाहिए।"

नानक को बात समझ में आ गई। मास्टर ने बात को और व्याख्या से समझाने के लिए कहा, "यह काम करने वाला तुम्हारे खेतों में पत्तीदार नहीं। यदि तुम्हारी भूमि अधिया पर दी हुई होती और फसल जल जाती, तो पत्तीदार होने से यह आदमी भी हानि उठाता। जब यह खेतों में पत्तीदार नहीं तो यह हानि क्यों उठाए?"

"तुम कौन हो जी?" नानक ने पूछ लिया।

मास्टर मुस्कराकर चुप कर रहा। अब तक सुन्दरसिंह को भी सारी परिस्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। उसने अपना निर्णय दे दिया, "बात ठीक है नानक! तुमको इसका वेतन देना ही चाहिए। बताओ कब दोगे?"

"चौधरी, तुम कहते हो तो गन्ने की रकम आने पर दूंगा।"

"हाँ देना। देखो, क्या नाम है तुम्हारा? सन्तू! एक सप्ताह के पश्चात् आकर बताना कि तुमको वेतन मिला है या नहीं।"

दोनों जब चले गए तो सुन्दरसिंह ने मास्टर की ओर ध्यान दिया।

वह वेश-भूषा से अभी भिखारी प्रतीत होता था। सुन्दरसिंह उसके युक्ति करने के ढंग से बहुत प्रभावित हुआ था। इस कारण उसका पूरा परिचय प्राप्त करने के लिए पूछने लगा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"जगतराम।"

"तुम भिखारी मालूम नहीं होते।"

"नहीं, मैं भिखारी नहीं हूँ। मैंने आपसे कुछ मांगा नहीं।"

"ठीक है, पर तुम्हारे कपड़े और सूरत भिखारियों जैसी मालूम होती है।"

"मुझको घर से निकले छः मास व्यतीत हो चुके हैं। मैं बहुत दूर का चक्कर लगाकर आ रहा हूँ। मार्ग में ये कपड़े फट गए हैं और बाल तथा दाढ़ी बढ़ गई है।"

"परन्तु घूम किस लिए रहे हो ?"

"चित्त की चंचलता को दूर करने के लिए। मेरे पास रुपए हैं। अब अमृतसर जाऊँगा तो कपड़े सिलवा लूंगा।"

"कल भोजन कहाँ किया था ?"

"एक गाँव में एक सज्जन ने दूध पिला दिया था। मैंने उनको दाम देना चाहा, परन्तु उन्होंने लिया नहीं।"

"तो तुम मेरे भोजन का भी दाम देने का विचार रखते हो ?"

"लेने के लिए कहूँगा अवश्य। यदि आप ले लेंगे तो मेरा बोझा हल्का हो जायगा, नहीं तो इतने मूल्य का भोजन किसी अन्य को खिलाना पड़ेगा।"

चौधरी हंस पड़ा। उसने पूछा, "मेरे तुमको खिलाने के बदले में किसी दूसरे को खिलाने से तुम्हारा बोझा कैसे हल्का होगा ?"

"यह खाना, पहिनना और अन्य सुख-सुविधा की बातें तो मनुष्य-समाज में रहने के कारण ही हैं। आप भोजन खिलायेंगे तो समाज की सामूहिक उपज में से ही तो होगा। यह ऋण मेरे ऊपर समाज का होगा और समाज के किसी अंग को, जिसको आवश्यकता होगी, देकर ही उऋण हो सकूंगा।"

चौधरी के मन पर इस परदेशी के कथन का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने आगे पूछा, "तुम कुछ पढ़े-लिखे भी हो ?"

"हाँ। बी० ए०, बी० टी० हूँ।"

"क्या मतलब ?"

"चौदहवीं श्रेणी की परीक्षा पास कर अध्यापक बनने की परीक्षा भी पास की है।"

"तो तुम इस तरह आवारागर्दी क्यों कर रहे हो? कहीं आराम से बैठकर पढ़ाने लिखाने का काम करो।"

"वह तो करता था। परन्तु ऐसा कारण बन गया कि छोड़कर भाग खड़ा हुआ।"

सुन्दरसिंह विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। इस पर जगतराम ने कहा, "अब तो भूख लगने लगी है।"

"ओह! यह तो भूल ही गया था।" यह कह चौधरी ने आवाज़ दी, 'मीरा! ओ मीरा!'

छः वर्ष की एक लड़की, मीरा भागती हुई घर से निकल आई। बाहर चौधरी के पास मैले, फटे हुए कपड़ों में एक व्यक्ति को बैठा देख वह खड़ी हो गई और फिर धीरे-धीरे अपने नाना की ओर विस्मयभरी दृष्टि में देखने लगी। चौधरी ने कहा, "जाओ मामी से कहो कि हम दोनों के लिए भोजन लगवा कर जल्दी भेज दे।"

"और मैं?" लड़की ने पूछा।

"हाँ हाँ! तुम तो मेरे साथ खाओगी न।" चौधरी ने हँसते हुए कहा।

मीरा गई तो चौधरी ने जगतराम से पूछा, चलने फिरने से चंचलता घटेगी अथवा बढ़ेगी?"

मास्टर ने इसके उत्तर में एक कथा सुना दी।

: ६ :

"किसी विद्वान् ब्राह्मण के घर में एक भूत बँधा हुआ था। एक दिन भूत किसी कारण से छूट गया। छूटकर वह लगा ब्राह्मण को तंग करने। ब्राह्मण पूजा-पाठ करता तो वह शोर मचाकर उसका ध्यान भंग कर देता। ब्राह्मण स्वाध्याय करने बैठता तो वह उसकी पुस्तक छीनकर स्वयं पढ़ने लग जाता। वह भोजन करने बैठता, तो वह भोजन को छूकर भ्रष्ट कर देता। ब्राह्मण बहुत दुःखी हो गया तो उसने भगवान से प्रार्थना की कि वह उसको इस भूत से छुटकारा दिलाए। भगवान को ब्राह्मण पर दया आ गई। उसने ब्राह्मण को प्रकट होकर बताया कि भूत को करने को कुछ काम देते रहो।

"ब्राह्मण ने भूत से कहा, "देखो, बैलों को भूसा डाल आओ। भूत भूसा डालने गया तो ब्राह्मण ने समझा कि छुटकारा मिल गया। वह रामायण निकाल पढ़ने लगा। अभी एक चौपाई भी नहीं पढ़ा पाया था

कि भूत चारा डाल लौट आया। ब्राह्मण ने विचार किया कि इसे कोई लंबा काम देना चाहिए। उसने कहा, "अच्छा देखो, गेहूँ पक गया है. यह दांत्री लेकर खेत काटो। सायंकाल तक जितना काट सको, उठाकर ले आना।"

"भूत गया तो ब्राह्मण ने समझा कि आज दिन भर की छुट्टी मिली, परन्तु कुछ देर पश्चात् ही भूत पूरा खेत काट, फसल को बैल-गाड़ी में ढोकर ले आया। जब ब्राह्मण ने देखा कि पूरा खेत कट गया है, तो आश्चर्य करने लगा।

"इस प्रकार जो कुछ भी काम ब्राह्मण बताता था, भूत जल्दी ही उसे समाप्त कर देता और फिर ब्राह्मण की नित्य क्रिया में विघ्न डालने लगता। अन्त में ब्राह्मण को एक उपाय सूझा। उसने अपने घर के सामने रखी एक बल्ली की ओर संकेत कर भूत से कहा, "इस बल्ली को गाड़ दो।"

"भूत ने एक क्षण में गढ़ा खोदकर उसे गाड़ दिया। ब्राह्मण ने कहा, अब इस पर चढ़कर दिखाओ।"

"भूत तुरन्त चढ़ गया तो ब्राह्मण ने कहा, "अब उतरो नीचे।"

"भूत उतर आया। अब ब्राह्मण ने कहा, "देखो भाई! इस बल्ली पर चढ़ो और उतरो। फिर चढ़ो और उतरो। इस प्रकार करते जाओ जब तक मैं बंद न करूँ।"

"भूत चढ़ने उतरने लगा तो ब्राह्मण को शान्ति मिली। वह अपने धर्म-कर्म में चित्त लगा सका।

"देखो चौधरी! मेरा मन भी भूत की भाँति चलने का काम कर रहा है। जब तक यह चलता रहता है, मुझको शान्ति मिलती है।"

"पर इस चलने से अधिक सुगम, उपयोगी और शान्ति देने वाला अन्य कोई काम नहीं सूझा आपको ?"

"उसी की खोज में हूँ। मिल जाएगा तो वही करने लगूंगा।"

इस समय दो थालियों में तंदूर-पकी रोटियाँ, दाल, मक्खन, शक्कर और गिलासों में लस्सी लेकर महिन्दर कौर आई और सामने रख कर भीतर आई तो चौधरी के पास बैठ गई। सुन्दरसिंह स्वयं खाने लगा और साथ ही मीरा को भी खिलाने लगा। जगतराम भी भोजन करने लगा। खाते हुए सुन्दरसिंह ने कहा, "जगतराम! मेरा कहा मानो। उस मन्दिर में, जहाँ तुम रात सोए थे, एक कोठरी है। वह पुजारी के लिए बनाई गई थी। पुजारी तो आजकल है नहीं। तुम उसमें ठहर जाओ। भोले नाथ की आराधना करो। मैं समझता हूँ कि यह काम तुम्हारे मन को अधिक

शान्ति देने वाला होगा।"

जगतराम चुपचाप भोजन करता रहा। सुन्दरसिंह ने कहना जारी रखा। उसने कहा, "यहाँ इस मन्दिर के स्थान पर एक नंगा और कच्ची मिट्टी का चबूतरा था उस पर शिवलिंग की स्थापना थी। मेरे पिता अभी जीवित थे। मैं सिख बना दिया गया था। उस समय गुरुद्वारे के ग्रन्थी सरदार निर्मलसिंह मुझको सिख धर्म की शिक्षा देने आया करते थे। उसने मुझे गुरुमुखी पढ़ाई, जपजी साहब का पाठ सिखाया, और फिर साखियाँ पढ़ने को दीं। मेरा विश्वास गुरु महाराज की वाणी पर चढ़ता गया और हिन्दू धर्म के पूजा-पाठ पर से उठता गया।

"एक दिन रेलगाड़ी के ढिलवाँ के पास से गुजरने की बात सुनी तो उसको देखने को जी कर आया। उस समय मैं चौदह वर्ष का था। मैंने पिताजी से जाकर देखने की स्वीकृति माँगी। उन्होंने मना तो नहीं किया, यह कह दिया कि एक दिन चलकर दिखा देंगे। एक दिन मेरी देखने की लालसा बड़ी तीव्र हो गई तो मैं सवेरे का कलेवा लेकर घर से भागता हुआ दो घंटे में दस मील तय कर ढिलवाँ स्टेशन जा पहुंचा ? दिल्ली की गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी। मैं उसको देख विस्मय में खड़ा रह गया। थोड़ी ही देर पश्चात् इंजन ने सीटी बजाई और छक-छक करता हुआ, गाड़ी को खेंचता हुआ, ले गया। कितनी ही देर तक आश्चर्य में डूबा मैं स्टेशन, वहाँ की इमारत, रेल की पटरी देखता रहा और जब जी भरकर देख चुका तो वहाँ से लौट पड़ा।

मार्ग में एक पुरुष तथा उसके साथ एक लड़की, स्टेशन से हमारे गांव की ओर आते दिखाई दिए। वे अमृतसर से रेल में बैठकर आए थे। पुरुष तीस-पैंतीस वर्ष का होगा और लड़की तेरह-चौदह वर्ष की थी। मैं उनके साथ ही पैदल चला आ रहा था। तब ढिलवाँ से हमारे गाँव तक पक्की सड़क नहीं थी। केवल एक पगडंडी थी। उस पुरुष के अपरिचित होने से मैं उससे बातचीत नहीं कर रहा था। चुपचाप कभी उसे देखते और कभी उसकी लड़की को देखते हुए मैं चल रहा था। मुझे अपने साथ चलते देख उस व्यक्ति ने मुझसे पूछा, "कहाँ से आ रहे हो बेटा ?"

"ढिलवाँ से।"

"वहाँ किस काम से गए थे ?"

"रेलगाड़ी देखने।"

"बस, केवल इसी काम के लिए गए थे ?"

"जी।"

"किसके बेटे हो ?"

"चौधरी मालाराम, कंडेवाल का।"

"ओह ! कैसे हैं तुम्हारे पिता ?"

"ठीक हैं।"

इसके अतिरिक्त कुछ बातचीत नहीं हुई। मैं जाते हुए भागता हुआ गया था। लौटते समय कुछ तो थकावट के कारण और कुछ उस लड़की को, जो मुझे बहुत अच्छी लग रही थी, देखते रहने के लिए उन दोनों के साथ-साथ ही धीरे-धीरे आ रहा था। मार्ग में दुपहरी हो गई। उस लड़की ने उस पुरुप से कहा, "भापा ! भूख लगी है।"

एक खेत में रहट चल रहा था। खाना उसके पास था ही। उस पुरुष ने कुएँ को देखा और फिर मेरी ओर देखकर बोला, "आओ बेटा! थोड़ा बहुत तुम भी खा लो। भोजन का समय तो हो गया है !"

"नहीं चाचा ! मैं घर खाकर चला था और अभी घर पहुंचकर फिर खा लूंगा।"

"कंडेवाल तो यहाँ से छः मील होगा। अढ़ाई तीन घंटे में पहुंचोगे। आओ थोड़ा-सा खा लो, फिर चलेंगे।"

"मैं मान गया। हम कुएँ की जगत पर बैठ गए। हाथ-मुख धोया। और उस पुरुप ने अपनी चादर में से खाने की पोटली निकाली। उसमें मीठी मठरियाँ थीं। उसने कुछ मुझे दीं, लड़की को दीं और स्वयं भी लीं। मैं उस लड़की का भोलाभाला मुख देखते हुए खा रहा था।

"खा-पीकर, हम फिर चल पड़े। दिन के तीसरे पहर के लगभग हम कंडेवाल से एक मील रह गए। यहाँ वे मुझसे पृथक् हो अपने गाँव की ओर मुड़ गए। मैं अपने घर की ओर चला आया।

"मुझे वह लड़की बड़ी आकर्षक लगी थी और कुछ मेरे मन में ऐसा उठने लगा था कि इस लड़की से मेरा विवाह हो जाए तो बहुत अच्छा हो। परन्तु मैंने उन लोगों का नामधाम नहीं पूछा था। ज्यूं-ज्यूं दिन व्यतीत होते गए, मेरा प्रेम उससे बढ़ता गया। इस समय कई स्थानों से मेरी सगाई आने लगी थी।

"मेरी बड़ी लालसा थी कि मेरा विवाह उसी लड़की से हो। इस कारण एक दिन जब गाँव के पुरोहित पंडित ऋपिकेश पड़ोस के गाँव से लौटते हुए हमारे खेत की मेंड़ पर बैठकर सुस्ताने लगे, तो मैंने उनके पास जाकर पूछा, "पंडित जी ! मन की इच्छा पूरी हो, उसके लिए क्या करना चाहिए ?"

"पंडित जी मेरे प्रश्न पर विस्मय कर मुझे घूरते हुए पूछने लगे,

क्या बात है सुन्दर ?"

"कोई खास बात नहीं पंडित जी ! मैंने सुना है कि ब्राह्मणों के पास बड़े-बड़े मंत्र होते हैं, जिनको जप करने से मनोकामना पूरी होती है।"

"हाँ।" पंडित जी ने मुस्कराकर कहा, "होते तो हैं, परन्तु मंत्र अपना प्रभाव तब दिखाते हैं, जब जाप करने वाला शुद्ध पवित्र हृदय से जाप करे।"

"तो मुझे बताइए। मैं कुछ चाहता हूं। पिताजी वह लेकर देते नहीं। मैं उनसे लड़ नहीं सकता। मैं चाहता हूं कि कोई ऐसा मंत्र बताइए कि मेरे कहे बिना वे मेरी बात कर दें।"

"मेरी बात सुन पंडित जी खूब हँसे। पश्चात् बोले, "अच्छा देखो, जो मैं कहता हूं, वह तुम वैसे ही करना, जैसे कहूँ। साथ ही किसी को बताना नहीं। बताने में मंत्र निष्फल हो जाता है।

"ठीक है, बताइए।"

"तो कान इधर करो।"

"पंडित जी ने मेरे कान में वह मंत्र बता दिया। मंत्र था, "ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमः" पश्चात् वह कहने लगे, "उस कच्चे चबूतरे पर, जो शिव मंदिर है, उस पर जल चढ़ाकर नदी किनारे उदय होते सूर्य की ओर खड़े-खड़े इस मंत्र का जाप किया करो। यह किसी को बताना मत कि क्या और किसलिए कर रहे हो। जाप करते समय सदैव उस वस्तु का ध्यान मन में रखना, जिसको तुम प्राप्त करना चाहते हो।"

"मैंने अगले दिन से ही प्रातःकाल नदी में स्नान कर, शिवलिंग पर जल चढ़ाना तथा जप करना आरम्भ कर दिया। तीन मास के निरन्तर जप करने के पश्चात् एक दिन मैंने देखा कि पंडित ऋषिकेश मेरे पिता जी से कुछ घुल-घुल बातें कर रहे हैं। मैंने समझा कि मेरा रहस्य खोल रहे हैं। मुझे इससे भारी क्रोध चढ़ आया। परन्तु पंडित जी मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे थे। मैं चुपचाप माथे पर त्योरी चढ़ाए घर के भीतर चला गया। थोड़ी देर पश्चात् पिताजी भीतर आए और मेरी माँ से बातचीत करने लगे। मेरे कान खड़े हो गए। मैं ध्यानपूर्वक उनकी बात सुनने लगा। पिताजी माँ को कह रहे थे, "पुरोहित जी बता रहे थे कि रामरत्न ने सुन्दर को देखा है। एक दिन रेल के स्टेशन से आते समय सुन्दर उनसे मिला था। वह भी स्टेशन से आ रहा था। रामरत्न को तो लड़का पसन्द है। अब उसने सगाई के लिए सन्देश भेजा है।"

"माँ ने मेरी ओर देखकर पूछा, "सुन्दर ! तुम कब गए थे रेल के

स्टेशन ?"

"मैंने पूछ लिया, "क्यों क्या बात है माँ ?" मैंने ऐसा भाव बनाया, मानो कुछ सुना ही न हो।"

"माँ ने अत्र तीव्र स्वर में पूछा, "मैं पूछती हूँ तुम कभी स्टेशन गए थे ?"

"हाँ माँ ! एक दिन रेल देखने गया था।"

"वहाँ कौन मिला था ?"

"स्टेशन से लौटते समय पड़ोस के गाँव का एक आदमी था। साथ में उसकी लड़की थी।"

"लड़की कितनी बड़ी थी ?"

"इतनी बड़ी।" मैंने अपने कंधे पर हाथ रखकर बता दिया।

"गोरी थी या काली ?"

"गोरी।"

"उससे विवाह करोगे ?"

"मुझको क्या मालूम।"

"इस पर मेरे पिताजी और माँ, दोनों हंस पड़े। पिताजी ने हंसकर कहा, "वे रामरत्न जी थे और उन्होंने आज पुरोहित जी के हाथ अपनी लड़की का रिश्ता भेजा है।"

"मैं चुप कर रहा, परन्तु मेरा मन पंडित जी को लाख-लाख धन्यवाद दे रहा था। मैं समझता था कि यह उनके बताए मंत्र के जाप का फल है। अगले दिन से और भी अधिक श्रद्धा तथा भक्ति से जप करने लगा। एक दिन चौधरी रामरत्न हमारे घर आए और शकुन दे गए। इसके एक वर्ष पश्चात् मेरा विवाह हो गया।

"सो जगतराम ! मेरा मन कहता है कि तुम भी भगवान की आराधना करो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।"

"चौधरी जी ! मेरी तो कुछ भी इच्छा नहीं। मेरे मन की अशान्ति का कारण तो कुछ और ही हैं। अब आपको अपनी बात बता ही देता हूँ।

"मैं ज़िला गुरदासपुर का रहने वाला हूँ। मेरे मन की इच्छा हुई कि मैं पढ़ूं। इसके लिए मैं अपने माता-पिता के घर से भागकर एक दिन अमृतसर जा पहुंचा। वहां एक लाला के घर नौकरी कर ली। लाला जी की एक लड़की थी सुभद्रा। वह दूसरी श्रेणी में पढ़ती थी। मैं रात के समय उसकी किताबें लेकर पढ़ा करता था। एक ही महीने में उसकी सब पुस्तकें पढ़ गया। तब एक लड़का, सुदर्शन, जो लाला जी के घर आया करता था, मुझको पढ़ाने लगा। वह आठवीं श्रेणी में पढ़ता था।

कुछ दिनों के पश्चात् मैंने लाला जी के घर से नौकरी छोड़ दी। और सुदर्शन के घर नौकरी करने लगा। दो साल के पश्चात् मैंने और सुदर्शन दोनों ने इकट्ठे दसवीं की परीक्षा दी और हम दोनों पास हो गए।

"मैं घर में नौकरी करता था, इस कारण किसी स्कूल में बैठ नहीं सका था। मैंने घर पर ही पढ़कर परीक्षा दी थी, इस पर भी अच्छे नम्बरों से पास हुआ था। इससे उत्साहित होकर मैंने आगे पढ़ने का निश्चय कर लिया। इस समय सुभद्रा के पिता ने मुझे बीस रुपये महीने पर सुभद्रा को पढ़ाने के लिए नौकर रख लिया। इस पर मैंने कालेज में प्रवेश ले लिया। सुदर्शन के घर का काम अभी भी मैं कर दिया करता था। वहां से मुझे भोजन तथा रहने को स्थान मिला हुआ था। सुभद्रा के घर से मुझे फीस तथा पुस्तकों के पैसे मिल जाया करते थे। इस प्रकार मैंने बी० ए० और बी० टी० कर लिया। इस समय सुभद्रा ने भी कालेज में प्रवेश ले लिया था। मैंने बी० टी० बड़े अच्छे नम्बरों से पास की थी, इस कारण मुझे अमृतसर के एक स्कूल में पढ़ाने के लिए नौकरी मिल गई। सुभद्रा अभी भी मुझसे पढ़ती थी।

"इस तरह दो वर्ष और निकल गए। अब सुभद्रा को मैं पढ़ाने नहीं जाया करता था। केवल कभी-कभी उसकी थोड़ी-बहुत सहायता कर दिया करता था। इसके लिए मैं कोई वेतन नहीं लेता था। मैं उसके पिता के एहसान के नीचे दबा हुआ था। एक दिन सुभद्रा आई और मुझसे कहने लगी, "मैं आपसे एक काम करानी चाहती हूं ?"। कहूँ।

"कहो, क्या बात है ?" मैंने पूछा।

"मेरी सगाई हो गई है।"

"तो बधाई हो।"

"मैंने सुना है कि लड़का काना है।"

"तो।"

"आप सच्चाई पता कर दीजिए। मैं आपको पता देती हूँ। आप उससे मिल आइए और देखकर मुझे बताइए कि जो मैंने सुना है, ठीक है, अथवा गलत।"

"अच्छी बात है। पता लिखकर दे दो।"

मैं न केवल लड़के से मिलकर पता कर आया, बल्कि उसका एक फोटो भी लेता आया। वह काना तो था ही, साथ ही कुरूप भी था। वास्तव में एक करोड़पति का बेटा होने से वह सुभद्रा के लिए चुना गया था।

जब सुभद्रा मुझे मिलने आई तो मैंने उसे फोटो दे दी। तस्वीर तो काफी अच्छी थी। फोटो उतारने वाले ने बड़ी चतुराई से उसकी कानी आंख ठीक कर दी थी परन्तु दोनों आँखों में अन्तर अभी भी दिखाई पड़ता था। सुभद्रा ने फोटो ध्यानपूर्वक देखी और मन में विचार करती रही। कुछ देर पश्चात् उसने फोटो अपने बैग में रखते हुए मुझसे पूछा, "आप मेरी क्या सहायता कर सकते हैं?"

"सुभद्रा बहिन! तुम चाहती क्या हो? मैं क्या कर सकता हूँ?"

"मैं अपने पिताजी से कहने जा रही हूँ कि मैं इससे विवाह नहीं करूँगी।"

"तो फिर?"

"वे मुझसे पूछेंगे कि इससे नहीं तो फिर किससे विवाह करूंगी। मेरे पास इसका बदल होना चाहिए।"

"परन्तु इसका वदल अमृतसर में मिलना कठिन है।"

"आप समझे नहीं। ये लोग धनी अवश्य हैं, परन्तु कुरूप और मूर्ख हैं। मैं एक लड़के को जानती हूँ, जो इतना धनी तो नहीं, परन्तु पढ़ा-लिखा और योग्य है। मैं चाहती हूँ कि पिताजी से आप उसकी सिफारिश कर दीजिएगा।"

"कौन है वह?"

"सैंट थौमस स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ाता है।"

"यह मैं ही था। मैं अवाक् उसका मुंह देखता रह गया। वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। जब मेरे मुख से कुछ शब्द नहीं निकले तो उसने कहा, "दो उपाय हो सकते हैं। एक यह कि आप मुझको भगाकर ले जाइए, कहीं दूर वम्बई अथवा कलकत्ते। वहां हम विवाह कर लेंगे।"

"परन्तु गुज़ारा कैसे होगा?"

"मैं अपने साथ काफी वस्त्र-आभूषण ले चलूंगी। एक-आध वर्ष की वात है; पश्चात् मैं वालिग हो जाऊँगी और हम दोनों खुले आम रह सकेंगे।"

"और यदि पकड़े गए तो मैं चोर कहाऊंगा और नाबालिग लड़की के अगुवा करने में सात वर्ष तक की कैद का दण्ड पाऊंगा।"

"तो एक दूसरा मार्ग है। मैं अपने घर से बिना एक भी पैसा लिए, आपके घर में आ जाती हूँ। अपने पिता को नोटिस देकर आपके साथ रहने लगती हूँ।"

"इस बात का मेरे स्कूल में पता चलने पर मेरी नौकरी समाप्त हो

जाएगी। तब खाना-पीना कैसे चलेगा ?"

"तो आप कोई मार्ग बताइए।"

"देखो सुभद्रा ! मैं तुमसे विवाह नहीं करूंगा। तुम मेरी छोटी बहिन के समान हो। मैं तुम्हें आरम्भ से ऐसे ही समझता आ रहा हूँ और अब बहिन को पत्नी नहीं बना सकता। एक भाई के नाते ही अब तुम्हारे पिताजी से जाकर कह सकता हूँ। कहो तो चलूं तुम्हारे साथ ?"

"पिताजी मानेंगे नहीं।"

"नहीं मानेंगे तो बाद में विचार कर लेंगे। मुझे तो आशा है कि मान जाएँगे।"

"तो चलिए, परन्तु मुझे कोई आशा नहीं।"

"मैंने मूर्खता की और उसके साथ चल पड़ा। मुझको वहाँ जाकर पता चला कि सुभद्रा के विवाह का प्रबन्ध हो रहा है। उसके ससुराल से स्त्रियां उसका शकुन करने वहां आई हुई थीं। घर में सफाई हो चुकी थी और सजावट की जा रही थी। हलवाई लगा था और मिठाइयाँ बन रहीं थीं।

"यह सब तैयारी देख मैंने पूछा, "यहाँ आज क्या है ? सुभद्रा !"

"मेरे विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं।"

"तो दिन निश्चित हो चुका है !"

"हाँ कल बारात आनेवाली है।"

"तो पानी नाक तक आ गया है !"

"मैं इस गन्दगी में डूबूंगी नहीं।"

"हम घर के बाहर पहुँचे तो सुभद्रा के छोटे भाई ने मुझे देखकर कहा, "आइए मास्टर जी ! आप बहुत समय पर आए हैं।"

"जनक ! क्या बात है ?"

"तो दीदी ने बताया नहीं ?"

"क्या बताया नहीं ?"

"जनक हँस पड़ा और मेरा हाथ पकड़कर मुझे भीतर ले गया। सुभद्रा हमारे पीछे-पीछे थी। जनक मुझे अपने माता-पिता के पास ले गया। वे सुभद्रा के वस्त्र-आभूषण सामने रखे कुछ बातें कर थे। मुझे देख उसके पिताजी ने कहा, "आओ मास्टर! जनक, मास्टर जी के लिए दूध और मिठाई लाओ।"

"जनक मिठाई लेने चला गया। सुभद्रा, जो हमारे पीछे-पीछे वहाँ आई थी, अब सामने आकर पिताजी से कहने लगी, 'पिताजी !"

इतना कह उसने हैंडबैग में से अपने होने वाले पति का चित्र निकाल

लिया। उसके पिता ने सुभद्रा को कुछ कहते देख उसकी ओर देखकर पूछा, "क्या बात है सुभद्रा ?"

"सुभद्रा ने चित्र अपने पिता के सामने रख कहा, "पिताजी ! यह काना है ?"

"पिताजी ने चित्र हाथ में ले लिया और कुछ देर तक कहने लगे, "तस्वीर से तो दिखाई नहीं देता !"

"इसकी दाहिनी आँख नकली है।" सुभद्रा ने कहा।

"होगी। देखने में मालूम नहीं देती।"

"इसकी गर्दन टेढ़ी है।"

"उससे क्या होता है ?"

"इससे विवाह नहीं करूंगी।"

"नहीं करोगी ? क्यों ?" उसके पिता ने ज़रा तीव्र स्वर में पूछा।

"बताया तो है।"

"तो तुम इससे विवाह नहीं करोगी क्योंकि······।"

"इतना कहते-कहते लालाजी घूर-घूर कर मेरी ओर देखने लगे। मैं चुपचाप खड़ा यह सोच रहा था कि अब लालाजी मेरे से सुभद्रा के साथ आने का कारण पूछेंगे। परन्तु उन्होंने मुझे कुछ कहने के स्थान अपनी पत्नी से कहा, "ज़रा सुभद्रा को लेकर भीतर चले जाओ। मैं मास्टर से एक बात करना चाहता हूँ।"

"सुभद्रा की माँ उठी और अपनी लड़की को लेकर भीतर चली गई। मैं शान्त खड़ा लालाजी का मुख देख रहा था। लालाजी ने एक-दो क्षण तक मुझे घूरा पश्चात् उठकर मुझे गालियाँ सुनाते हुए मेरे मुख पर कसकर एक चांटा मारा। वे पचपन वर्ष के वृद्ध व्यक्ति थे और यदि मैं चाहता तो एक ही मुक्के में उनके दाँत बाहर निकाल देता। परन्तु मैं उनके ऐहसान के नीचे दबा हुआ था। इस कारण चुपचाप खड़ा रहा। उनका क्रोध बढ़ता ही गया और वे मुझे दनादन चपत के पश्चात् चपत लगाने लगे। मैंने एक बार कहा भी, "सुनिए तो लालाजी !" परन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान न दिया।

"जब चपत मारते-मारते उनके हाथ थक गए तो समीप ही रखी छड़ी उन्होंने उठा ली और मुझे उससे पीटने लगे। इस समय उनकी गालियों का शोर सुन घर के अन्य लोग, सुभद्रा की माँ तथा सुभद्रा वहाँ आ गए। सुभद्रा ने मुझे पिटते हुए देख अपने आप को मेरे और पिता के बीच में खड़ा कर दिया। छड़ी की अन्तिम चोट उसके शरीर पर लगी और छड़ी टूट गई। अब सुभद्रा की माँ ने लालाजी का हाथ पकड़ लिया

ग्रौर कहा, "यह ग्राप क्या रहे हैं ?"

"छड़ी टूट जाने के कारण लालाजी हाँफते हुए ठहर गए थे। सुभद्रा की माँ ने मुझे कहा, "मास्टर ! चले जाग्रो यहाँ से !"

"मैं चुपचाप वहाँ से चल पड़ा। सुभद्रा भी मेरे साथ ग्राने को लपकी परन्तु उसकी माँ ने उसको पकड़ लिया। मैं घर पहुँचा ग्रौर शीशे में ग्रपना मुख ग्रौर शरीर के ग्रन्य भाग देख, जख्मों पर वैसलीन लगाने लगा।

"ग्रगले दिन मैं स्कूल नहीं गया। मेरा मुख सूजा हुग्रा था। मैंने स्कूल से छुट्टी ले ली। दोपहर के पश्चात् जनक ग्राया ग्रौर एक चिट्ठी मेरे सामने रख कहने लगा, "दीदी ने दी है।"

"कहाँ है वह ?"

"ग्रपने कमरे में लेटी हुई है। उसको ज्वर ग्रा रहा है। जनक चला गया तो मैंने चिट्ठी खोली। लिखा था,

"प्रिय मास्टर जी ! कल ग्रापके साथ जो व्यवहार हुग्रा उसका मुझे ग्रत्यन्त खेद है। ग्रापसे क्षमा मांगने के ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ नहीं कर सकती। मैंने ग्रापसे कल कहा था कि मैं इस गन्दगी में डूबूंगी नहीं। सो इससे बाहर निकलने का मैंने प्रवन्ध कर लिया है। मैं विष खाकर प्राणान्त कर रही हूँ। इस निन्दनीय जीवन से तो मरना ग्रच्छा है। मैं ग्रापको ग्रपने मन की बात कहती हूँ। जब से मैंने ग्रापको देखा है, मैं ग्रापसे प्रेम करती रही हूँ। जब ग्रपने मुझे ग्रपनी वहिन कहा था, तो मैंने यही सोचा था कि ग्रापकी ग्राँखों के सामने पर्दा छा गया है, जो ग्राप हमारे इस वास्तविक सम्बन्ध को पहचान नहीं सके। इस पर भी ग्रब क्या हो सकता था। ग्रब मैं चलती हूँ। नमस्ते ?"

"मैं चिट्ठी पढ़ किंकर्त्तव्यविमूढ़ की भाँति बैठा रह गया। पश्चात् एकाएक विचार ग्राया कि सुभद्रा को बचाना चाहिए ग्रौर मैं उसी ग्रवस्था में घर से निकल सुभद्रा के घर की ग्रोर भाग खड़ा हुग्रा। उसके घर से ग्रभी सौ गज के ग्रन्तर पर ही था कि बाहर वहुत से ग्रादमियों को खड़ा देख ठिठक गया।

"एक ग्रादमी से, जो उसी मकान की ग्रोर जा रहा प्रतीत होता था, मैंने पूछा, "यहाँ क्या हो गया है ?" उसने कहा, "लालाजी की लड़की का देहान्त हो गया है। कल उसकी शादी होने वाली थी।"

"मेरे मस्तिष्क ने काम करना छोड़ दिया। मैं वहीं एक ग्रोर किनारे खड़ा हो विचार करने लगा कि ग्रब क्या करूँ।

"मैं लौटने ही वाला था कि मकान में से एक ग्रर्थी निकली ग्रौर लोग उसको उठाए, "राम नाम सत्य है" की ग्रावाज़ लगाते हुए ग्राने लगे।

"मैं खड़ा देखता रहा। अर्थी मेरे सामने से निकल गई। उसके साथ जनक और उसकी माँ भी रोते हुए जा रहे थे। लालाजी भी नंगे सिर भूमि की ओर देखने हुए जाते दिखाई दिए। मेरी आँखों में आँसू बह रहे थे और मुझको स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था।

'मैं घर आया और अनेकानेक विचारों में लीन रात भर सो नहीं सका। अगले दिन ही मैंने अमृतसर छोड़ने का निश्चय कर लिया। अपना सारा सामान सुदर्शन के हवाले कर, स्कूल से त्याग-पत्र दे, केवल शरीर पर पहिने कपड़ों के साथ दक्षिण की ओर चल पड़ा। मैं रामेश्वर तक घूमकर अब उत्तर की ओर जा रहा हूँ। विचार है तिब्बत तक जा पहुँचूंगा।"

: ८ :

सुन्दरसिंह ने मास्टर की कथा सुनी। कुछ देर तक विचार करता रहा और फिर पूछने लगा, "इस घूमने-फिरने से क्या लाभ हो रहा है तुम्हें ?"

"चित्त की चंचलता को भूला रहता हूँ।"

"देखो मास्टर! मेरा कहा मानो। यहाँ ही रह जाओ। खाने पहिनने को मिल ही जाएगा। यहाँ खुला स्थान है। नदी का किनारा है। जलवायु अच्छी है। भगवान का भजन करना और यदि मन में आए तो यहाँ एक स्कूल खोल दो और बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दो। इससे तुम्हारे चित्त को शान्ति मिलेगी। पश्चात् जहाँ चाहो चले जाना।"

जगतराम को बात पसन्द आ गई और वह वहाँ ही रह गया।

इसी प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। गाँव में स्कूल खुल चुका था। उसमें लगभग बीस बालक अथवा बालिकाएँ पढ़ती थीं। मास्टर उन्हें स्वयं पढ़ाता था। वह स्कूल में पढ़ाने की फीस नहीं लेता था। बच्चों की पुस्तकों के लिए उसने सुन्दरसिंह की सहायता से एक कमेटी बनाली थी और वह चन्दा इकट्ठा कर बच्चों को पुस्तकें खरीद देता था।

अपने स्वाध्याय के लिए मास्टर कभी-कभी अमृतसर चला जाता था और वहाँ के सरकारी पुस्तकालय में से एक-दो पुस्तकें ले आया करता था।

कभी-कभी गाँव में कोई जटिल समस्या उत्पन्न हो जाने पर चौधरी सुन्दरसिंह राय के लिए मास्टर को बुला लिया करता। इसी कारण जब उसके घर में रामसिंह ने झगड़ा किया तो चौधरी ने मास्टर को

भी बुला लिया।

मास्टर ने राय दी थी कि केवली और परमेश्वरी की बात मान ली जाए और रामसिंह को रुपया दे दिया जाए। इस राय से मोहनसिंह को क्रोध चढ़ आया था।

उसने मास्टर को कहा, "मास्टर साहब ! यह न्याय है क्या ?"

"नहीं मोहन जी ! यह न्याय नहीं। यह मनुष्य से सहानुभूति है। हैं। जो मनुष्य उन्नति करना चाहता है, उसके साथ सहयोग देने की भावना है।"

"तो मेरे साथ भी थोड़ी सी हमदर्दी दिखा देते ?"

"आपके भीतर मनुष्यता नहीं बल्कि पशुपन बोल रहा था। आपके मन में ईर्ष्या और द्वेष काम कर रहा है।"

"देखो मोहन भैया ! राम को नगर जाने दो और तुम देहात में काम करो। भगवान और भाग्य उसकी और तुम्हारी, दोनों की देख-रेख करेगा।"

इस पर सुन्दरसिंह ने अपना निर्णय दे दिया। उसने कहा, "राम! तुम जा सकते हो। रुपये का प्रबन्ध हो जाएगा। परन्तु यह समझ रखना कि ऐसा अवसर बार-बार हाथ नहीं आता। एक बार सुअवसर हाथ से निकला समय दुबारा कभी नहीं आता।"

रामसिंह ने कह दिया, "मैं दस-पन्द्रह दिन के भीतर जाना चाहूँगा।"

इस प्रकार बात निश्चित हो गई परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि मोहनसिंह, केवली और मास्टर जगतराम, दोनों का विरोधी बन गया। उसी रात वह अपनी पत्नी से लड़ पड़ा। उसने पूछा, "तुमने राम को रुपया देने का प्रस्ताव क्यों किया था ?"

"मुझको वही अच्छा समझ आया सो कर दिया। वह आपका छोटा भाई है। अपनी उन्नति करना चाहता है। यह ठीक है कि हमारे विचार में वह धोखा खा रहा है परन्तु उसका विश्वास था कि वह नहीं खा रहा, इस कारण उसे अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने देना चाहिए। यदि वास्तव में उसका विश्वास गलत हैं तो उसे ठोकर लगेगी और इससे सद्बुद्धि मिलेगी।"

"ओहो, बड़े ज्ञान की बातें करने लगी हो। घर बैठे खाने को मिल जाता है न। खेत में काम करना पड़े तो पता चले। गाढ़े पसीने की कमाई को लुटाया जाता देख तो मेरा मस्तिष्क भी भन्ना उठा है।"

"आराम से जा सो जाइए। मालूम पड़ता है कि आज बहुत थक गए हैं।"

"हम सो गए तो भूखों मरने लग जाओगी। तुम तीनों स्त्रियों ने घर की तबाही का बीड़ा उठा लिया है।"

"ईश्वर का नाम लीजिए। यदि किसी से सहानुभूति दिखाने से तबाही होती है, तो होने दीजिए। बताइए क्या भगवान संसार में नहीं रहा? वे हमारे मनों की भावनाओं को देखता नहीं क्या?"

"खाक देखता है।"

मोहनसिंह लेट तो गया, परन्तु सो नहीं सका। रात भर करवटें लेता रहा। परिणाम यह हुआ कि अगले दिन काम पर जा नहीं सका।

सुन्दरसिंह पूछने आया कि वह खेतों पर क्यों नहीं गया, तो मोहन ने खाट पर लेटे-लेटे कह दिया, "आज छुट्टी है।"

"क्यों?"

"रात नींद नहीं आई, इसलिए।"

"देखो मोहन! क्रोध करने से काम नहीं चलेगा। तुम अपने सत्य हृदय से बताओ कि तुम भी नगर में जाकर दुकान करना चाहते हो?"

"नहीं, परन्तु मैं अपने परिश्रम की कमाई किसी को फोकट में देना नहीं चाहता।"

"जब किसी सन्त महात्मा को अथवा किसी भिखारी को देते हो, तो वह फोकट में देना चाहता है क्या?"

"मैं उनको भी देना नहीं चाहता।"

"तब तो ठीक है। तुम अपने खेत पृथक् करलो और अपनी पृथक आय अपने पास रख लेना।"

केवली समीप खड़ी पिता-पुत्र में झगड़ा सुन रही थी उसने बँटवारे की बात सुन कह दिया,"चाचाजी! यह नहीं होगा। यह बँटवारा आपके जीवनकाल में नहीं हो सकता।"

"मोहनसिंह को इससे क्रोध चढ़ आया। उसने कहा, "तो जो कल राम को तुमने दिलवा दिया है, वह बँटवारा नहीं है क्या?"

"जी नहीं। वह तो छोटे भाई को सहायता थी।"

"अजीब औरत हो तुम? तुम्हें अपने पति से सहानुभूति नहीं। देवर से प्यार हो गया है क्या? उसकी उन्नति का विचार करती हो और मेरे परिश्रम की ओर ध्यान नहीं? मैं समझता हूँ कि मेरा इस घर में अब रहना नहीं हो सकता।"

"मोहन बताओ, पृथक् भूमि लोगे?"

"चाचाजी!" केवली ने कहा, "मैं समझती हूँ कि यदि इनको पृथक् करना है, तो एक-दो मास पीछे करिएगा। ये इस समय क्रोध के

घोड़े पर सवार हैं। समय व्यतीत होने पर इनको अच्छाई-बुराई की समझ आ जाएगी।"

"क्या अच्छाई है जो मुझे नहीं आ रही ?"

"तो बता दूं ?" सुन्दरसिंह ने मोहन को घूरते हुए कहा।

"हाँ बता दो, चाचा !"

"एक शर्त पर। जो कुछ बताऊंगा, उसको मन में रखकर दो मास तक मनन करना और पीछे विचार कर बातचीत करना। मैं समझता हूँ कि तब तुम मेरे दृष्टिकोण को समझ सकोगे।"

मोहनसिंह बिटर-बिटर चौधरी के मुख पर प्रश्नभरी दृष्टि से देखता रहा। चौधरी ने कहा, "सुनो मोहन ! रामसिंह का दुर्भाग्य है कि उसका विवाह गुणवन्ती जैसी स्त्री से हुआ है। गुणवन्ती घर का काम-काज नहीं कर सकती। उसको देहात के जीवन में न तो रुचि है न ही उसको चलाने की क्षमता है। परिणाम यह हो रहा है कि वह यहाँ अपने को दुःखी पाती है, साथ ही वह राम को और हमें भी दुःखित करती रहती है।

"तुम देखते नहीं कि परमेश्वरी और केवली दिनभर काम करती हैं और गुणवन्ती को सिवाय किताब पढ़ने के और कोई काम नहीं। यह रामसिंह का दुर्भाग्य है और यह हमारी भूल से हुआ है। हमको उसका विवाह किसी भी नगर में पली लड़की से नहीं करना चाहिए था। अब किया है तो उसके परिणामों को भी हमें सहन करना चाहिए, और रामसिंह को सहन करने में सहायता देनी चाहिए। यह सहायता मैं दे रहा हूँ। तुम्हारी और सोहन की बहुएँ भी दे रही हैं। सोहन ने भी इस सहायता देने में आपत्ति नहीं की। अब तुम विचार कर लो। विचार के बाद भी, यदि तुम्हारा विचार इस यज्ञ में भाग लेने का न हुआ तो बता देना। तुमको हम परिवार से पृथक् कर देंगे। साथ ही भगवान से प्रार्थना करेंगे कि वह तुम्हारी सहायता करे।"

सोहनसिंह अगले दिन खेतों पर काम करने चला गया। इस पर भी उसके मन में शान्ति नहीं थी। वह अपने पिता के दृष्टिकोण को समझने का यत्न कर रहा था। उसके मन में सदैव यही समस्या चक्कर काटती रहती थी। एक दिन खेतों से लौटते समय उसने सोहनलाल से इस विषय पर प्रश्न पूछ लिया। अपने मन की उथल-पुथल को सामने रख उसने पूछा, "भैया ! क्या तुम समझते हो कि राम को रुपया देना न्याययुक्त है ?"

सोहनलाल इस प्रश्न से चौंक उठा। वह तो इस विषय को अब तक

मन से निकाल चुका था इस कारण इस बीती बात को पुनः खड़ी होते देख, उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उसने प्रश्नभरी दृष्टि से मोहन की ओर देखकर पूछा, "क्यों, क्या बात हुई है ? मोहन !"

"बात तो कुछ नहीं, परन्तु मुझे चाचा की यह बात अन्याययुक्त प्रतीत होती है।"

"देखो मोहन ! न्याय-अन्याय की बात मैं नहीं जानता। मैंने कानून नहीं पढ़ा। मैं इतना जानता हूँ कि राम की बहू ने राम का जीवन दूभर कर रखा है। उसके साथ रहता हुआ वह देहात में सुखी नहीं रह सकता। इस कारण उसका नगर में जाना आवश्यक है। हमने उसको वहाँ जाने में सहायता देकर उचित ही किया है।"

"पर इससे हमको कष्ट जो होगा।"

"बिना कष्ट के भी भला किसी का भला किया जा सकता है। तुम भी जब किसी दूसरे का काम करते हो तो कुछ-न-कुछ हानि सहन करनी ही पड़ती है। मैंने जब यह समझ लिया कि उसका नगर में रहना ही ठीक है, तो मैंने उसकी सहायता के लिए चाचा से कह दिया कि जो वह माँगता है, दे दिया जाए। हाँ, मैं खेत बेचने के हक में कभी नहीं हूँ।"

"चाचा ने मुझे कहा है कि यदि मैं पृथक् होना चाहूँ तो वे खेत बाँट देंगे।"

"हाँ, उन्होंने ठीक कहा है। परन्तु मैं समझता हूँ कि तुम यह मूर्खता नहीं करोगे।"

"यह मूर्खता क्यों है ?"

"चाचा ने अपने जीवन में ये खेत खरीदे हैं। उनके जीवन काल में हमको बँटवारा नहीं करना चाहिए।"

"मैं तो समझता हूँ कि यदि बँटवारा होना ही है तो उनके जीवन-काल में हो जाना चाहिए। इससे उनको दुःख होगा ही, और कष्ट भी होगा। यदि तो हमने आधा-आधा बाँटा तो उनको हमारे आश्रय होना पड़ेगा और यदि हमने खेतों के तीन भाग किए तो अपने भाग के खेत वे जोत नहीं सकेंगे, क्योंकि वे वृद्ध हो गए हैं -"

"परन्तु एक लाभ भी तो होगा। यदि हम स्वयं बँटवारा ठीक नहीं कर सके तो वे हमारा फैसला करवा देंगे। उनके पीछे हमें कोई दूसरा बीच में न डालना होगा।"

"हमारा फैसला हो जाएगा। मोहन ! डरो नहीं। तुमको मुझसे हानि नहीं होगी।"

इस पर भी मोहन को सांत्वना नहीं मिली। वह परमेश्वरी से पूछने जा पहुँचा। परमेश्वरी चर्खा कात रही थी। और मोहन को सामने आ बैठते देख पूछने लगी, "मोहन भैया! क्या बात है, चर्खा कातोगे क्या?"

"मैं चर्खा कातूँ और तुम हल जोतोगी, भाभी!"

दोनों हँसने लगे। मोहन ने कहा, भाभी! मैंने सुना है कि विलायत में औरतें दफ्तरों में वैसा ही काम करती हैं, जैसे मर्द करते हैं। बाईसिकल चलती हैं, घोड़े पर सवार हो घुड़दौड़ भी करती हैं और सब तरह का काम करती हैं।"

"और उनके घर का काम कौन करता है? उनके पति?"

"नहीं, उसके लिए नौकर रखे जाते हैं।"

"वाह! तो फिर इससे लाभ ही क्या हुआ? बढ़िया काम छोड़कर घटिया काम करने लगती हैं। खाना बनाना छोड़ दफ्तर का काम करती हैं। छीः छीः।"

"भाभी! तुम रोटी बनाना बढ़िया काम समझती हो और दफ्तर में बैठकर हकूमत करने को घटिया? तभी तो तुम औरतें घर में उल्टी गंगा बहा रही हो।"

"क्या उल्टी गंगा बह गई है यहाँ?"

"हमारे दस वर्ष की कमाई जरा सी जबान हिलाकर गुणवन्ती को दिलवा दी है।"

तो यह उल्टी गंगा है क्या? मोहन भैया! उल्टी तब होती, जब हमारे पास रुपयों के होते हुए, हम राम को न देते और उसका जीवन दुर्भर हो जाता। दिन-रात उसमें और गुणवन्ती में लड़ाई होती और दोनों का जीवन नीरस हो जाता।"

"पर हमारा जीवन तो नीरस हो गया है।"

"क्या नीरसता आ गई है इसमें? क्या गेहूँ, जिसकी रोटी बनती है, फीका हो गया है अथवा दाल जलने लगी है?"

"नहीं यह बात नहीं। हमारा रुपया जो कम हो गया है।"

"क्या हो रहा था उस रुपये से? उसके जाने से हमारे खाने-पहिनने में तो कमी हुई नहीं। विवाह हमारे हो चुके हैं। बच्चों के विवाह अभी दूर हैं। मैं तो नहीं समझी कि रुपया देने से हमें किसी प्रकार का भी कष्ट हुआ है।"

: ६ :

मोहनसिंह का जीवन वास्तव में नीरस हो गया था। इस कारण नहीं कि बैंक में से उनका रुपया निकल चुका था, परन्तु इस कारण कि उनकी बात घर में मानी नहीं गयी। वह कुछ ऐसा समझने लगा था कि मानो घर में सब मूर्ख भरे पड़े हैं, जिनको अपने हित-अहित का ज्ञान नहीं। वह सोचता था कि कभी उनको रुपयों की आवश्यकता पड़ गई तो वह कहाँ से आएगा। यह काल्पनिक आवश्यकता और उसकी पूर्ति न हो सकने का काल्पनिक भय उसके मन को विक्षुब्ध कर रहा था।

इसका एक परिणाम होने लगा कि उसको खेतों के काम में रुचि कम होने लगी। पहिले वह सूर्योदय होने से पहिले ही स्नानादि से छुट्टी पा बैलों को निकाल खेतों में चला जाता था। अब सूर्योदय के समय भी वह खाट पर लेटा करवटें बदला करता था। कभी केवली उसको उठाने आती तो वह कह देता, "अरे क्या जल्दी पड़ी है। अभी उठ जाता हूँ।"

उसका यह व्यवहार छुपा नहीं रह सका। सुन्दरसिंह को पता चला तो उसने मोहन को बुलाकर पूछा, "मोहन क्या बात है? अब तो कामे तुम्हारे जाने से पहिले ही खेत पर पहुँच जाते हैं।"

"हाँ चाचा!"

"और वे वहाँ काम करते हैं।"

"तो मैं क्या करूँ?"

"तुम जल्दी उठा करो और उनके काम की भलीभाँति देख-भाल किया करो।"

"मुझसे यह नहीं हो सकता।"

"क्या हो गया है तुमको? बीमार हो क्या?"

"काम करने को चित्त नहीं करता।"

"रोटी खाने को चित्त करता है क्या?"

"हाँ, भूख तो लगती है।"

"कपड़े पहिनने को चित्त करता है?"

"हाँ।"

"तो हरामखोरी को चित्त करने लगा है!"

"नहीं चाचा! यह खेत का काम अब मुझको नहीं भाता।"

"ओह! यह बात है। तो तुमको भी नगर की बीमारी लग गई है?"

"कुछ समझो।"

"तो ऐसा करो मोहन ! तुम भी नगर में कोई काम ढूंढ लो। पर यह याद रखना कि राम का स्वसुर तो अमृतसर में अफसर है और तुम्हारा स्वसुर कंडेवाल में एक छोटा सा जमींदार।"

"तो चाचा ! तुमने ही मेरा विवाह गरीबों के घर में किया है तो अब तुम किसी अमीर के घर कर लो।"

"तो दूसरा विवाह कर लूं ?"

"क्या हरज है ?"

"अच्छी बात है। यत्न करूँगा।"

"पर इतना समझ लेना कि नई बहू आएगी तो उँगलियों पर नचाएगी।"

"गुणवन्ती की तरह न ? चाचा ! नाच लूंगा और परिवार नाचने में सहायता दे ही देगा।"

"हो सका तो दे देगा। तुम नई बहू लाओ तो।" सुन्दरसिंह हँसते हुए कहने लगा, "पर एक काम करो। नई बहू के आने तक तो डट कर काम करो जिससे उसके लिए कपड़े, आभूषण और एक नया मकान हम बनवा लें।"

एक बात मोहनसिंह के मन में बैठ गई कि यदि उसने देहात रूपी कीचड़ से बाहर निकलना है तो उसको विशेष यत्न करना पड़ेगा। उसको गाँव के बाहर की दुनिया में जाकर वहाँ का अनुभव प्राप्त करना होगा। वह जानता था कि उसके पिता को सुन्दर बहू मिली थी, रेल के स्टेशन की सैर के लिए जाने पर। और रामसिंह को नगर की बहू मिली थी, दर्बार साहबकी सैर के लिए जाने पर। इससे वह समझने लगा कि उसकी उन्नति का साधन मिलेगा गाँव से निकलने पर। यहाँ गांव में पड़े रहने में वह गढ़हे के जल की भांति पड़ा-पड़ा सड़ जाएगा। इन्हीं विचारों में एक वर्ष निकल गया।

वह अपने मन में योजना बनाने लगा था। देहात से बाहर जाने के लिए रुपया चाहिए, जो उसके पास नहीं था। परन्तु नकद रुपया आने वाला था। इस वर्ष गन्ना मिल में उन्होंने जो गन्ना दिया था, उसका चौदह सौ रुपया मिल की ओर बनता था। वह मन में विचार करने लगा कि किस प्रकार यह रुपया वह प्राप्त करे।

प्रायः सुन्दरसिंह रुपया लेने स्वयं जाया करता था। ढिलवां, जहाँ शूगर मिल थी, कंडेवाला से दस मील के अन्तर पर था। इस वर्ष मोहन-सिंह ने यह रुपया स्वयं जाकर प्राप्त करने का निश्चय कर लिया। वह जानता था कि रुपया तब तक नहीं मिलेगा, जब तक उसका पिता लिख-

कर नहीं देगा और साथ ही मिल में गन्ना देने की रसीद साथ में न हो। इस कारण उसने पिता से स्वीकृति लेकर जाने का बहाना ढूंढना आरम्भ कर दिया।

"चाचा?" एक रात मोहन ने भोजन के पश्चात् पिता के पास जाकर कहा, "मिल का रुपया कब मिलना है?"

"आजकल में ही मिलने वाला है। एक दिन जाकर पता कर आओ कि कब मिलेगा।"

"तो कल चला जाऊँ?"

"हां। तुम्हारे काम को मैं देख लूंगा।"

मोहनसिंह ढिलवां गया और शूगर मिल के मुंशी से मिलकर पूछने लगा कि रुपया कब मिलेगा। मुंशी ने पूछा, "क्या नाम है?"

"सुन्दरसिंह. कडेवाला।"

"पहिले तो कोई और आया करता था?" मुंशी ने ऐनक के ऊपर से मोहनसिंह को देखकर पूछा।

"हां वह मेरा बाप है। अब बूढ़ा हो गया है। इतनी दूर नहीं आ सकता।"

"तो कल आ जाना। रसीद और उसकी ओर से चिट्ठी लेते आना। क्या नाम है तुम्हारा?"

"मोहनसिंह।"

मुंशी ने खाता देखकर बताया, "चौबीस सौ साठ रुपया है। नोटों में लोगे अथवा चांदी में?"

"नोटों में।"

"ठीक है, कल आ जाना।"

मोहनसिंह घर आया और पिता से कहने लगा, "मुंशी कहता था कि रुपया कल मिलेगा। साथ ही चाचा! यदि तुम चिट्ठी लिख दो तो तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

"पर अढ़ाई हजार रुपया है, सम्भाल कर लाना।"

"चाचा! तुमसे अच्छी तरह रुपये की रक्षा कर सकूंगा।"

"शाम होने से पहिले ही लौट आना।"

"सवेरे-सवेरे निकल जाऊँगा और दिन ढलने से पहिले ही लौट आऊँगा।"

"साथ में सोहन को ले जाओ।"

"पर चाचा! तुम तो अकेले जाया करते थे।"

"अच्छा जाओ। मास्टर से एक चिट्ठी लिखा लाओ कि मेरा

रुपया मोहनसिंह को दे दिया जाए।"

मोहनसिंह गया और मास्टर से चिट्ठी लिखा लाया। चिट्ठी पर पिता के हस्ताक्षर करवाकर, रसीदें ले, अपने तकिए के नीचे रख सो गया।

अगले दिन सवेरे उठ, शौचादि से निवृत्त हो, लस्सी और मक्खन के साथ बासी रोटी खाकर तैयार हो गया। जाते समय वह केवली से बोला, "चाचा से कह देना कि जैसा उन्होंने मुझे समझाया है, वैसा ही कर लौटूंगा।"

केवली को उनकी बात समझ में नहीं आई। उसने पूछा, "क्या समझाया है चाचा ने ?"

मोहनसिंह के मन में आया कि वह केवली को अपने मन की बात बता दे, परन्तु यह विचार कर कि कहीं भेद न खुल जाए, उसने इतना कह दिया, "यही रुपए और रसीदों के विषय में।"

इतना कह वह लम्बे-लम्बे पग रखता हुआ ढिलवां की ओर चल पड़ा। दस बजे के कुछ ही पीछे वह मिल के फाटक पर पहुंच गया। वहां सड़क के किनारे लगे पत्थर पर बैठकर एक बार अपने विचारों को सुव्यवस्थित करने के लिए उसने विश्राम किया। पश्चात वह मिल के मुंशी के पास जा पहुंचा। मुंशी ने रसीद ली और उसकी जांच-पड़ताल की। पश्चात् सुन्दरसिंह की चिट्ठी ले उसके हस्ताक्षर अपने पिछले वर्षों के रजिस्टर से मिलाया। सब ठीक देख उसने मोहनसिंह के हस्ताक्षर रजिस्टर पर कराए और उसको गिनकर सारा रुपया दे दिया।

मोहनसिंह ने रुपया अपने कुर्ते के अन्दर की जेब में रख लिया और चादर को कन्धे पर डाल सीधा रेल के स्टेशन की ओर चल पड़ा।

स्टेशन मिल के पिछवाड़े में ही था। वहां गया तो एक गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी देख उसने टिकट देने वाली खिड़की पर जाकर पूछा, "बाबू ! यह गाड़ी कहां जाएगी ?"

"दिल्ली।"

"एक टिकट का कितना दाम है ?"

"तीन रुपया बारह आने।"

मोहनसिंह ने जेब में से एक दस रुपये का नोट निकालकर बाबू को दिया और दिल्ली का टिकट मांगा।

टिकट और बाकी पैसे लौटाकर बाबू ने कहा, "जल्दी करो। गाड़ी छुटने वाली है।"

मोहन गाड़ी में जा बैठा और उसके बैठते ही गाडी चल पड़ी।

कंडेवाला का शिवमन्दिर सुन्दरसिंह का ही बनाया हुआ था। उसकी श्रद्धा-भक्ति तो तभी से प्रबल हो गई थी, जब उसके जप का फल उसे मिला था। पश्चात् विवाह होने पर तथा कुछ रुपया हाथ में आने पर उसने मन्दिर पक्का करवा दिया और उसमें एक पुजारी विष्णुसहाय पूजा आदि के लिए नियत कर दिया। पुजारी मन्दिर के पिछवाड़े में एक कोठरी में, जो मन्दिर के साथ ही सुन्दरसिंह ने बनवाई थी। रहता था। वह देहात का ही रहने वाला था, परन्तु विधुर होने से अकेला था। जब तक वह जीवित रहा, मन्दिर की देखभाल और पूजा-पाठ इत्यादि भलीभांति करता रहा। उसके मरने के पश्चाप् सुन्दरसिंह को कोई दूसरा पुजारी नहीं मिला। उसने गांव के एक पांधा सतराम को मन्दिर देखभाल का काम सौंप दिया। पांधा नित्य प्रातः आकर मन्दिर की देखभाल कर जाया करता था।

जब जगतराम गांव में आया तो चौधरी ने उसे विष्णुसहाय वाली कोठरी में ही ठहरा दिया। पांधा सन्तराम को यह विचित्र बात प्रतीत हुई। वह यह तो जान गया था कि जगतराम पढ़ा-लिखा विद्वान व्यक्ति है। परन्तु यह वह नहीं समझ सका कि वह देहात में रहकर क्यों बस गया है। यद्यपि जगतराम के वहां रहने से उसकी दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं पड़ा था, इस पर भी वह उसके वहां बसने को उचित नहीं समझता था।

एक दिन पांधा सन्तराम चौधरी के पास जाकर पूछने लगा। "चौधरी! यह मन्दिर में कौन आकर रहने लग गया है?"

"एक गरीब आदमी दुःख का मारा है। मेरी स्वीकृति से ही रह रहा है।"

"चौधरी! वह परदेशी है।"

"हां, मैं जानता हूं।"

'गांव की बहू-बेटियां मन्दिर पर जाती हैं।"

"हां, तो फिर?"

"कुछ खराबी हो सकती है।"

"कोई संदेह वाली बात हुई है क्या?"

सन्तराम चुप कर गया। कुछ विचार कर बोला, "अभी तो कुछ दिखाई नहीं दिया। इस पर भी अपरिचित व्यक्ति से सतर्क रहना चाहिए।"

"तुम ठीक कहते हो। तुम नित्य वहाँ जाते हो। कोई बात पता चले तो तुरन्त बताना।"

"पर मैं कहता हूँ कि वह मन्दिर धर्मशाला तो है नहीं। न ही वह सराय है। फिर उसके वहाँ रहने की आवश्यकता नहीं है।"

"देखो सन्तराम ! उस परदेशी के विषय में कुछ जानते हो तो बताओ। अन्यथा उसके वहां रहने से मुझे कुछ हानि प्रतीत नहीं होती। मेरा अनुमान है कि वह एक भला व्यक्ति है। उसके चित्त को यहाँ शान्ति मिल नहीं रही है। अब तो उसने गांव के कुछ बच्चों को पढ़ाना भी आरम्भ कर दिया है। इससे हमारे गांव का लाभ हो रहा है। मैं उसे बिना कारण वहाँ से निकालूंगा नहीं।"

बात समाप्त हो गई और जगतराम वहाँ रह गया। जब रामसिंह व्यवसाय के लिए अमृतसर चला गया, उस समय तक उसके स्कूल में बीस के लगभग बालक-बालिकाएँ पढ़ने आती थीं। फीस वह लेता नहीं था और पुस्तकें बिना मूल्य के मिलने लगीं थीं। गाँव वालों को जगतराम की उपयोगिता का ज्ञान होने लगा था। जगतराम रोटी चौधरी के घर से खाता था और परमेश्वरी सूत कातकर खद्दर बुनवा उसके कपड़े सी देती थी।

रामसिंह के चले जाने पर चौधरी का मेलजोल जगतराम से और भी बढ़ गया। प्रातःकाल तो वह प्रतिदिन मन्दिर पर जल चढ़ाने जाता ही था, अब शाम को वह मास्टर से बातचीत करने जा पहुंचता था।

जिस दिन मोहनसिंह शूगर मिल से रुपए लेने गया था, सुन्दरसिंह को उसकी प्रतीक्षा करते-करते देरी हो गई। उस दिन वह देर से मास्टर के पास पहुंचा।

जगतराम मन्दिर के पास चौतरे पर खड़ा अस्त होते सूर्य की शोभा देख रहा था। नदी वहाँ से पश्चिम की ओर बहती थी। अब सूर्य के अस्त होने के समय नदी पश्चिम की ओर क्षितिज में लीन हो रही प्रतीत होती थी। सूर्य भी नदी में डूब रहा प्रतीत होता था। नदी का जल उस ओर से रक्तरंजित प्रतीत हो रहा था। हल्की-हल्की हवा चल रही थी जिससे नदी के जल में छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं। इन लहरों पर सूर्य के प्रकाश से किनारी लगी प्रतीत होती थी।

इस दृश्य में मुग्ध मास्टर अतीत काल की किसी स्मृति में लीन खड़ा था कि चौधरी उसके पास आकर खड़ा हो गया। चौधरी भी उस दृश्य से प्रभावित हुए बिना न रहा। एकाएक चौधरी ने लम्बी साँस खींचकर कहा, "मास्टर ! इतने सुन्दर स्थान को क्यों छोडकर कोई क्यों

नगर को जाना चाहता है ?"

"क्या हुआ है चौधरी ?"

"मोहन भी चला गया प्रतीत होता है।"

"क्या कहते हो ? चौधरी ! कल तो वह यहीं था और उसके मुख से ऐसा कुछ प्रतीत नहीं होता था।"

"मोहन कई दिनों से चंचल दिखाई दे रहा था। कल उसने कहा कि वह मिल से रुपया लेने जाना चाहता है। मैंने तुमसे चिट्ठी लिखवा-कर उसको दे दी। आज सवेरे का गया अभी तक नहीं लौटा।"

"आ जाएगा। दस मील आना जाना कोई साधारण बात नहीं।"

"नहीं मास्टर ! वह रुपया लेकर भाग गया है। मैं कई दिनों से देख रहा था कि उसको राम से ईर्ष्या हो रही है।"

"तो उसको रुपया लेने नहीं भेजना था।"

"वह पच्चीस वर्ष की आयु का है। ऐसे सज्ञान पुत्र को बाँधकर रखना संभव नहीं था। मैंने उसको समझाने का यत्न किया था, परन्तु उसको यह समझ नहीं आई कि उसकी स्थिति और रामसिंह की स्थिति एक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अढ़ाई हज़ार रुपयों को आधार बना वह संसार रूपी सागर में कूद पड़ा है।"

"तो क्या होगा ?"

"होना क्या है ? वह भगवान के हाथ में है।"

"उसको ढूंढना नहीं चाहिए क्या ?"

"कोई बच्चा है नहीं। घर आने की इच्छा होगी तो चला आएगा। मेरा व्यवहार स्पष्ट है। जो कोई भी यहाँ रह रहा है, अपनी स्वेच्छा से रह रहा है। जो नहीं रहना चाहता उसको मैं क्यों रखूं ? राम के विषय में भी मेरी सम्मति थी और मोहन को भी मैं बाँधकर रखने वाला कौन हूँ ?"

"पर वह रुपया जो ले गया है।"

"मुझको रुपये की चिन्ता नहीं। हाँ, उसके हित और कल्याण की चिन्ता अवश्य है। इसमें भी मैं अपनी बात उसपर थोपना नहीं चाहता। उसको नगर के रहन-सहन तथा वहाँ की कठिनाईयाँ बता दी थीं। इस पर भी वह चला गया है, तो मैं क्या कर सकता हूँ ?"

जगतराम चुप कर रहा। कुछ देर तक दोनों अपने विचारों में लीन रहे। पश्चात् चौधरी ने पुनः कहा, "मैं तो कह रहा था कि कितना मनोहर दृश्य है। ऐसा किसी नगर में, जहाँ बड़े-बड़े मकान ही होते हैं, मिलना असम्भव है। हाँ," चौधरी ने एकदम बात बदलकर कहा, "गाँव

में एक घटना और हो गई। पांधा सन्तराम गाँव की एक चमारिन को लेकर भाग गया है। दो दिन से वह लड़की नहीं मिल रही थी और पांधा भी लापता था। पहिले यह समझा गया कि पांधा अपने ससुराल गया है। उसकी पत्नी वहाँ गई हुई थी। अब पता चला है कि वह वहाँ नहीं गया।"

"पर पांधा तो पूजा-पाठ करने वाला आदमी था। वह नित्य मंदिर में आता था।"

"हाँ। भगवान जाने क्या बात है! लड़की वालों ने पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी है।"

अभी ये बातें चल ही रहीं थीं कि सोहनलाल मन्दिर की ओर आता दिखाई दिया। मास्टर ने उसे आते देख कहा, "सोहन भैया आते दिखाई देते हैं।"

"हाँ, मालूम होता है कि मोहन अभी भी नहीं आया। वह मुझे बताने आ रहा है।"

"इससे उल्टी बात भी तो हो सकती है।"

"मेरा मन कह रहा है कि मोहन नहीं आया।"

इस समय सोहनलाल उनके पास आ गया था। उसने चौधरी से कहा, "चाचा! मोहन अभी तक नहीं आया।"

"तो?"

"कहो तो मैं जाकर पता करूँ?"

"कहाँ से पता करोगे?"

"मिल से।"

"मिल तो अब बंद हो गई होगी। मुंशी अपने घर चला गया होगा। वह कुछ नहीं बता सकेगा। मेरा विचार है कि रातभर प्रतीक्षा करो और कल जाकर पता करना।"

"चाचा! कुछ अनिष्ट हो गया हो तो? अढ़ाई हजार नकद लेकर देहात में घूमना सुरक्षित नहीं।"

"मैं भी तो रुपया लेकर आता जाता रहा हूँ। मेरे विचार में ऐसी कोई बात नहीं। फिर भी सवेरे तक वह न लौटा तो अवश्य पता करेंगे।"

"केवली कहती है कि वह जाते समय कह गया था कि चाचा से कह देना कि जैसा उन्होंने कहा है, वैसा ही मैं करूँगा। केवली कहती है कि आपने कुछ और कहने को भी बताया है?"

"नहीं सोहन! मैंने उसे और कुछ नहीं बताया था। हाँ, एक दिन

वह बहुत झगड़ा कर रहा था तो मैंने कह दिया कि राम का स्वसुर अमृतसर में एक बड़ा आदमी है। इस पर उसने कहा था वह भी अपना एक नया स्वसुर बनाएगा। मैंने उसे मूर्ख बनाने के लिए कह दिया था कि बना ले। कदाचित् वह इस अढ़ाई हजार से कोई नया स्वसुर ढूंढने चला गया है।"

"तो मोहन दूसरा विवाह करेगा?"

'ऐसा ही समझ में आया है।"

"केवली को बहुत दुःख होगा।"

"अभी पक्की बात तो नहीं कह सकता। अनुमान ही तो है। यदि उसने सत्य ही विवाह कर लिया तो केवली से किस प्रकार छिपाया जा सकता है!

"तो चाचा! अभी उससे यह मत कहना।"

जगतराम पिता-पुत्र दोनों की बातें सुन रहा था। इससे उसको भी दुःख हुआ था। वह नगरों के इस परिमोहन (आकर्षण) के कारणों पर विचार कर रहा था।

: ११ :

अगले दिन सोहनलाल ढिलवाँ गया। उसने मुंशी से पता किया तो मुंशी ने बताया कि मोहनसिंह चौबीस सौ साठ रुपया ले गया है। वह स्टेशन पर गया तो वहाँ से उसको पता चला कि पिछले दिन दिल्ली का एक टिकट कटा है। लेने वाला एक लम्बा तगड़ा सिख युवक था और उसके हाथ में एक लम्बी सी डांग थी। टिकट बाबू ने यह भी बताया कि वह सफेद पगड़ी बांधे हुआ था। इससे सोहनलाल को विश्वास हो गया कि मोहन रुपया लेकर दिल्ली चला गया है।

दिल्ली जाकर ढूंढने की बात जब सोहन ने चौधरी से कही तो केवली ने कह दिया, "चाचा जी! यह व्यर्थ है। वे कोई बच्चे तो हैं नहीं, जो घर का रास्ता भूल गए हैं। आने की इच्छा होगी तो आ ही जाएँगे। बिना इच्छा के उन्हें यहाँ लाकर बांध रखने से तो लाभ के स्थान हानि ही हो सकती है।"

सुन्दरसिंह ने कहा, "बेटी! तुम्हारे सुख, आराम और सौभाग्य के लिए ही हम विचार कर रहे हैं।"

"रहने दीजिए। जो कुछ भाग्य में बदा है, वह टाला नहीं जा सकता।"

सुन्दरसिंह ने तरल नेत्रों से कहा, "बहुत अपराध हो गया है बेटी ! तुम जैसी सुशील स्त्री को इस जंगली से बांध दिया है।"

सुन्दरसिंह को केवली की अवस्था पर बहुत दुःख हुआ था। वह समझता था कि पति के जीते जी यह वैधव्य एक अति विकट परिस्थिति है।

मोहनसिंह को ढूंढने के लिए प्रयत्न करने का विचार छोड़ दिया गया। हां उसके जाने पर खेतों पर काम करने का ढंग बदल दिया गया। काम करने के लिए दो जमादार रखने पड़े। ये खेतों पर काम करने वाले मज़दूरों से काम लेते थे। घर के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन करना पड़ा। महिन्दर कौर, जो सोहनलाल के घर पर रहती थी, अब केवली के साथ रहने लग गई। केवली के दो सन्तानें थीं। एक लड़का गोविन्दसिंह और दूसरी लड़की, जो अभी गोद में थी, सरस्वती। मीरा दोनों से बड़ी थी। इस तरह दो माताएँ और तीनों बच्चे एक साथ रहने लगे।

सुन्दरसिंह के घर की बदलती परिस्थिति को देख मास्टर जगतराम के मन में भी परिवर्तन हो रहा था। वह विचार कर रहा था कि चौधरी के सुख-सम्पन्न जैसे घर से नगरों में जाने का प्रलोभन क्या हो सकता है। अमृतसर जैसे गंदे नगर को कंडेवाला जैसे स्थान पर उपमा देने में क्या कारण हो सकता है ? मनुष्य प्रकृति तो सर्वत्र एक समान है। इससे वह जानने का यत्न कर रहा था कि वह कौन सी ऐसी बात है, जो मनुष्य को नगरों की ओर आकर्षित करने में सबल होती है।

यह तो स्पष्ट ही था कि नगरों में धन अधिक मिलता है। क्यों मिलता है ? क्या नगरों में मनुष्य देहात वालों से अधिक परिश्रम करते हैं ? अथवा क्या नगरों में कम परिश्रम का अधिक मूल्य मिलता है ? यदि यह है तो क्यों है ?

दो वर्ष तक कंडेवाला में चिन्तारहित जीवन व्यतीत करने से उसका कंडेवाला से मोह हो गया था और वह चाहता था कि वह मोहन-सिंह और रामसिंह के इतने स्वच्छ, स्वास्थ्यप्रद और सुन्दर स्थान को छोड़ नगर की ओर भाग खड़े होने के कारणों को जानकर उस कारण को दूर करने का यत्न करे।

यह तो वह जानता था कि धनोपार्जन में जहां मनुष्य का परिश्रम मुख्य है, वहां पूंजी की भारी सहायता होती है। देहात में भी धनोपार्जन के लिए पूंजी की आवश्यकता रहती है। यहां पूंजी का रूप मुख्यतया भूमि है। इसके साथ रुपया भी पूंजी का अंग बन जाता है।

पूंजी बनती और बिगड़ती रहती है। आय में से व्यय निकाल दें तो शेष धन पूंजी का रूप ग्रहण कर सकता है। अथवा आय से व्यय अधिक कर लिया जाए तो पूंजी धन का रूप धारण कर समाप्त हो जाती है। धन को पूंजी का रूप देने के लिए योग्यता की आवश्यकता होती है। कुछ लोग धन तो रखते हैं, परन्तु वे उसको पूंजी का रूप देने में असमर्थ हो जाते हैं। कई लोग धन को पूंजी का रूप दे भी सकते हैं, परन्तु पूंजी को ठीक ढंग से प्रयोग न कर इसको खो बैठते हैं।

इस बात को जानते हुए उनको देहात की समस्या यह प्रतीत हुई, कि यहाँ बहुत सीमा तक पूंजी का अभाव है और जहाँ कहीं भी पूंजी है, वहाँ उसका उचित प्रयोग न हो सकने से वह व्यर्थ जा रही है। देहात के लोग परिश्रम तो कर सकते हैं, परन्तु परिश्रम की विधि ठीक न होने से उतना लाभ नहीं कर सकते, जितना परिश्रम को ठीक ढंग से करने से होना चाहिए।

खेत पूंजी का रूप है, परन्तु खेतों का प्रयोग ठीक और गलत हो सकता है। इनमें अधिक लाभ करने वाली फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं और व्यर्थ की फसलें भी। साथ ही जब भूमि घटिया हो, तो उसमें उचित खाद देकर उसको बढ़िया बनाया जा सकता है। अर्थात् पूंजी को अधिक लाभदायक बनाने के लिए और परिश्रम करने का ठीक ढंग जानने के लिए योग्यता की आवश्यकता है। योग्यता प्राप्त करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होगी।

शिक्षा का अर्थ अक्षर-ज्ञान नहीं। वास्तव में अक्षर-ज्ञान तो साधन है शिक्षा प्राप्त करने का। शिक्षा है मन और इंद्रियों को साधने का नाम।

देहात में धनोपार्जन का मुख्य उपाय है खेती-बाड़ी। इस कारण इसकी शिक्षा होनी चाहिए। परन्तु खेती-बाड़ी तो सबको प्राप्य नहीं है। सबके पास भूमि नहीं होती। और न ही वह वर्ष में सब समय चलती है।

अतएव समस्या है, अधिक-से-अधिक व्यक्तियों के पास पर्याप्त भूमि का होना, उनको भूमि के उपयोग का ढंग आना, और भूमि के उपयोग के लिए धन और साधनों का रखना। इसी प्रकार परिश्रम का ढंग आना चाहिए। शिक्षा, अर्थात् मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा उनका साधना चाहिये। इसके अतिरिक्त ऐसे कार्यों का प्रचलन जो रिक्त काल में लाभ दे सकें।

ये सब समस्याएँ साधारण नहीं हैं। इनके सुझाव सुगम नहीं हैं।

साथ ही ये समस्याएँ कुछ लोगों की तथा एक सीमित क्षेत्र की नहीं। सब देहातों की और देहात के सब रहने वालों की हैं।

जगतराम विचार करने लगा तो उसको वह कार्य इतना विशाल, दुस्तर और महान् प्रतीत हुआ कि एक समय तो वह हतोत्साह हो गया और उदास तथा निराश रहने लगा।

इस कार्य में उसको प्रेरणा मिली चौधरी से। चौधरी कई दिनों से देख रहा था मि मास्टर चिन्तित तथा मलिन मुख रहने लगा है। एक दिन सायंकाल नदी तट पर बैठ मास्टर को नदी के जल में पत्थर फ़ेंकते देख चौधरी पूछने लगा, "क्या कर रहे हो मास्टर ! कुछ खोए-खोए से मालूम होते हो ?"

"जब मन में उठ रहे प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता तो विवश हो ये ढेले जल में फैंकने लगता हूं।"

"क्या प्रश्न हैं तुम्हारे मन में ?"

"प्रश्न तो सरल हैं, परन्तु उत्तर सरल नहीं। प्रश्न है राम और मोहन इतने सुन्दर देहात को छोड़कर क्यों नगर भाग गए हैं ? परन्तु जो उत्तर मिला है वह हिमालय पर्वत के समान विशाल और दुस्तर है।"

"क्या उत्तर मिला है तुमको ?"

"उत्तर मिला है, नगरों में सुख-सुविधाएं अधिक हैं। सुख-सुविधाएं धन से प्राप्त होती हैं। वहाँ देहात में उतना धन नहीं। धन उत्पन्न करने के लिए तीन वस्तुएँ चाहिएँ। परिश्रम, पूंजी और बुद्धि। देहात में पहिली दोनों बातें तो हैं परन्तु उनके प्रयोग का ढंग नहीं आता। इसका कारण यह है कि तीसरी वस्तु अर्थात् बुद्धि का वहाँ अभाव है। बुद्धि चाहिए। यह स्कूलों में नहीं बिकती। स्कूलों में तो अक्षर-ज्ञान ही हो सकता है। अक्षर-ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य होते हुए भी समस्या का सुझाव नहीं है। बुद्धि प्राप्त करने के लिए शिक्षण की आवश्यकता है। मैं विचार यह करता हूं कि शिक्षा किस प्रकार दूं।"

"कैसी शिक्षा देना चाहते हो ?"

"खेती-बाड़ी की, उपजाऊ परिश्रम की और मन तथा इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने की।"

"तो मास्टर ! इस प्रकार की शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिए।"

"वही तो विचार कर रहा हूं कि कैसे हो। इसके लिए साधना चाहिए, अध्यापक चाहिएँ और सबसे बड़ी बात यह है कि गांव वालों में यह

शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट इच्छा चाहिए।"

"मास्टर, योजना बनाश्रो श्रौर मैं देखूंगा कि क्या कुछ हो सकता है।"

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

जिस दिन चौधरी ने रामसिंह को रुपया देने का वचन दिया था, गुणवन्ती, जो नित्य रामसिंह से लड़ा करती थी, प्रसन्न रहने लगी। विवाहित जीवन के श्रारम्भ के कुछ दिन तो लज्जा श्रौर झिझक में व्यतीत हो गए। फिर प्रेम श्रौर श्रानन्द के दिन श्राए परन्तु दो मास व्यतीत होतें-होते गुणवन्ती का श्राग्रह नगर जाने का होने लगा। जब रामसिंह ने बताया कि उनका संयुक्त परिवार है श्रौर वह बिना श्रपने पिता तथा भाइयों की श्रनुमति के नगर में रहने के लिए नहीं जा सकता, तो गुणवन्ती उसको श्रपने पिता तथा भाइयों का दास कहने लगी। धीरे-धीरे यह झगड़ा बढ़ने लगा।

गुणवन्ती घर की श्रन्य दोनों स्त्रियों से श्रधिक सुन्दर श्रौर पढ़ी-लिखी थी। वह रामसिंह को रात के समय उपन्यास पढ़कर सुनाया करती थी। वह उसके सम्मुख श्रमृतसर, लाहौर तथा दिल्ली की प्रशंसा के पुल बांधा करती थी। इस सबका परिणाम यह होता था कि रामसिंह के मन में यह बात बैठती जाती थी कि देहात में रहकर वह श्रपना जीवन व्यर्थ गंवा रहा है। इस पर भी उसका साहस नहीं होता था कि वह श्रपने पिता से कुछ कहे।

गुणवन्ती को एक वर्ष से ऊपर लगा रामसिंह को गांव छोड़ने के लिए तैयार करने में। इसमें भी मुख्य कारण था उनके घर एक बालक का जन्म लेना, जिसकी शिक्षा की श्राड़ लेकर रामसिंह को तैयार किया गया।

जिस दिन पिता ने यह बात कही कि रुपया मिल जाएगा श्रौर वह जा सकता है, उसी रात गुणवन्ती ने प्रसन्न होकर कहा, "मानती हूं श्रापमें भी कुछ दिल है। श्राज श्रापने चाचाजी से डटकर सवाल-

जवाब किए हैं, कमाल है।"

"ठीक है गुणवन्ती ! पर एक बात तुमको समझनी चाहिए कि कि पिताजी और बड़े भैया कितने अच्छे हैं कि रुपया दिया है और खेतों में भाग भी रहने दिया है।"

"हाँ यह तो उनको करना ही चाहिए था।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि आप घर में सबसे छोटे हैं।"

"सबसे विचित्र बात यह है कि भाभियों ने भी हमारी हिमायत की है।"

"उनकी बात तो मैं समझती हूँ। वे मुझे घर से निकालकर प्रसन्न ही होंगी। मेरे जाने के पश्चात् घर की पूर्ण सम्पत्ति की मालिक बनने के लिए मुझको निकालना ठीक समझती हैं।"

"कुछ भी हो। यदि रुपया न मिलता तो मैं नगर न जा सकता। हमारी सारी योजना निष्फल जाती। इस कार्य में भाभियों ने सहायता दी है। उनके मन में पाप है या नहीं, मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, मुझे उनके हिमायत करने से लाभ हुआ है।"

यद्यपि गुणवन्ती को जेठानियों की प्रशंसा पसन्द नहीं थी, तो भी उसके जीवन का एक परम लक्ष्य आज सिद्ध हुआ था। वह अपने मन की प्रसन्नता को छुपाकर नहीं रख सकती थी।

इसके पश्चात् जाने का प्रबन्ध करते-करते एक मास लग गया। इस काल में रामसिंह को कई बार अमृतसर जाना पड़ा और गुणवन्ती को सब सामान, जो वह साथ ले जाना चाहती थी, एकत्रित करने में यत्न करना पड़ा। जब वह अपने भूषण और वस्त्रों, जो अपने माता-पिता के घर से लाई थी, और जो ससुराल से मिले थे, ले जाने लगी तो किसी ने उसको रोका नहीं। इससे उसको आश्चर्य हुआ। उसको स्मरण था कि उसकी बूआ, जब अपने ससुराल वालों से लड़कर अपने भाई के घर आई थी, तो उसकी ससुराल वालों ने उसके आभूषण तथा कीमती वस्त्र, जो उसको विवाह पर ससुराल से मिले थे, उतरवा लिए थे। यहां तो उसने अपने श्वसुर से आभूषण मांगे और उसको तुरन्त मिल गए। उसने जब कहा, चाचाजी ! मैं अपने आभूषण ले जाना चाहती हूँ।"

सुन्दरसिंह का उत्तर था, 'वे तो तुमको ले ही जाने चाहिएँ। यहां उनकी रखवाली कौन करता फिरेगा ?"

गुणवन्ती ने अपने कहने का अर्थ समझाते हुए कहा, "मेरा मतलब

उस कंठी, बुन्दे और चूड़ियों से है, जो आपने मुझे पहिनाई थीं।"

"हाँ हाँ, यही तो कह रहा हूं। तुमको पहिनाई थीं तो तुम्हारी हो गईं और फिर उनकी रखवाली बाद में मैं क्यों करता फिरूं ? ये सब कुछ ले जाओ। कुछ और चाहिए तो बता देना।"

"नहीं चाचाजी ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। हां घर का फर्नीचर यहां ही रहेगा। जब भी हम आया करेंगे तो आराम से रह सकेंगे।"

"ठीक है रहने दो।"

परिणाम यह हुआ कि अपने आभूषण और वस्त्र वह साथ ले गई और फर्नीचर अपने मकान में बन्द कर, मकान को ताला लगा गई।

मोहनसिंह ने कहा भी, "चाचा ! ये तो यहां अपना अधिकार बनाए रखना चाहते हैं।"

"अच्छी बात है। इसमें हानि ही क्या है ?"

मोहनसिंह वह सब कुछ देख रहा था। गुणवन्ती समझती थी कि घर में केवल मोहनसिंह ही है, जो उनके विचारों को समझता है, तथा घर के अन्य प्राणी तो बुद्धू ही हैं। इससे वह मोहनसिंह की हृदय से शत्रु हो गई थी और घर के दूसरे प्राणियों पर उसे दया आने लगी थी। इस पर भी उसके मन में एक क्षण के लिए भी यह विचार नहीं आया कि वह उनके अधिकारों पर छापा मार रही है।

अमृतसर में रामसिंह ने जहां एक दुकान का प्रबन्ध कर लिया था, वहां रहने के लिए एक बहुत ही साफ-सुथरे मकान का प्रबन्ध भी कर लिया। मकान भाड़े पर था। वहां उसने अच्छा बढ़िया फर्नीचर फिट करवा लिया और पश्चात् वह गुणवन्ती के साथ उस मकान में आराम से रहने लगा।

गुणवन्ती इस आराम के उपलब्ध कराने में अपने को मुख्य कारण समझती थी। इस कारण उसने नगर आने के दो दिन पश्चात् ही कहा, "बताइए, नरक से हम स्वर्ग में आ गए हैं या नहीं ?"

"पर इस फर्नीचर पर दो हजार रुपया खर्च हो गया है।"

"फिर क्या हुआ ? दो हजार गाँव में एक बहुत बड़ी बात हो सकती है। यहां तो संकेत मात्र से इतना मिल सकता है।"

"देखें।"

"मामा कृपालसिंह बहुत ही चतुर आदमी हैं। आप दो-तीन ही वर्षों में देखेंगे कि आपके भाई आपकी अवस्था पर ईर्ष्या करने लगेंगे। मोहनसिंह ही केवल हमारी बात को समझता था पर आपके बड़े भाई

सोहनलाल तो बिल्कुल मूर्ख हैं। उनको समझ ही नहीं आया कि हम उनको पीछे छोड़ आगे निकल रहे हैं। उनका विचार है कि हम शीघ्र ही सब रुपया खा-पीकर भूखे नगे हो उनके पास भीख माँगने जा पहुंचेंगे।''

रामसिंह के मन में अभी भी देहातियों की सरलता लोप नहीं हुई थी। इस कारण उसने कह दिया, ''गुणवन्ती ! समय से पूर्व अभिमान करने से कोई लाभ नहीं। हमको विचार करना चाहिए कि किस प्रकार यह खर्चा हम निकाल सकेंगे।''

''निकलेगा। आप 'वाहे गुरु' का नाम लेकर काम शुरू क- दीजिए। सब ठीक ही होगा।''

दुकान खुल गई। प्रारम्भ में तो बिक्री कुछ नहीं हुई। इसमें कारण यह था कि दुकान इतनी सजी हुई नहीं थी, जितनी आसपास की अन्य दुकानें थीं। एक सप्ताह के अनुभव के पश्चात् दुकान का फर्नीचर बदलना पड़ा। नए शो केस बनवाने पड़े। बिजली के बल्ब बड़े लगाने पड़े। ग्राहकों के बैठने का स्थान दूसरे ढंग से करना पड़ा।

दुकान सज जाने से ग्राहक आकर्षित होने लगे और बिक्री होने लगी। परन्तु रामसिंह ने अनुभव किया कि उनके पास बहुत सा सामान जो था, वह ग्राहकों को पसन्द नहीं था। वह सारा सामान कृपालसिंह के कहने से आया था और घटिया प्रकार का था। साथ ही एक समस्या यह भी थी कि नकली आभूषण के भी फैशन दिन प्रतिदिन बदलते रहते थे। जो वस्तु एक दिन बिक रही थी, दूसरे दिन उसे कोई पूछता नहीं था। परिणाम यह हुआ कि बिक्री प्रथम मास बहुत कम हुई। पश्चात् धीरे-धीरे बढ़ने लगी। इस पर भी एक वर्ष तक यह किसी मास भी दो हज़ार रुपया मासिक नहीं बढ़ी।

एक वर्ष पश्चात् रामसिंह के कहने पर हिसाब किया गया। दुकान की वर्ष भर की बिक्री लगभग तेरह हज़ार हुई थी। इसमें अनुमानित लाभ होना चाहिए था, तीन हज़ार परन्तु सब खर्चा आदि निकालकर देखा गया कि वह केवल छः सौ रुपया है। दुकान का अनुमानित व्यय पौने दो सौ था, परन्तु हिसाब में यह तीन सौ के लगभग निकला। रामसिंह का अपना व्यय चार सौ रुपया मासिक था। सारा हिसाब-किताब देखने पर रामसिंह का मुख उतर गया। अठारह हज़ार की पूंजी, जो वह कडेवाला से लेकर चला था, दस हज़ार रह गई थी। यह सब दुकान में लगी हुई थी। नकद हाथ में कुछ नहीं था।

लाभ का चतुर्थ अंश डेढ़ सौ रुपया कृपालसिंह को दिया गया तो

उसने कह दिया कि वह डेढ़ सौ सालाना की नौकरी नहीं कर सकता अतएव वह अपना काम पृथक् करेगा।

इससे रामसिंह घबरा उठा। वह ऐसा अनुभव करने लगा मानो मझदार में किसी अज्ञात दिशा की ओर बहता चला जाता है। इससे वह उदास और निराश अनुभव करने लगा।

यह परिस्थिति देख गुणवन्ती ने अपने पिता शामसिंह से राय की। शामसिंह ने कहा, "घर का इतना व्यय एक छोटी सी दुकान से नहीं निकल सकता।"

"पर पिताजी!" गुणवन्ती ने कहा, "आपका इतना खर्चा कहाँ से निकलता है?"

"मेरी बात छोड़ो। मुझको तो अन्य प्रकार से भी आय होती है।"

"तो हमें भी कोई ऐसा काम बता दीजिए, जिससे हमें भी पर्याप्त आय होने लगे।"

शामसिंह विचारमग्न हो गया। कुछ विचार करने के पश्चात् उसने कहा, "मैं समझता हूँ कि दुकान बन्द कर देनी चाहिए। माल बेच दो। तुम्हारे लिए कोई दूसरा काम ढूँढूँगा।"

: २ :

व्यापार में भारी हानि होने पर भी रामसिंह का जीवन अमृतसर में नीरस नहीं था। नगर और गाँव में यही तो अन्तर था। गाँव में जीवन एक सार चलता है और नगर में नित्य नए-नए आकर्षण आते रहते हैं।

दुकान मध्यान्ह पश्चात् दो बजे खुलती थी और रात के दस बजे तक चलती थी। प्रायः परदेशी ग्राहक, जो दरबार साहब के दर्शन करने के लिए आते थे। अपने बाल-बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ सामान खरीद कर ले जाते थे। दुकान खुलने से पहिले सवेरे से दो बजे तक रामसिंह खाली ही रहता था। इस सब समय वह घर पर आराम करता था। घर का काम तो नौकर करते थे और वह यह समय अपनी पत्नी और बच्चे के साथ व्यतीत करता था। इसके अतिरिक्त सिनेमा, थिएटर और क्लब का कार्यक्रम रात के दस बजे के पश्चात् चलता था। चूँकि सवेरे उठने की जल्दी होती नहीं थी, इस कारण रात देर तक घूमने फिरने में व्यतीत की जाती थी।

रात का खाना प्रायः होटल में होता था। नौकर अपने लिए घर पर बनाता था। इस प्रकार इस प्रबन्ध में एक ग्रौर खर्चा अधिक हो रहा था। दूसरे रात दुकान बन्द करने से पहले ही रामसिंह का दुकान कृपालसिंह के हवाले कर आना कृपालसिंह को चोरी करने का अवसर दे देता था।

एक वर्ष में रामसिंह के कई मित्र बन चुके थे। कइयों के घर जाकर वह खाना खा चुका था तथा कइयों को अपने घर बुला चुका था। रामसिंह और गुणवन्ती अपने मित्रों में मिलनसार थे और इनका सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध एक भगीरथ के साथ था। भगीरथ हाल बाज़ार में दवाइयों की दुकान करता था। उसका काम अच्छा चलता था और घर से भलीभांति सुखी था।

भगीरथ और रामसिंह, दोनों की पत्नियाँ परस्पर सहेली थीं। इस कारण दोनों परिवारों में उठना-बैठना, घूमना-फिरना प्रायः इकट्ठा ही रहता था। इस कारण इनकी मित्रता प्रतिदिन बढ़ रही थी।

इस समय रामसिंह को दुकान पर घाटा हुआ शामसिंह तो अभी विचार ही कर रहा था कि क्या काम रामसिंह को बताए, कि भगीरथ ने अपनी एक योजना रामसिंह के सम्मुख रख दी। उसने कहा, "रामसिंह ! यह नकली जवाहरातों में व्यर्थ अपनी आयु गंवा रहे हो। सारी आयु भर इसमें कुछ नहीं बनेगा। मेरा विचार है कि तुम सब कुछ बेच-बाचकर नकद रुपया इकट्ठा कर लो। मेरे पास भी कुछ नकद है। हम दोनों एक कम्पनी बना लेते हैं और पश्चात् यह कम्पनी ठेके लेना शुरू कर देगी। यदि गुणवन्ती के पिता ने सहयोग दिया तो हमें कई सरकारी ठेके मिल जाएंगे और परिणामस्वरूप साल भर में पन्द्रह-बीस हज़ार कमा लेना कोई कठिन नहीं।

"मुझको ठेकेदारी का कुछ भी अनुभव नहीं।" रामसिंह ने कहा।

मैं इस विषय में काफी कुछ जानता हूँ। मेरे चाचा लाहौर में ठेकेदार हैं। मैं उनके यहाँ कई वर्षों तक मुंशीगिरी कर चुका हूँ और इसके सब भेदों को जानता हूँ।"

रामसिंह ने अपने श्वसुर शामसिंह से भगीरथ की बात कही तो उसने बहुत पसन्द किया। साथ ही यह राय दी कि परस्पर इकरारनामा लिख लिया जाए जिससे कोई बेईमानी न कर सके।

रामसिंह ने अपनी दुकान दस हज़ार में कृपालसिंह के हाथ बेच डाली। उस बेकार आदमी के पास एक वर्ष पूर्व एक पैसा नहीं और अब उसने नकद दस हज़ार रुपए देकर दुकान मोल ले ली।

दस हज़ार रुपया भगीरथ ने लगाया और भगीरथ एण्ड कम्पनी को, जिसकी नकद पूंजी बीस हज़ार रुपया थी, एक लाख रुपये का सरकारी ठेका रामसिंह की सिफारिश से मिल गया।

भगीरथ जानता था कि सीमेन्ट और रेत के अनुपात में कहाँ तक बेईमानी की जा सकती है। मज़दूरों की मज़दूरी में कैसे कमी की जा सकती है और पैमाइश के समय ओवरसियर के ठीक काम की रिपोर्ट कैसे ली जा सकती है।

ठेका लेते समय भगीरथ और रामसिंह का अनुमान था कि लगभग दस हज़ार की बचत होगी परन्तु उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब हिसाब गिनने पर यह पता लगा कि लाभ तीस हज़ार के लगभग है। भगीरथ ने हिसाब इस ढंग से बताया कि इन्कम टैक्स वालों को दिखाने के लिए लाभ केवल पांच हज़ार निकला। रामसिंह समझ गया कि धनी होने का मार्ग कौन सा है।

इसी वर्ष एक और काम ठेके पर लिया गया और इसमें भी चालीस हज़ार का लाभ हुआ। वर्ष के अन्त में दोनों पत्तीदारों के भाग में पैंतीस हज़ार रुपया निकला।

गुणवन्ती ने जब इस लाभ को सुना तो कहने लगी, "अब तो आपको नगरों की महिमा का ज्ञान हो गया है न ?"

"हाँ, परन्तु इसको महिमा तो नहीं कह सकते। इसको रहस्य कहना अधिक उचित होगा। लेकिन गुणवन्ती! यह सब लाभ तो चोरी डाका डालने से हुआ है न ?"

"डाका डालना कैसे ?"

"काम करने वाले मज़दूरों की उजरत कम गिनी गई, पैमाइश गिनते समय ओवरसीयर की जेब गरम करके, पैमाइश बढ़वा दी गई, दस हज़ार बोरे सीमेंट में से तीन हज़ार से ऊपर बचाकर बेच डाले गए। यह सब तो डाके ही हैं। फिर लकड़ी घटिया लगाई गई है, लोहा पतला लगाया है, ईंटें घटिया प्रकार की लगाई गई हैं। मैं समझता हूं कि इस सब बेईमानी में ही हमें कम-से-कम चालीस-पैंतीस हज़ार लाभ हुआ है। केवल शेष ही हलाल की कमाई कही जा सकती है।"

गुणवन्ती इन आंकड़ों को सुन कुछ क्षण तो भौचक्की रह गई। फिर कुछ विचार कर कहने लगी, "हम क्या कर सकते हैं ? दुनिया ही ऐसी है। इस दुनिया में इसी प्रकार रहा जा सकता है। आप एक बात करिए। इस लाभ के रुपयों में गुरु ग्रन्थ साहब का अखण्ड पाठ रखवा दीजिए और पंथ के लिए कुछ दान कर दीजिए।"

"यह हराम की कमाई नेकी की कमाई बन जाएगी।"

रामसिंह हँस पड़ा और चुप कर रहा। उसी दिन सायंकाल उसने भगीरथ से कहा, "भापा! मैं अखण्ड पाठ रखवाने वाला हूँ।"

"क्या हुआ है? लड़का?" गुणवन्ती इन दिनों प्रसव काल के समीप थी।

रामसिंह हँस पड़ा और हँसते हुए कहने लगा, "नहीं भापा! अभी तो इस मैली कमाई के रुपयों के धोन के लिए यह कर रहा हूँ। लड़का होगा तो दावत करनी पड़ेगी।"

"ठीक है रामसिंह! तुम अखण्ड पाठ रखवाओ। तनिक इतना ध्यान रख लेना कि भोग पड़ने के दिन पी० डब्ल्यू० डी० के बड़े-बड़े अफसरों को अवश्य बुला लेना। मैं एक और काम लेने का यत्न कर रहा हूँ, पहिले तुम यह अखण्ड पाठ रख लो। पीछे मैं अपने लड़के का यज्ञोपवीत संस्कार करने का विचार कर रहा हूँ। उस समय भी अफसरों का ध्यान रखना पड़ेगा।"

अखण्ड पाठ रख दिया गया और भोग के दिन ऐक्जीक्यूटिव इंजीनियर, सब-डिवीज़नल आफिसर और सब ओवरसीयरों को विशेष रूप से निमन्त्रण मिला। रामसिंह ने अपने पिता तथा भाइयों को भी निमंत्रण भेजा, परन्तु गाँव में कटाई के दिन थे और कर कोई आ नहीं सका।

गुणवन्ती को कंडेवाला से किसी का न आ सकना बहुत बुरा लगा। उसने समझा कि उनका बहिष्कार कर दिया गया है। उसने अपना संशय रामसिंह से कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे सफल जीवन को देख उन्हें हमसे ईर्ष्या होने लगी है।"

"पर उनको किसने बताया है कि हम सफल हो रहे हैं?"

"यह अखण्ड पाठ इसी बात का तो सूचक था।"

"मेरा विचार है कि कटाई के दिन होने से कोई आ नहीं सका।"

"मोहनसिंह को ही भेज देते।"

"वह आता तो और भी नाराज़ होता।"

कुछ दिनों पश्चात् गुणवन्ती के घर पुनः लड़की उत्पन्न हुई और प्रस्तावित भोज नहीं दिया जा सका। रामसिंह को लड़का न होने से भारी निराशा हुई।

इसके पश्चात् ठेकेदारी का काम धड़ल्ले से चलने लगा। बेईमानी करने रिश्वत देने में और सिफारिश लगवाने में जो आरम्भ में थोड़ी झिझक थी, वह अब नहीं रही थी और रुपया धड़ाधड़ आने लगा

था।

दो वर्ष व्यतीत होते-होते रामसिंह के पास एक लाख रुपया एकत्रित हो गया। अब उसके पास एक मोटर कार थी और वह अमृतसर के रईसों में गिना जाने लगा था।

: ३ :

बहुत मिन्नतें मनाने पर, धागे तावीज़ लेने पर, रामसिंह के घर इस बार एक लड़का हुआ। इससे पति-पत्नी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। लड़का जब तीन मास का हुआ तो गुणवन्ती ने गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ रखने का विचार प्रकट कर दिया। इस बार पुनः भाई और भावजों को बुलाने का विचार किया गया। रामसिंह ने इस विषय में कह दिया, "पिछली बार चिट्ठी भेजी थी तो कोई आया नहीं था। इस बार यदि तुम बुलाना चाहती हो तो स्वयं जाकर ले आओ।"

गुणवन्ती का कहना था, "निमन्त्रण देने के लिए जाना हो तो अपनी मोटर में चलिए।"

"इससे क्या होगा ? फिर गाँव की सड़क भी तो पक्की नहीं।"

"हमारी प्लाईमौथ तो कच्ची सड़क पर भी चल सकती है। चलिए, हम दोनों चलेंगे।"

"तो बच्चों को भी साथ ले चलोगी ?"

"नहीं, उनके बीमार हो जाने का डर है।"

"तब ठीक है।"

"पिता जी को लिख दीजिए कि हम आ रहे हैं। हमारा घर खुलवाकर बड़ा कमरा साफ करवा दें। हम एक रात वहाँ रहेंगे।"

रामसिंह ने पत्र दिया कि वे दोनों वहाँ आ रहे हैं।

रामसिंह को गाँव से गए तीन वर्ष हो चुके थे। रामसिंह के जाने के एक वर्ष पश्चात् मोहनसिंह घर से भागा था। रामसिंह ने, अपने पहिले पत्र में और इसमें भी, अपने कारोबार के विषय में कुछ नहीं लिखा था। पहिली बार सुन्दरसिंह ने जाने में असमर्थता लिख दी थी। इस बार रामसिंह स्वयं ही आ रहा था।

इन तीन वर्षों में परिवार की परिस्थिति में पर्याप्त अन्तर पड़ चुका था। सुन्दरसिंह ने जगतराम के स्कूल के लिए पक्की इमारत बनवा दी थी, जिस पर उसका दो हज़ार रुपया खर्च हुआ था। इस स्कूल में दस वर्ष से छोटी आयु के लड़के तथा लड़कियाँ पढ़ती थीं।

स्कूल के सुचारु रूप से चलाने के लिये जगतराम ने चौधरी की बहू केवली और लड़की महिन्दर कौर को लिखा-पढ़ाकर अपना सहायक बना लिया था।

इस विषय में प्रस्ताव महिन्दर कौर की ओर से ही हुआ था। जगतराम ने अक्षरज्ञान के साथ-साथ हाथों और मन को शिक्षित करने के लिए स्कूल में ड्राइंग और मिट्टी के खिलौने बनाना भी सिखाना आरम्भ कर दिया था। इस कारण वह पढ़ाई पर स्वयं अधिक ध्यान नहीं दे सकता था और न ही स्कूल में अधिक बच्चों को ले सकता था।

एक दिन मध्याह्न का भोजन करने जब जगतराम चौधरी के घर आया, तो महिन्दर कौर ने पूछ लिया, "मास्टर जी ! झिंगुर के लड़के को स्कूल में प्रवेश नहीं मिला न ?"

"नहीं। मैं अकेला और लड़कों को पढ़ा नहीं सकता।"

झिंगुर ने समझा है कि उसके लड़के को अयोग्य समझ लिया गया।"

' लड़का तो होशियार है परन्तु किया क्या जाए। पहिले ही पढ़ने वालों को निकाला तो जा नहीं सकता। इस वर्ष पाँचवीं श्रेणी में पाँच लड़के हैं। जब वे चले जाएंगे तो उनके स्थान पर नई भर्ती करते समय उसे ले लिया जाएगा।"

"तो तब तक वह क्या करे ?"

"पढ़ाने वालों की कमी है महिन्दर !"

"तो आप एक बात करिए। मुझको पढ़ाने का ढंग सिखा दीजिए। मैं पहिली दूसरी श्रेणी के बच्चों को पढ़ा दिया करूंगी।"

"तुम पढ़ाओगी ?"

"क्यों नहीं ?"

"चौधरी पसन्द नहीं करेगा।"

"क्यों नहीं करेगा ?"

इस समय केवली, जो वहीं बैठी थी, कहने लगी, "और मैं क्यों नहीं पढ़ा सकती ? मैं तो महिन्दर कौर से अधिक पढ़ी हूँ।"

"चौधरी कभी यह पसन्द नहीं करेगा कि उसके घर की स्त्रियाँ स्कूल में पढ़ाने जाएँ।"

मास्टर तो बात समाप्त कर गया, परन्तु महिन्दर कौर को इससे सन्तोष नहीं हुआ और जब चौधरी खेतों पर से घर आया और हाथ-मुख धो खाने के लिए बैठा, तो उसने मन की बात कहने के लिए, झिंगुर

की बात प्रारम्भ कर दी। उसने कहा, "चाचा! झिंगुर का लड़का स्कूल में भर्ती होने गया था, परन्तु मास्टर जी कहते हैं कि वे अब और अधिक बच्चों को पढ़ाने के लिए नहीं ले सकते।"

"तो?"

"और मास्टर पढ़ाने के लिए चाहिये। और मास्टर रख लिए जाएँ तो कैसा रहे?"

"जगतराम की तरह और मास्टर बिना वेतन के काम नहीं करेंगे।"

"बिना वेतन के काम करने वाले तो हैं, पर चाचा! तुम रखना चाहो तभी तो वे काम कर सकते हैं।"

"कहाँ हैं वे मास्टर?"

"एक तो मैं ही हूँ।"

"तुम? तुम पढ़ाओगी? तुमको कुछ आता तो है नहीं।"

"चाचा! मास्टर जी मुझे पढ़ाना सिखा देंगे। भाभी केवली तो मुझसे भी अधिक पढ़ी-लिखी हैं। चाचा! तुम कहो तो हम दोनों पढ़ाने का काम शुरू कर दें।"

चौधरी इस प्रस्ताव से गंभीर हो गया। वह लोक-लाज की बात विचार कर रहा था। महिन्दर कौर चाचा के मन की बात को समझ रही थी। इस कारण उसने कहा, "चाचा! जालन्धर में तो कई औरतें पढ़ाने का काम करती हैं।"

"महिन्दर! वह जालन्धर है और यह एक गाँव है।"

"तो फिर क्या हुआ? मैं तो नगर की रहने वाली हो गई हूं।"

केवली ने अपनी युक्ति दे दी। उसने कहा, "चाचा! स्कूल हमारा है। इसका सब खर्चा तुम देते हो। फिर अपने घर के स्कूल में काम करने में क्या हानि है? हम नौकरी थोड़े ही करेंगी।"

"मैं विचार करता हूँ," चौधरी ने कहा, "कि इसमें हानि ही क्या? लोग कुछ काल के लिए निन्दा करेंगे पर क्या लोगों की निन्दा और प्रशंसा से हम अपना व्यवहार निश्चय करें? तुम दोनों इकट्ठी पढ़ाने जाया करोगी तो कोई बात नहीं।"

चौधरी के मन में एक विचार यह भी उठ रहा था कि केवली का मन बहल जाया करेगा। इस कारण दोनों को इकट्ठे पढ़ाने जाने की स्वीकृति मिल गई।

अगले दिन दोनों जगतराम से पढ़ने लगीं। दो महीने में ही वे स्कूल में पहली तथा दूसरी श्रेणी के बच्चों को पढ़ाने लगीं। जगतराम ने और

बच्चों को स्कूल में प्रवेश देकर स्कूल की संख्या पचास कर दी।

जब रामसिंह गाँव में आया तो स्कूल के बच्चों की संख्या एक सौ के लगभग हो गई थी। केवल पाँचवीं श्रेणी में बीस विद्यार्थी पढ़ने लगे थे। मास्टर ने स्कूल में दस्तकारी सिखाने का प्रबन्ध भी कर दिया था। उसने गाँव के भूमिपतियों की एक सभा बना दी थी और वह उनको प्रेरणा देकर, फसल के समय चन्दा इकट्ठा करवा लिया करता था। इससे वह स्कूल के ऊपरी खर्च का प्रबन्ध करता था। उसने स्कूल में एक छोटा सा पुस्तकालय भी बना लिया था।

गाँव वालों की आय बढ़ रही थी क्योंकि पिछले दो वर्षों में गन्ने की फसल बहुत ही अच्छी हुई थी। इसका एक और परिणाम होने लगा। गाँव वाले नगर जाते थे और वहाँ की बुरी बातें सीख कर आते थे। इससे नगर की बुराइयाँ भी गाँव में आने लग गई थीं। मास्टर का प्रयत्न यह रहता था कि नगर की अच्छी बातें वह गाँव में ले आए और गाँव की अच्छी बातों को वहाँ से जाने न दे परन्तु ऐसा करने के लिए उसकी शक्ति सीमित थी और दूसरी ओर मनुष्य में पतन की ओर जाने वाली प्रवृत्ति प्रबल सिद्ध हो रही थी।

पांधा सन्तराम चमार लड़की के साथ अम्बाला स्टेशन पर पकड़ा गया था और एक नाबालिग लड़की को भगाकर ले जाने के कारण दो वर्ष का दंड पा गया था। दो वर्ष की जेल भोगकर वह अपने ससुराल अपनी बीबी और बच्चों को लेने पहुँचा तो उन्होंने उसके साथ आने से इन्कार कर दिया। पांधा सन्तराम का स्वसुर उससे बहुत नाराज़ था और जब सन्तराम ने अपनी स्त्री को ले जाने के लिए उससे पूछा, तो उसने कह दिया, "सन्तराम! अपने पाप कर्मों का प्रायश्चित करो। अन्यथा तुम एक ब्राह्मण-कन्या को छूने के योग्य नहीं रहे।"

परिणाम हुआ कि सन्तराम अकेला ही गाँव लौटा और गाँव के अन्य युवकों के साथ उनकी संगत में पड़ ढिलवाँ की एक वेश्या मंगली के पास जाने लगा। ये सब युवक राय कर मंगली को फुसलाकर गाँव ले गए और उसको भाड़े के एक मकान में रख दिया। इस प्रकार मंगली गाँव में एक तमाशे की चीज़ बन गई।

सुन्दरसिंह को जब बुराई का पता चला तो उसने गाँव के प्रमुख चार-पाँच व्यक्तियों से राय कर उसको डरा-धमका कर गाँव से भगाने की कोशिश की परन्तु उस औरत ने इन्हें जो गालियाँ सुनाईं तो इनको दुबारा उसके पास जाने का साहस नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि यह बुराई गाँव में जड़ पकड़ गई।

सुन्दरसिंह ने जगतराम से इस विषय में राय की तो जगतराम ने कह दिया, "चाचा! यह बुराई इस प्रकार नहीं मिटेगी इसको दूर करने का उपाय शिक्षा और जीवन साधन हैं। इन दोनों के अभाव से ही मनुष्य पर-स्त्री-गामी तथा वेश्यागामी बनता है। जीवन-साधनों में केवल धन ही नहीं है। इसमें अन्य साधनों की अव्यवस्था भी है। वास्तव में यह उस समय उपस्थित होती है, जब आय और व्यय में सन्तुलन लुप्त हो जाता है। प्राय: स्त्रियां इस त्रुटि के कारण ही वेश्या-वृत्ति में फंस जाती हैं। पुरुष प्राय: कुशिक्षा के कारण वेश्यागामी होते हैं।"

"मास्टर! तुम कहते तो ठीक हो, परन्तु इसको रोकने का उपाय बताओ न। यह पाप अब हमारे गांव में आ पहुंचा है और मैं इस गांव को बचाना चाहता हूं।"

"नगर अपनी सीमाओं को बढ़ाते-बढ़ाते गांव तक आ पहुंचे हैं। मैं पिछले चार वर्षों से प्रयत्न कर रहा हूं कि नगर की अच्छी अच्छी बातों को गांव में ले आऊं? बहुत यत्न करने पर भी उनको नहीं ला सका, परन्तु नगरों का पाप स्वयमेव ही यहां आ पहुंचा है।"

"कैसे रोका जाए इनको?"

मास्टर गम्भीर हो चुप कर रहा। वह विचार कर रहा था कि इस स्त्री को समझाना चाहिए और इसके निर्वाह का तथा इसकी अन्य कामनाओं की पूर्ति का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए कौन उसे समझावे और फिर उसके समझाने का कितना प्रभाव हो सकेगा, यह वह नहीं जानता था। वह स्वयं यह प्रयत्न करे तो बदनाम भी हो सकता है और जो निर्माण-कार्य वह गांव में करना चाहता था, उसमें भारी बाधा खड़ी हो सकती है।

: ४ :

इस समय मोहनसिंह अपनी प्लाईमोथ गाड़ी में गांव में आ पहुंचा। चौधरी मध्याह्न का भोजन कर चौपाल पर बने छावन के नीचे बैठा सुस्ता रहा था। मोटर का हार्न और बच्चों का 'मोटर मोटर' चिल्लाना सुन, वह उस ओर देखने लगा, जिस ओर शोर हो रहा था। एक दो क्षण में ही मोटर धूल उड़ाती हुई चौपाल के सामने आ खड़ी हुई और उसमें से रामसिंह और गुणवन्ती उतर पड़ीं। सुन्दरसिंह ने उनको देखा और लपककर उनसे मिलने के लिए आगे बढ़ गया।

रामसिंह ने सत् श्री अकाल कहा तो सुन्दरसिंह ने उसे गले लगा

लिया। गुणवन्ती हाथ जोड़ भीतर भाभियों से मिलने चली गई। यह व्यवहार नया था। पहिले गुणवन्ती अपने स्वसुर के पायलागूं किया करती थी। इस पर भी सुन्दरसिंह ने कुछ नहीं कहा और इस बात को मन में बैठने नहीं दिया। वह रामसिंह को चौपाल पर ले गया और वहाँ बैठा पूछने लगा, "सुनाओ कैसे हो?"

"मजे में हूं चाचा! दुकान तो असफल रही। कृपालसिंह बेईमान निकला, परन्तु पीछे गुणवन्ती के पिता की सहायता से और एक मित्र के सहयोग से ठेकेदारी करने लगा हूँ। यह काम करते हुए अढ़ाई वर्ष हो गए हैं और इस काल में डेढ लाख से अधिक लाभ हुआ है।"

"डेढ़ लाख?" सुन्दरसिंह को रामसिंह की बात का विश्वास नहीं हुआ, परन्तु सामने एक बहुत बढ़िया मोटरकार खड़ी देख संदेह के लिए स्थान नहीं रहा। इस कारण उसने कहा, "भगवान का धन्यवाद है कि तुम अपनी योजना में सफल हुए हो। पर राम! तुम्हारे जाने के पीछे मोहन घर से भाग गया और यह पता चला है कि वह दिल्ली गया है।"

"उसको कितना रुपया दिया था चाचा?"

"दिया कुछ नहीं। वह कहकर नहीं गया। एक दिन शूगर मिल के गन्ने का रुपया लेने गया और वहाँ से चौबीस सौ रुपया लेकर सीधा दिल्ली का टिकट ले चल दिया। पश्चात् उसकी कोई सूचना नहीं मिली।"

"और केवली?"

"वह यहीं है। मास्टर जगतराम को तो तुम जानते ही हो। उसने केवली और महिन्दर को इतना पढ़ा दिया है कि वे दोनों उसके स्कूल में पढ़ाने लग गई हैं।"

"महिन्दर और केवली भाभी स्कूल में पढ़ाती हैं? क्या वेतन लेती हैं?"

"कुछ नहीं। राम! वह स्कूल तो मैं ही चला रहा हूँ। न तो जगतराम कुछ वेतन लेता है, और न केवली तथा महिन्दर कौर। उस स्कूल में गाँव के सौ से ऊपर बच्चे पढ़ते हैं। स्कूल के लिए दो हज़ार रुपया खर्च कर एक इमारत मैंने बनवा दी है।"

रामसिंह ने बात बदल दी। उसने कहा, "चाचा! मैं तुमको, भैया को और भाभियों को लेने आया हूं। लड़के का नाम रखना है और दर्बार साहब का अखण्ड पाठ रखा हुआ है। कल भोग पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि चलकर अपने पोते को आशीर्वाद दे आओ।"

"कब चलना चाहते हो ?"

"ग्राज ही।"

"मैं तो जा नहीं सकूंगा।"

"क्यों ?"

"बूढ़ा जो हो गया हूँ।"

"पर चाचा ! इस गाड़ी में जाने से तो कुछ भी कष्ट नहीं होगा। ऐसा मालूम देगा कि कुर्सी पर उड़े जाते हो।"

इस समय केवली ग्रौर महिन्दर कौर वहां ग्रा पहुंची। सुन्दरसिंह ने पूछा, "ग्राज जल्दी कैसे ग्रा गईं तुम ?"

"चाचा ! यह मोटर जब स्कूल के सामने से निकली तो मास्टर जी ने रामसिंह भैया को पहिचान लिया। उन्होंने हमको बताया तो हम चली ग्राई हैं।"

"चलो भीतर चलो, गुणवन्ती भी ग्राई है।"

सायं चार बजे स्कूल की छुट्टी कर जगतराम भी मिलने चला ग्राया। जगतराम ग्रब घर का प्राणी ही माना जाता था, इस कारण वह भी भीतर जा पहुंचा। रामसिंह ग्रपने रुपये कमाने की कथा सुना रहा था। उसने जब बताया कि रेता कुछ ग्रधिक मिलाने से एक इमारत में एक हजार थैले सीमेंट के बच गए थे ग्रौर इससे चार हज़ार का मुनाफा हो गया तो जगतराम ने पूछ लिया, "कितना सीमेंट ग्रौर कितनी रेत मिलानी चाहिए ?"

"एक बोरा सीमेंट में चार बोरे रेत मिलाई जाती है, परन्तु ठेकेदार एक बोरे में नौ दस बोरे रेत मिला देते हैं। इस प्रकार ग्रढ़ाई बोरे की जगह एक बोरे सीमेंट से काम चला लेते हैं ग्रौर बाकी डेढ़ बोरी सीमेंट बचा लेते हैं। सीमेंट सरकार देती है ग्रौर हमें ग्रढ़ाई बोरियों में से डेढ़ बोरी बच जाता है। यह हम बाज़ार में बेच देते हैं।"

"कितने दाम की इमारत में कितना लाभ होता है ?"

"जब किसी इमारत का ठेका मिलता है, तो उसका पूरा ब्यौरा छपाकर ठेकेदारों को दे दिया जाता है ग्रौर ठेकेदार 'टेंडर' भर देते हैं। ग्रर्थात् वे सरकार को बताते हैं कि कितने में यह काम वे कर सकेंगे। सरकार कम-से-कम टेंडर वाले को काम दे देती है। हम सरकारी भाव से भी कम का टेंडर भरते हैं, ग्रौर सरकार हमारा टेंडर स्वीकार कर लेती है। इस टेंडर भाव में यदि मह ईमानदारी से काम करें तो लाभ के स्थान हानि तक हो सकती है। रोटी तक मुश्किल से मिले। इस कारण हम सीमेंट में रेत मिलाते हैं। ईंटें घटिया लगा दीं, पैमाइश के समय

थोड़ा हेर-फेर कर दिया। अफसर लोग यह सब कुछ समझते हैं और हम उनको कुछ ले-देकर अपने बिल पास करा लेते हैं।"

सुन्दरसिंह इस कथा से घबरा उठा। उसने बात बदल दी, "लड़का कितना बड़ा हो गया है?"

"कल तीन मास का होगा।"

"तो उसको घर अकेले छोड़ आए हो?"

"चाचा! वहाँ उसकी देखभाल के लिए 'आया' है।"

"आया? वह क्या होती है?" सुन्दरसिंह ने समझा कि उसके ससुराल की कोई लड़की होगी, परन्तु राम ने बताया कि आया का अर्थ उस नौकरानी से होता है, जो बच्चे पालती है।

"तो तुम्हारे बच्चे को गुणवन्ती अपना दूध नहीं देती?"

"नहीं। बच्चे को हम विलायती दूध देते हैं। वहाँ से डिब्बों में बन्द सूखा हुआ दूध का पाउडर आता है, वह गरम पानी में घोलकर पिलाया जाता है। बच्चा बड़े मज़े में पीता है।"

"भाई! नगरों की विचित्र बातें हैं। हम तो यह समझते हैं कि जिस बच्चे ने माँ का दुध नहीं पिया, उसकी माँ से ममता ही क्या रहेगी!"

"चाचा! डाक्टर कहते हैं कि दूध पिलाने से माँ का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।"

"तो अब यह रुपया कमाकर अखंड पाठ रखा है तुमने?"

"हाँ, चाचा! एक बार पहिले भी रखा था। चाचा! यह तो मेलजोल करने का साधन है। यूँ तो पाठ घर में आगे-पीछे भी होता रहता है; मैं चाहता हूँ कि मास्टर जी के स्कूल के लिए एक हज़ार रुपया चन्दा दूँ, जिससे यहाँ बच्चों के पढ़ाने का प्रबन्ध और भी अच्छा हो सके।"

सुन्दरसिंह ने मास्टर की ओर देखकर पूछा, "क्यों मास्टर! जरूरत है रुपयों की?"

"चौधरी जी! यह तो स्कूल की कमेटी का काम है कि वह रुपया ले अथवा न ले। मुझको रुपयों की आवश्यकता नहीं। मेरे भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध तो हो ही रहा है।"

"अच्छी बात है राम! तुम्हारे दान की बात कमेटी में रखूँगा। यदि कमेटी ने स्वीकार किया तो रुपया दे देना।"

"तो कमेटी रुपया अस्वीकार भी कर देती है?" राम ने पूछा।

"हाँ, मास्टर जी ने दान लेने के कुछ नियम बनाए हुए हैं। हम

कमेटी वाले इन नियमों का पालन करते हैं। एक नियम यह भी है कि किसी ऐसे व्यक्ति से दान नहीं लेना, जो स्वयं धनोपार्जन नहीं करता। दूसरा नियम यह है कि आय में से दशांश से अधिक नहीं लेते।"

"बहुत विचित्र है।"

"हाँ। साथ ही यह भी नियम है कि दान लेकर उस व्यक्ति के नाम की घोषणा नहीं करते। दान देकर डुग्गी पीटने वाले का दान नहीं लिया जाता। यहाँ गुप्त दान होता है। कमेटी के सदस्यों को पता रहता है, और उसका हिसाब भी रखते हैं परन्तु किसी अन्य को नहीं बताते।"

"तो दान देने वाले को क्या लाभ हुआ?"

"साथ ही यदि कमेटी को यह पता चल जाए कि दान का धन चोरी किया हुआ है अथवा डाका डाला हुआ है, तो भी यह स्वीकार नहीं किया जाता।"

"क्यों? धन को कोई पाप लग जाता है?"

"ये यहाँ के नियम हैं। सो यदि कुछ देना हो तो लिखकर कमेटी को भेज दो। कमेटी स्वीकार करेगी तो रुपया भेज देना।"

"कभी किसी का धन वापिस भी किया गया है क्या?"

"हाँ, कई लोगों का दिया धन वापिस कर चुके हैं। उस दिन चीनी मिल के मालिक यहाँ आए थे। वे पाँच सौ रुपया देना चाहते थे। कमेटी के एक सदस्य ने कह दिया कि रुपया नहीं चाहिए तो वे पूछने लगे क्यों? मास्टर जी ने कह दिया कि यह ईमानदारी की कमाई नहीं है।

इस पर बहुत झगड़ा हुआ, पर कमेटी का यही निर्णय हुआ कि वह रुपया न लिया जाए।"

"क्या बेईमानी की थी मिल मालिक ने?" रामसिंह ने पूछा।

"मैंने एक बात उसको बताई थी।" जगतराम ने गम्भीर होकर कहा, "वह बात सुन वह चुपचाप वहाँ से चला गया।"

"क्या बात थी वह?"

"वह गुप्त है। किसी को बताने का मेरा अधिकार नहीं।"

: ५ :

दोपहर को भोजन हुआ और उसके पश्चात् रामसिंह ने कहा, "चाचा! हमको रात होने से पहिले ही यह कच्चा रास्ता तय कर लेना चाहिए। रात को कहीं यह गाड़ी किसी गढ्डे में फंस गई तो बहुत

कठिनाई हो जाएगी। कल सायंकाल भोग पड़ना है और हमें वहाँ जल्दी पहुंचना है।"

"तो ठीक है, तुम तैयार हो जाओ।"

"पर आपको भी तो चलना है।"

चौधरी ने कह दिया, "राम! मैंने तो बताया है कि मैं नहीं जा सकता।"

"तो चाचा! तुम यहीं रहो। पर भापा, दोनों भाभियों और महिन्दर कौर तथा बच्चों को तो चलना ही चाहिए।"

इस पर महिन्दर कौर ने उत्तर दे दिया, "अच्छा राम! तुम हम सबकी ओर से बच्चे को आशीर्वाद और प्यार दे देना।"

"तो तुम नहीं जा रही?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"बस नहीं जा रही।"

"तुम भाभी?" उसने केवली की ओर घूरकर पूछा।

"हमारी ओर से भी बच्चे को प्यार देना।"

"चाचा! भापा को ही भेज दो।"

सोहन ने चटाई पर से उठते हुए कहा, "मुझको कल यहाँ एक आवश्यक काम है और परमेश्वरी भी नहीं जा सकती।"

"तो तुम सबने मेरा बहिष्कार कर रखा है?"

"नहीं राम!" महिन्दर ने साहस बाँधकर कहा, "तुम्हारा बहिष्कार नहीं, प्रत्युत तुम्हारे रुपये का बहिष्कार है।"

"धन को क्या लग गया है? महिन्दर!"

"मैंने तो मन्दिर में बैठकर वचन लिया हुआ है कि अपने दो हाथों की कमाई के अतिरिक्त से खरीदा हुआ एक दाना भी नहीं लूंगी।"

"तो अपनी कमाई में से मेरी रोटी का दाम दे देना।"

"जिस दिन तुम भोजन खिलाने की दुकान खोलोगे, वह भी कर लूंगी।"

इतना कह महिन्दर उठकर घर से बाहर चली गई। केवली भी उसके पीछे-पीछे जाने लगी तो रामसिंह ने कहा, "तो क्या मैं समझूँ कि मैं तुम सबके लिए मर गया हूं?"

गुणवन्ती ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "आप क्यों मरेंगे? हम समझेंगे कि हमारा कोई नहीं रहा।"

इतना कह वह उठ खड़ी हुई और घर से बाहर निकल गई।

सुन्दरसिंह आँखें नीची किए बैठा रहा। रामसिंह भी उठ खड़ा हुआ और सुन्दरसिंह की ओर देखने लगा। उसने समझा कि उसका पिता परिवार के अन्य सदस्यों के हाल पर लज्जित है। उसको उस पर दया आ गई और कहने लगा, "चाचा ! तुम चले चलो। तुम्हारे लिए तो मैं पुत्र ही हूं। तुमको इतना कठोर नहीं बनना चाहिए।"

इस पर सुन्दरसिंह को चेतना हुई। उसने कहा, "राम ! ठहरो।" उसने महिन्दर को आवाज दी, "महिन्दर ! बेटी महिन्दर !"

महिन्दर आई तो चौधरी ने उसको कहा, "भीतर जाकर वह कंठी तो ले आओ, जो सुनार दे गया था।"

महिन्दर अन्दर गई और कंठी ले आई। यह सुन्दरसिंह ने उस दिन बनवाई थी, जब उसे रामसिंह का पत्र मिला था। यह रामसिंह के लड़के के लिए ही थी। सुन्दरसिंह ने इसे राम को देते हुए कहा, "यह ले जाओ और बच्चे को पहिना देना।"

रामसिंह एक क्षण तक विचार करता रहा और पश्चात् कंठी ले, जेब में डाल बाहर निकल गया। सुन्दरसिंह की आँखों से आँसू अविरल बह रहे थे।

गुणवन्ती पहिले ही मोटर में बैठी थी। रामसिंह भी मोटर में जा बैठा और मोटर स्टार्ट कर ले गया। जब मोटर चली गई तो जगतराम, जो चौधरी के पास ही बैठा था, कहने लगा, "चौधरी बहुत ही बुरा हुआ है।"

"क्यों ? क्या हमको जाना चाहिए था ?"

"मैं तो राम के पतन की बात सोच रहा हूं।"

इस समय महिन्दर कौर वहां आ गई और पिता के पास बैठकर कहने लगी, "चाचा ! यदि कुछ भूल हो गई तो क्षमा कर देना।"

केवली, परमेश्वरी और सोहन भी वहां आ पहुंचे। चौधरी ने कहा, "सोहन ! देख लिया है न ! राम कहां से कहां पहुंच गया है।"

"चाचा !" सोहन ने कहा, "जो होना होता है, वह सब भले के लिए ही होता है। हम समझेंगे कि हमारा कोई भाई था ही नहीं।"

इस पर जगतराम ने उठते हुए कहा, "सोहन भैया ! आप सबने जो कुछ भी किया है, उसे बुरा तो नहीं कहा जा सकता, इस पर भी जो कुछ तुम्हारे मन में है, मैं उसको ठीक नहीं समझता। राम तुम्हारा भाई है। उससे तुम्हारा द्वेष नहीं। द्वेष है तो उसकी

कमाई से। वह तुमने छूई तक नहीं। इस पर भी राम से सम्बन्ध टूट नहीं सकता।'

सोहन इन बातों में अन्तर नहीं समझ सका। उसने पूछा, "मास्टर! तुम सत्य के प्रकट करने से डरते हो। हमको डर नहीं है।"

"मैं डरता नहीं। मैं तो यह कह रहा हूं कि धन की बात छोड़कर राम तुम्हारा भाई है। धन के कारण तुमने उसका बहिष्कार किया है। धन के अतिरिक्त तो उसमें कोई दोष नहीं।"

"दोष है।" परमेश्वरी ने कहा, "दोष है उसकी बीवी में, जो अपने पिता के रिश्वत के धन से पली है। उसके रोम-रोम में हराम की कमाई रची हुई है। उसने हमारे भाई को भी पतित कर रखा है।"

चौधरी इन सब बातों से घबरा उठा और खड़ा हो कहने लगा, "अच्छा छोड़ो, अब जाओ। फिर किसी दिन क्रोध के शान्त हो जाने पर विचार करेंगे कि हमारा आज का व्यवहार ठीक था या नहीं।"

मास्टर उठा तो महिन्दर भी उठकर उसके साथ मन्दिर की ओर चल पड़ी। मार्ग में उसने पूछा, "यह सब कुछ ठीक नहीं हुआ न?"

"नहीं, होना यह चाहिए था कि आप सब लोग अमृतसर जाते, वहां धर्मशाला में ठहरते और भोग के समय बच्चे को शकुन देकर बिना एक घूंट जल ग्रहण किए, वापिस लौट आते।"

"इससे क्या होता?"

"होता यह कि तुम लोग अपने व्यवहार से प्रकट कर देते कि मनुष्य से घृणा नहीं प्रत्युत उसके गलत कामों से घृणा की जाती है। आपने गलत कामों के स्थान मानव का तिरष्कार किया है।"

"यदि हम चले जाते तो राम और उसकी बीवी को यह ज्ञान न होता कि हम उसके कामों को पसन्द नहीं करते।"

"क्यों न होता? जब आप लोग उसके घर से एक बूंद जल भी न पीते, तो उसकी समझ में आ जाता कि तुम लोग राम से स्नेह तो करते हो, परन्तु उसके कार्यों को पसन्द नहीं करते।"

महिन्दर चलती-चलती रुक गई। मास्टर उसे रुका देख खड़ा हो उसके मुख पर देखने लगा। महिन्दर गम्भीर विचार में लीन प्रतीत हो रही थी। कुछ क्षण पश्चात् उसका मुख चमक उठा।

पश्चात् वह बोली, "अच्छा मास्टर जी ! मैं चलती हूं और चाचा से इस विषय में राय करती हूं।"

महिन्दर अपने पिता के पास उनके कमरे में जा पहुंची। चौधरी खाट पर लेटा, छत की कड़ियां गिनता हुआ गम्भीर विचार में मग्न था। महिन्दर उसके खाट के समीप बैठकर बोली, "चाचा !"

"क्या है बेटी !"

महिन्दर ने मास्टर जगतराम की विवेचना बताई तो चौधरी के मन में प्रकाश होने लगा। उसने कहा, "मास्टर ने पहिले यह क्यों नहीं बताया ?"

"नहीं बताया तो कुछ हानि नहीं हुई। यह तीस हज़ार की मोटर भी उसी हराम की कमाई में से है। उस पर नहीं चढ़े तो अच्छा ही हुआ है। मेरी राय है कि बैलगाड़ी जुतवाकर स्टेशन को चल दें। रात को एक बजे की गाड़ी से हम अमृतसर रवाना हो जाएंगे। अमृतसर में किसी धर्मशाला में ठहरकर शाम को तीन बजे उनके घर जा पहुंचेंगे।"

"अच्छा, जरा सोहन और परमेश्वरी को तो बुलाओ।"

सब मिले और राय हुई। संपूर्ण परिवार बच्चों को लेकर उत्सव पर पहिनने योग्य कपड़े सन्दूक में बन्द कर, बैलगाड़ी पर सवार हो चल पड़ा।

गाड़ी प्रातः छः बजे अमृतसर पहुंची। वहां से वे धर्मशाला में जाकर ठहर गए। दो घंटा आराम कर, स्नान-ध्यान से अवकाश पा सब दरबार साहब के दर्शन के लिए जा पहुंचे। वहां गुरु ग्रन्थ साहब की वन्दना कर, चढ़ाव चढ़ा, प्रसाद ले बाहर आ गए। सरोवर की प्रदक्षिणा कर, एक किनारे बैठ भोजन करने लगे। परिवार में पांच बड़े और सात छोटे बच्चे थे। सबके सब अति प्रसन्न और दरबार साहब का सुन्दर विशाल दृश्य देख पुलकित हो रहे थे।

मध्याह्न पश्चात् तीन बजे के लगभग वे धर्मशाला लौट, बढ़िया कपड़े पहिन, रामसिंह की कोठी पर जा पहुंचे। कोठी में एक सहस्र से ऊपर लोग जमा थे। ग्रन्थी मध्य में एक ऊंची चौकी पर बैठा पाठ कर रहा था। गुरु ग्रन्थ साहब एक चौकी पर रखा हुआ था। चौकी पर रेशमी जरीदार चादर बिछी थी और उस पर गुरु ग्रन्थ साहब खुला पड़ा था। एक अत्यन्त मूल्यवान चूनरी दरबार साहब को ढांपने के लिये थी जो इस समय उठाई हुई थी।

सब लोग शामियाने के नीचे, श्रद्धा-भक्ति से बैठे थे। बाईं ओर

रामसिंह और उसकी दोनों लड़कियाँ बैठी हुई थीं। पास ही गुण-वन्ती अपने लड़के को गोद में लिए बैठी थी। उसका पिता शामसिंह उसके समीप ही बैठा था।

रामसिंह का पत्तीदार भगीरथ कोठी के द्वार पर खड़ा महमानों का स्वागत कर रहा था। वह सुन्दरसिंह आदि किसी को भी नहीं पहिचानता था तथा साथ ही वह रामसिंह से सुन चुका था कि उसके पिता तथा भाइयों ने आने से इन्कार कर दिया है। इससे उसको किंचित्-मात्र भी आशा नहीं थी कि वे आएंगे। जब सुन्दरसिंह आदि पहुंचे तो उसने समझा कि शामसिंह के मित्रों में से कोई हैं। सुन्दर-सिंह बिना किसी प्रकार की पूछ-ताछ किए पीछे जाकर बैठ गया और परमेश्वरी, केवली आदि स्त्रियों में जाकर बैठ गईं।

"गुणवन्ती ने भी ध्यान किया और अपने स्वसुर को पहिचान कहने लगी, "यह तो उनके पिता हैं। मेरी जेठानियाँ और ननद भी आई हैं। वे देखिए स्त्रियों में बैठ रही हैं।"

"तो जाओ, उनको आगे ले आओ और अपने पास बैठा लो।"

' नहीं। जैसे चुपचाप आए हैं, वैसे हो उनको बैठे रहने दीजिए। पीछे देखा जाएगा।"

शामसिंह चुप कर गया।

पाठ समाप्त हुआ। प्रसाद बाँटा गया और लोग वधाइयाँ दे देकर जाने लगे। सुन्दरसिंह और उसके परिवार के लोग एक ओर खड़े हो गए। रामसिंह लोगों को और विशेष रूप में आमंत्रित अफ-सरों को बाहर खड़ा बिदा करने में व्यस्त था। इस समय शामसिंह उसके पास जाकर कहने लगा, "राम! तुम्हारे पिताजी और भाई लोग आए हैं।"

रामसिंह उस समय ऐग्जीक्यूटिव इंजीनियर को आने के लिए धन्यवाद दे रहा था। यह समाचार सुन एक क्षण तो वह आश्चर्य-चकित रह गया। पश्चात् पूछने लगा, "कहाँ हैं वे?"

"दरबार साहब के पास ही तुम्हें वधाई देने के लिए खड़े हैं।"

"गुणवन्ती को कह दीजिए कि बच्चे को दिखा दे।"

"वह बच्चे को लेकर भीतर चली गई है। उसकी इच्छा उनसे मिलने की नहीं है।"

इस पर रामसिंह ने कुछ चिन्ता अनुभव करते हुए कहा, "आप भगीरथ को यहाँ भेज दीजिए। मैं भीतर आ जाऊंगा।"

भगीरथ वहाँ आया तो रामसिंह भीतर चला आया।

सुन्दरसिंह और उसके परिवार के लोग भीतर आकर दरियों पर बैठे तो उन्होंने समझा कि किसी ने उनको देखा नहीं अथवा पहिचाना नहीं। उन्होंने देख लिया था कि रामसिंह और उसके बच्चे तथा गुणवन्ती दरबार साहब के बाईं ओर बैठे हुए हैं। पश्चात् पाठ समाप्त हुआ और प्रसाद बांटा जाने लगा। श्रोतागणों ने दरबार के सम्मुख अर्दास चढ़ाई। रामसिंह ने एक सौ एक रुपया दिया। शामसिंह ने इकावन रुपये दिए। गुणवन्ती ने भी रामसिंह से पृथक् इकावन रुपये दिए। यह बात सुन्दरसिंह को विलक्षण प्रतीत हुई। सुन्दरसिंह ने सोहनलाल को कह दिया, "तुम ग्यारह रुपये चढ़ा दो।"

सोहनलाल रुपए चढ़ाने के लिए आगे बढ़ा, परन्तु इस समय तक प्रायः सब लोग उठ खड़े हो गए और सोहनलाल के चढ़ाने को सिवाय शामसिंह और गुणवन्ती के किसी अन्य ने नहीं देखा।

जब लोग विदा होने लगे तो सुन्दरसिंह और सोहनलाल अपने स्थान पर ही खड़े रहे। उनका विचार था कि रामसिंह और गुणवन्ती उनको देख आएंगे और पश्चात् वे लड़के को आशीर्वाद दे और न्योछावर कर चल पड़ेंगे। इस समय उन्होंने देखा कि गुणवन्ती बच्चे को लेकर भीतर चली गई है। महिन्दर कौर और केवली तथा परमेश्वरी भी बच्चों को लेकर इनके पास आ गए। सुन्दरसिंह ने कहा, "अभी हमें किसी ने पहिचाना प्रतीत नहीं होता। क्या हम रामसिंह के पास चलें?"

महिन्दर कौर ने कहा, "गुणवन्ती ने हमें देखा है, परन्तु नाक चढ़ाकर भीतर चली गई है।"

"यह तुम्हारा भ्रम भी हो सकता है।" चौधरी ने कहा।

महिन्दर चुप कर रही। सोहनलाल ने कहा, "चाचा! कुछ देर और यहीं ठहरते हैं। यदि रामसिंह न आया तो हम भीतर चलकर बच्चे को देख आएंगे।"

इस समय सुन्दरसिंह ने शामसिंह को कोठी से बाहर जाते देखा। उन्होंने उसको रामसिंह से बातचीत करते देखा और फिर रामसिंह को अपनी ओर आते देखा। इससे वे समझ गए कि शामसिंह ने उन्हें देख लिया है और पहिचान लिया है, परन्तु उनसे मिलने का यत्न न कर, रामसिंह को बुलाने चला गया है। यह बात भी सुन्दरसिंह

को अस्वाभाविक प्रतीत हुई। इस पर भी वह समझता था कि चूंकि उन्होंने रामसिंह और गुणवन्ती को पिछले दिन लौटा दिया था, इस कारण उसका नाराज़ होना कुछ भी विचित्र नहीं।

रामसिंह आया और पिताजी को वाहे गुरु की फते बुलाकर हाथ जोड़ बोला, "आप आ गए हैं, आइए भीतर चलिए।"

सुन्दरसिंह ने केवली और परमेश्वरी को कहा, "तुम भीतर जाओ और बच्चे की न्योछावर कर यहाँ आ जाना। हम यहाँ ही रामसिंह से बातचीत करेंगे।"

महिन्दर भी भाभियों के साथ भीतर चली गई। सुन्दरसिंह ने रामसिंह से कहा, "बहुत है, बहुत बधाई तुमको। वह कंठी तुमने बच्चे के गले में डाल दी थी क्या?"

"अभी नहीं। कल आपका हमको खाली लौटा देना गुणवन्ती को बहुत अखरा था और रात भर वह मुझसे लड़ती रही थी। इस कारण कंठी के विषय में उसको कुछ नहीं बताया।"

"तो वह तुमसे लड़ पड़ी थी?"

"जी।"

"और केवल हमारे कारण ही?"

"यूं तो पहिले भी बातचीत होती रहती थी परन्तु कल से उसका सारा पारा चढ़ा हुआ है।"

"तो बातचीत भी हमारे कारण होती रहती है?"

"और भी बातें हैं। चाचा! नगर की बातें आप समझ नहीं सकते। इस कारण मैं बताना नहीं चाहता। आप भीतर चलिए न। कुछ जलपान करिए।"

सुन्दरसिंह अभी विचार ही कर रहा था कि किस प्रकार जलपान के लिए इन्कार करे कि औरतें तथा बच्चे, जो भीतर गए थे, बाहर आ गए। केवली ने आते ही कहा, "चाचा! अब हमको चलना चाहिए।"

"क्यों? क्या हुआ है?"

"कुछ नहीं चाचा!"

महिन्दर कौर ने बता दिया, "भाभी हमको कोठी में आते देख भीतर के कमरे में चली गई और बच्चे को वहाँ छोड़ दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई और कहने लगी कि हम यहाँ क्यों आए हैं। केवली भाभी ने कहा, "अपने बच्चे को देखने और न्योछावर करने। इस पर गुणवन्ती ने कह दिया, आपके बच्चे तो ये खड़े हैं।" और

उनकी ओर संकेत कर दिया। साथ ही उसने कहा, "यहाँ से चली जाओ। मेरे बच्चे की ओर मत देखना। यदि इस ओर नजर की तो धक्के मार-मारकर निकलवा दूंगी।" सो हम चले आए हैं।"

सुन्दरसिंह अभी भी गंभीर भाव में खड़ा था। उसने एक क्षण में ही अपना कर्त्तव्य निश्चय कर कहा, "वाहे गुरु का नाम लेकर यह न्योछावर गुरु महाराज के चरणों में अर्पण कर दो।"

रामसिंह ने अपनी पत्नी के काम की सफाई देते हुए कहा, "आपने कल हमको निराश कर दिया था। यह उसका प्रतिकार है।"

"अच्छी बात है। भगवान करे सुखी रहो और फूलो फलो।"

इतना कह वे दरबार साहब के सामने जा माथा टेक और सवा-सवा रुपया न्योछावर का दरबार साहब के सामने रख कोठी से निकल गए।

कोठी के दरवाजे पर शामसिंह खड़ा था। वह इनके साथ-साथ चलता हुआ पूछने लगा "भापा! जब कल आपने आने से न कर दी थी तो आज क्यों चले आए हैं?"

सुन्दरसिंह ने सामने को देखते हुए और चलते-चलते कहा, "शामसिंह जी! हमारा अपमान नहीं हुआ। हम अनुभव करते हैं कि यहाँ से निकाल दिए जाने पर भी हम छोटे नहीं हुए प्रत्युत हमारे गौरव में वृद्धि ही हुई है। हम जानते हैं कि यह धन-दौलत रामसिंह के पास कैसे आई है। इस प्रकार से धनी बन यदि हमको सम्मानित नहीं करते, तो हम अपने को अपमानित अनुभव नहीं करते।"

शामसिंह हंस पड़ा और कहने लगा, "भापा! एक कहावत है, दाख खट्टी है। इस कारण कमाई के विषय में आप किसी को क्या कह सकते हैं?"

शामसिंह यह कह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए लौट आया। सुन्दरसिंह चलता गया। बाहर आकर एक टांगा कर उसने बच्चों और स्त्रियों को उसमें बैठा दिया और उनको धर्मशाला पहुंचाने के लिए कह दिया। पश्चात् वह स्वयं सोहनलाल के साथ पैदल चल पड़ा।

पैदल चलते हुए सोहनलाल ने कहा, "मैं समझता हूं कि रामसिंह से हमारा सम्बन्ध अब बिल्कुल टूट गया है।"

"मैं ऐसा नहीं समझता। देखो सोहन! जीवन बहुत लम्बा है

और इस काल में क्या कुछ हो जाएगा, कहना कठिन है। इस पर भी आत्मा कहती है कि हम फिर मिलेंगे और एक दूसरे कोसमझकर मिलेंगे।"

अगले दिन प्रातःकाल की गाड़ी से वे ढिलवाँ जा पहुंचे और बैलगाड़ी में बैठ मध्याह्न तक कंडेवाला पहुंच गये।

: ७ :

पिता के जाने के पश्चात् रामसिंह का मन धक धक करने लगा। वह वहीं दरबार साहब के सामने द्विविधा में खड़ा रह गया। शामसिंह को विदा कर आया तो रामसिंह को चिन्तातुर खड़े देख पूछने लगा, "क्यों क्या बात है राम ?"

"मैं समझता हूं कि जब चाचा और भैया आए थे तो उनको इस प्रकार लौटा देना उचित नहीं था।"

"उन्होंने भी तो तुम्हारा अपमान कर तुम्हें लौटा दिया था।"

"सरदार जी ! वे मेरे पिता हैं और मैं उनका पुत्र हूं। जो अधिकार उनको है, वह मुझे नहीं है। मैं उनसे अठारह हज़ार मांग कर लाया था। मैं समझता हूं कि मुझे वह अठारह हज़ार बहुत पहिले ही वापिस कर देना चाहिए था।"

"वह तो सब समाप्त हो चुका है।"

"ठीक है पर वह समाप्त भी तो मेरे कारण हुआ है। उनकी तो गाढ़े पसीने की कमाई थी।"

इसके पश्चात् रामसिंह चुप कर गया। वह समझ रहा था कि उसका पिता नाराज़ ही इस कारण है कि वह लखपति बन जाने पर भी उनका रुपया अभी तक वापिस नहीं कर पाया। इस कारण वह इस दिशा में सोच रहा था। शामसिंह ने उसे गम्भीर देख कह दिया, "रुपए की बात है तो उसे अब जाकर वापिस कर दो।"

"यही विचार कर रहा हूं।"

पश्चात् रामसिंह काम देखने में लग गया। सब लोग इस समय तक जा चुके थे और दरियाँ, कालीन, कुर्सियाँ आदि उठवाई जा रही थीं। लगभग दो घंटा रात गए तक यह काम होता रहा। पश्चात् थककर चूर होकर वह भीतर ड्राइंग रूम में जा पहुंचा। वहाँ पहुंच उसने नौकर को अपने लिए चाय लाने को कहा और गुणवन्ती को बुला भेजा।

गुणवन्ती आई तो सोफा पर बैठकर पूछने लगी, "कहिए क्या आज्ञा है?"

"चाय मंगवाई है। तुम भी पीलो।"

"मैं पी चुकी हूँ।"

"तुमने चाचा से बच्चा क्यों छुपा लिया था?"

"आप अपने बाप का रुपया कब देने जा रहे हैं?"

रामसिंह इस असंगत बात को सुन भौचक्का हो गुणवन्ती का मुख देखने लगा। उसने पहली बार मन में आज विचार किया था और उसकी पत्नी को यह पता चल गया था। उसको शामसिंह की यह सूचना गुणवन्ती को देना ठीक प्रतीत नहीं हुई। यूँ तो एक वर्ष हो गया था उसे देखते कि शामसिंह उसके कारोबार में हस्तक्षेप कर रहा है। वह यह देख चुका था कि शामसिंह गुणवन्ती और भगीरथ कुछ उससे छुपाने की चेष्टा करते रहते हैं, परन्तु इस पारिवारिक बात, विशेषकर उसके माता-पिता के सम्बन्ध की बातों में शामसिंह हस्तक्षेप करेगा, यह वह आशा नहीं करता था।

रामसिंह को विस्मय में अपना मुख देखते रहने पर गुणवन्ती ने कहा, "मैं आपको मना नहीं कर सकती कि आप रुपया न दें। मेरा अधिकार ही क्या है? कमाने वाले आप हैं। कमाए धन को उड़ाने का अधिकार आपको है। हम स्त्रियाँ तो पुरुषों की टहल-सेवा के लिए ही बनाई गई हैं। जैसा कहो, वैसे रहना, भाग्य में लिखा है। बताइये कब जा रहे हैं?"

"किसने कहा है तुमको?"

"किसी ने भी कहा। क्या यह ठीक नहीं कि आपको अपने पिता का भोलाभाला मुख देख उन पर दया आ गई है? उन्होंने अपने पुत्र के पास रुपया देखा और माँगने आ पहुंचे यहाँ। और आप एक आज्ञाकारी पुत्र की भाँति उनको प्रसन्न करने के लिए तैयार हो गए।

"मैं भी विस्मय कर रही थी कि कल इन्कार कर आज वे क्यों चले आए। आपकी मोटर गाड़ी देख उनके मुख में लार टपक पड़ी है न? मेरे बच्चे को आशीर्वाद देने तो आ नहीं सके पर हमारे पास पैसा देख छीनने चले आए हैं। जाइये, पहिले रुपया दे आइये, पीछे चाय पी लीजियेगा।"

यूँ तो रामसिंह को गुणवन्ती की डांट-फटकार सुनने का अभ्यास हो गया था, इस पर भी आज बात नित्य से विलक्षण थी। उसको

अपने पिता का अनादर किया जाना पसन्द नहीं था। उसने अपने पिता से भीतर चलकर जलपान करने के लिए कहा था और उसकी पत्नी ने उसकी भाभियों का तथा उसकी बहिन का अनादर किया था और उनको भीतर घुसने नहीं दिया था। इस कारण वह समझता था कि नाराज़ तो उसे होना चाहिए, परन्तु उल्टा वह ही डाँटा जा रहा है।

इससे वह क्रोध से मन ही मन जलता हुआ, बिना चाय पीए घर से निकल पड़ा। उसकी इच्छा हुई कि वह अपने पिता से मिलकर उनसे क्षमा माँगे। इस कारण वह स्टेशन जा पहुंचा। उसने वहाँ का थर्ड क्लास वेटिंग रूम देखा, परन्तु उसके पिता तथा अन्य लोग वहां नहीं पहुंचे थे। निराश उसने स्टेशन की दुकान पर चाय पी और वहाँ से सिनेमा देखने चल पड़ा। तीन घंटे इस प्रकार व्यतीत कर वह रात के साढ़े बारह बजे घर जा पहुंचा। कोठी में पहुंच सीधा अपने कमरे में जा पहुंचा। सोने के लिए अभी वह अपने कपड़े बदल ही रहा था कि उसे साथ के कमरे में से शामसिंह की बातें करते हुए आवाज़ आई। वह यह देखने के लिए कि इस समय उसका श्वसुर किससे बातें कर रहा है, दरवाज़े की ओर घूमा। दरवाज़ा केवल भिचा हुआ था। उसने धीरे से खोल झांककर देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने गुणवन्ती और भगीरथ दोनों को शामसिंह के साथ देखा। इस समय तीनों उठकर कमरे में से निकल बाहर को जा रहे थे। रामसिंह के मन में बैठ गया कि वे तीनों उसके विरुद्ध कुछ षड्यन्त्र कर रहे हैं। इस पर भी भगीरथ के विषय में उसको विश्वास था कि वह उसका पक्ष लेगा। भगीरथ का उसके साथ व्यवहार सदैव बहुत अच्छा रहा था।

वह रात भर यही विचार करता रहा कि ये तीनों क्या षडयन्त्र कर रहे हैं परन्तु उसको कुछ समझ नहीं आया। रात भर वह इसी उधेड़बुन में सो नहीं सका। प्रातःकाल उठ, गरम पानी से स्नान कर वह नाश्ता करने डाइनिंग हॉल में चला गया। नित्य की प्रथा के विपरीत गुणवन्ती वहाँ नहीं थी। रामसिंह ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह सवेरे-सवेरे किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा करना नहीं चाहता था।

नाश्ता कर वह अपनी मोटर निकाल अपने काम पर चला गया। कोर्ट रोड पर डिस्ट्रिक्ट कोर्ट की इमारत बन रही थी और इसका ठेका इनके पास था। वहाँ लगभग तीन सौ मजदूर काम कर रहे थे।

भगीरथ वहाँ पर पहिले ही से उपस्थित था और मज़दूरों की उपस्थिति देख रहा था।

रामसिंह वहाँ पहुंचा तो काम देखने लगा। भगीरथ ने उससे रात के विषय में बात नहीं की। रामसिंह ने भी कुछ पूछा नहीं। मध्याह्न के समय, जब दोपहर की विश्रान्ति हुई तो रामसिंह ने भगीरथ से पूछ लिया, "बैंक में कितना रुपया है ?"

"इस समय तो पांच-छः सौ है।"

"शेष कहाँ गया ?"

"कल शाम को सीमेंट वाले आये थे और पचास हज़ार के बिल की पेमेंट ले गए हैं।"

"पर उनका इतना देना तो बनता नहीं था ?"

"मोदी ने कह दिया था कि उनको पचास हज़ार दे दिया जाए, उनको बहुत आवश्यकता है, हिसाब पीछे होता रहेगा।"

"इस पर भी बैंक में अभी काफी रुपया होना चाहिए था ?"

"हाँ, परन्तु लड़की के लिए भेजना था, सो मैंने वहाँ भिजवा दिया।"

"वह एक महीने तक रोका जा सकता था।"

"मैंने उनकी रकम रोकना व्यर्थ समझ दे दी। बैंक में सूद तो मिलता नहीं। उनको दे देने से उन पर एहसान ही हुआ है। समय पर कभी हमें आवश्यकता हुई तो मिल सकेगा।"

"मुझे रुपए की अत्यन्त आवश्यकता थी।"

"कितने रुपए की ?"

"अठारह हज़ार की ?"

"क्या करना है इतने रुपए का ?"

"पिता जी को देना है। मैं समझता हूँ कि उनको अब दे दूं। आगे कभी आवश्यकता हुई तो आसानी से मिल सकेगा।"

"अच्छा रुपया आने दो। अब पहिले उनको दे देंगे।"

रुपया आया परन्तु बैंक बैलेंस बढ़ नहीं पाया। इस प्रकार दिन पर दिन और सप्ताह पर सप्ताह निकल गए और रामसिंह को रुपया न मिल सका। पश्चात् एक और काम का ठेका ले लिया गया और उसमें रुपया लगने लगा। रामसिंह ने भी सोच लिया कि जब रुपया हाथ में पर्याप्त होगा तो दे देगा।

डिस्ट्रिक्ट कोर्ट का काम समाप्त हुआ, बिल पास हुए और उनकी पेमेंट हो गई। सारा काम चार लाख रुपए का था और सरकार से

जो अन्तिम किश्त मिली थी, वह पचास हज़ार की थी।

इस कारण एक दिन रामसिंह ने भगीरथ को कह दिया, "मुझे एक बीस हज़ार का चैक दे दो।"

"क्या करना है ?"

"मुझे चाहिए।"

"पिता जी को लौटाना है क्या ?"

"उनका अठारह हज़ार तो मूल था, सूद अलग से है। अभी तुम बीस हज़ार दे दो।"

"रुपया तो अभी है नहीं। कुछ दिन और ठहरो। प्रबन्ध कर दूंगा।"

उस दिन रामसिंह का प्रोग्राम लाहौर जाने का बन गया। दोपहर पश्चात् वह घर से मोटर पर निकला, परन्तु कुछ ही दूर जाने पर उसकी मोटर बिगड़ गई। उसने उसे ठीक करने का प्रयत्न किया परन्तु उसे खराबी का पता नहीं चला। विवश समीप के गांव के दो-चार मज़दूरों से मोटर धकेलवाकर वह वापिस अमृतसर आया। मोटर-कम्पनी में अपनी मोटर छोड़ वह सीधा रेलवे स्टेशन जा पहुंचा। स्टेशन जाने पर उसे पता चला कि इस समय कोई गाड़ी लाहौर नहीं जाती थी। अतएव लाहौर जाने का प्रोग्राम समाप्त कर वह कोठी लौट आया। वह लगभग सात बजे कोठी पर वापिस पहुंचा तो वहां फाटक पर भगीरथ की मोटर खड़ी देख वह आश्चर्यचकित रह गया। कोठी के अन्दर प्रवेश कर वह गुणवन्ती के कमरे की ओर गया, परन्तु उसका कमरा भीतर से बन्द था और अन्दर से भगीरथ और गुणवन्ती की बातों की आवाज़ आ रही थी। रामसिंह ने कान लगा लगाकर सुनने का यत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। निराश हो वह अपने कमरे में चला गया और एक पुस्तक निकाल पढ़ने लगा।

नौ बजे वह भोजन के लिए डाइनिंग हौल में पहुंचा तो वहां गुणवन्ती, शामसिंह और भगीरथ पहिले से ही उपस्थित थे। वे सब रामसिंह को आते देख विस्मय में उसका मुख देखने लगे। रामसिंह ने अपनी उपस्थिति का कारण बताते हुए कहा, "मोटर फेल हो गई थी और गाड़ी कोई समय पर मिली नहीं, इस कारण कल जाने का विचार कर वापिस चला आया हूं।"

"पर इतनी देर तक कहां थे ?" भगीरथ ने पूछा।

"अपने कमरे में ही था।"

"देखा नहीं।"

रामसिंह बैठ गया और नौकर ने उसके सामने भी प्लेटें लगा दीं। वह खाने लगा। भगीरथ, गुणवन्ती और शामसिंह खा चुके थे। अतएव वे तीनों उठे और बिना रामसिंह की ओर ध्यान किए बाहर निकल गए।

गुणवन्ती के इस व्यवहार पर रामसिंह का मन ग्लानि से भर उठा। इस पर भी वह मन के उद्‌गारों को बहाता हुआ भोजन करता रहा। वह नौकरों के मन में यह बैठने देना नहीं चाहता था कि उसका अपनी पत्नी से कुछ झगड़ा है।

वैसे तो उसके मन में भारी उथल-पुथल मचने लगी थी कि गुणवन्ती और शामसिंह में क्या परस्पर कानाफूसी होती रहती है। भगीरथ के बीच में सम्मिलित होने से वह यह समझ गया था कि अवश्य व्यापार की ही बातचीत होगी। भोजन समाप्त हो गया, परन्तु अभी तक गुणवन्ती उन दोनों को छोड़कर वापिस नहीं आई थी। इससे उसको बहुत आश्चर्य हो रहा था। एकाएक उसके मन में आया कि उनकी बातचीत में सम्मिलित होना चाहिए। वह उठकर बाहर बरामदे में आ गया। उसने देखा कि तीनों लान में टहल-टहलकर बातचीत कर रहे हैं। वह भी उनकी ओर चल पड़ा। रामसिंह को अपनी ओर आते देख तीनों खड़े हो गए और उसकी प्रतीक्षा करने लगे।

रामसिंह ने समीप पहुंचते ही भगीरथ से कहा, "मैं समझता हूं कि कल दस बजे के बाद लाहौर जाऊंगा। मुझे कल रुपया अवश्य चाहिए। कम-से-कम दस हज़ार का ही चैक काट दो। मैं कल बैंक से वसूल कर लूंगा।"

"पर भापा रामसिंह! किस हिसाब में रुपया लेना चाहते हो?" भगीरथ ने पूछा।

"अपने हिसाब में, और किसमें?"

"तुम्हारे हिसाब में इतना रुपया बनता नहीं।"

"पहिली जनवरी को मेरे हिसाब में साढ़े पांच लाख जमा था। उसका क्या हुआ?"

"तुम्हारे नाम पर तो दस रुपए बारह आने हैं। हाँ, यदि कुछ धीरज रखो तो इस मास का वेतन मिलाकर एक हज़ार तक तो दे ही सकूंगा।"

"मेरे हिसाब में दस रुपए बारह आने? और उन लाखों का क्या

हुआ ?"

"तुम कुछ भूल कर रहे हो रामसिंह ! कारोबार में पत्ती तो गुणवन्ती की है। तुमको तो केवल एक हज़ार रुपया वेतन मिलता है।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि मुझको रुपया गुणवन्ती से मांगना चाहिए।"

"हां।" शामसिंह बोल उठा।

"पर यह कारोबार मेरे नाम था ?"

"नहीं। कारोबार मेरी बीवी शान्ति और तुम्हारी पत्नी गुणवन्ता के नाम है। मैं और तुम, दोनों वेतनधारी हैं।"

"यह कब से हुआ है ?"

"आरम्भ से ही ऐसा है।"

"पर पहिले तो तुम मुझको लम्बे-लम्बे चैक दे दिया करते थे ?"

"हां, तब तुम रुपया कारोबार के लिए मांगते थे। आज तुम अपने लिए मांग रहे हो।"

"देखो रामसिंह !" शामसिंह ने कहा, "यह जो कुछ भी धन-सम्पद् तुम देखते हो, सब गुणवन्ती के भाग्य का है। तुम तो गांव में बैठे बैलों का गोबर ही बटोरते फिरते थे। तुमको यहां लाई है गुणवन्ती। काम मिला है मेरी सिफारिश से और मैंने सिफारिश की है, गुणवन्ती के कारण। अन्यथा मेरा इससे क्या सम्बन्ध है ? मेरा कहा मानो, खाओ, पीओ, आनन्द करो। यह इस कारण कि तुम गुणवन्ती के पति हो।"

: ८ :

अगले दिन भगीरथ ने रामसिंह को समझा दिया कि कागज़-पत्र और अन्य लिखा-पढ़ी पहिले से ही ऐसी कराई गई थी और इसमें शामसिंह की ही योजना चलती रही है। "तुम तो पढ़े-लिखे हो नहीं, इस कारण तुम कुछ समझ नहीं सके। मैंने भी यह काम अपनी पत्नी के नाम किया था, इस कारण मुझको भी कुछ आपत्तिजनक प्रतीत नहीं हुआ; परन्तु मुझको जबसे पता चला है कि गुणवन्ती तुमसे पृथक्-सी रहने लगी है, मैं उसको समझा रहा हूं। जब तुमने अपने पिता के लिए अठारह हज़ार मांगा था, मुझे वह रुपया देने के लिए मना कर दिया गया था। अब जब तुमने बीस हज़ार मांगा है, मुझे फिर मना कर दिया गया है। मैं रात उनको बहुत समझाता रहा हूं, परन्तु वह नहीं मानी।

कानूनी तौर पर बिना गुणवन्ती की स्वीकृति के मैं तुमको एक पाई भी नहीं दे सकता।"

रामसिंह के लिए यह परिस्थिति नई थी। एक क्षण में ही वह समझ गया कि वास्तव में वह अपनी पत्नी का नौकर बन गया है। उसका वेतन भी उसकी कृपा से मिला करेगा। इससे उसको अपने ऊपर ग्लानि होने लगी; परन्तु वह समझ नहीं सका कि क्या करे। एक बार तो उसके मन में आया कि वह अपने गांव वापिस चला जाए, परन्तु अपनी वर्तमान अवस्था को अपने पिता और भाई को बताने में उसको लज्जा प्रतीत हुई। इस कारण वह विचार करने लगा कि अपनी पत्नी से पृथक् में वह क्या कर सकता है।

अपनी वास्तविक परिस्थिति को जानने पर उसको अब काम में रुचि नहीं रही। इस कारण वह दिन भर कोठी में बैठा रहता अथवा आवारागर्दी करता फिरता। वह वैलिंग्डन क्लब का सदस्य बना हुआ था, शाम को वहां जा पहुंचता और अपनी अवस्था से अपने मन को दूर करने के लिए शराब पीने लग गया। थोड़ी बहुत तो वह पहिले ही पीया करता था, परन्तु अब उसको कोई बन्धन नहीं था। क्लब में वह नित्य जाता और खूब पीकर घर आता, आकर सो जाता।

उसको भारी पीने वाला जान क्लब की कई आवारा स्त्रियां उसके आगे-पीछे घूमने लगीं। इनमें एक वकील फकीरचन्द की स्त्री भी थी। रामसिंह का उससे विशेष लगाव हो गया।

यह संबन्ध कुछ अधिक काल के लिए नहीं चल सका। एक दिन फकीरचन्द ने दोनों को एक होटल में रंगे हाथ पकड़ लिया और रामसिंह को धमकी देकर, उसने उससे दस हज़ार रुपए का प्रोनोट लिखा लिया। इसके पश्चात् मार्ग साफ हो गया और रामसिंह फकीरचन्द की पत्नी को अपनी कोठी में भी बुलाने लग गया। इसका परिणाम यह हुआ कि फकीरचन्द पन्द्रह-बीस दिन पश्चात् कभी आता और उससे हज़ार बारह सौ का प्रोनोट लिखवाकर ले जाता।

एक दिन फकीरचन्द का नोटिस मिल गया कि प्रोनोट का सारा रुपया तुरन्त दे दिया जाए, अन्यथा वह नालिश कर देगा। रामसिंह ने नोटिस का कोई उत्तर नहीं दिया। नालिस हो गई और एकतरफा डिग्री हो गई।

कोठी रामसिंह के नाम थी और जब कोठी कुर्की की आ गई तभी गुणवन्ती को पता चला। उसने कोठी अपने नाम कराकर फकीरचन्द का रुपया दे दिया।

अब इस कोठी में भी रामसिंह गुणवन्ती का पति होने के नाते रहता था। इस पर भी उसका गुणवन्ती से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं था। उनको परस्पर एक दूसरे को देखे, कई-कई सप्ताह व्यतीत हो जाते थे।

गुणवन्ती अपने लड़के को भी, जो इस समय एक वर्ष का हो गया था, रामसिंह के सामने नहीं जाने देती थी। कभी रामसिंह की दृष्टि उस पर पड़ जाती और वह उसको प्यार करने लगता तो गुणवन्ती कह देती, "फकीरचन्द की पत्नी का कोई बच्चा नहीं है क्या ?"

फकीरचन्द की पत्नी रामसिंह से मिलती रहती थी, परन्तु अब उसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि उसे पता चल गया था कि रामसिंह के पास अब एक पैसा तक नहीं है।

कदाचित् फकीरचन्द को रामसिंह जैसा कोई अन्य मूर्ख नहीं मिला, इस कारण उसने अपनी आय का एक अन्य स्रोत बनाने का विचार कर लिया। उसने कोर्ट रोड पर एक कोठी किराए पर ले ली और वहाँ जूआ खेलने का अड्डा बना लिया। यह काम पकड़े जाने के भय से रिक्त नहीं था और साथ ही खून-खराबा तक होने की नौबत आ सकती थी। इस कारण इसको चलाने के लिए एक बलवान और जीवन से निराश व्यक्ति की आवश्यकता थी। फकीरचन्द और उसकी पत्नी सुशीला को रामसिंह इसके लिए उपयुक्त व्यक्ति समझ में आया।

रामसिंह को धन की आवश्यकता पहिले से अधिक रहने लगी थी। ठेकेदारी के काम पर न जाने से उसका वेतन बन्द कर दिया गया था। एक दिन तो गुणवन्ती ने यहाँ तक कह दिया था, "कब तक यह हराम की खाते रहोगे ? या तो कहीं नौकरी कर लो नहीं तो अपने बाप के घर चले जाओ।"

"अपनी बीवी के घर पर न रहूं ?" रामसिंह का प्रश्न था।

"बीवी के घर पर रहना है तो कुछ कमा कर लाओ।"

"बीवी जो कमाती है। दोनों में से एक की ही कमाई काफी नहीं है क्या ?"

"देखो जी ! मैं कमाती हूँ अपने बच्चे के लिए। यदि तो आपने यहाँ रहना है तो कम-से-कम एक सौ रुपया भोजन और कमरे के किराए के लिए देना होगा। नहीं तो कहीं और किनारा कर लो।"

रामसिंह यह नोटिस सुनकर चुप कर गया। उसको इसकी आशा नहीं थी। इस पर भी कुछ थोड़ा सा आत्म-सम्मान उसके मन में अभी शेष था। अतएव उसने कह दिया, "अच्छी बात है। या तो आपका

होटल छोड़ जाऊंगा अन्यथा इसमें रहने के लिए सौ रुपया महीना देना आरम्भ कर दूंगा।"

रामसिंह की इस मानसिक अवस्था में सुशीला फकीरचन्द की पत्नी, जूएखाने को चलाने के लिए उससे सहयोग मांगने आ पहुंची। उसने कहा, "राम डीयर! तुमको अपनी बीवी के आश्रय पर चलते देख तुम पर दया आती है।"

"ठीक है। परन्तु फकीरचन्द भी तो तुम्हारे आश्रय पर गुलछर्रे उड़ाता है।"

"हां। यही तो विडम्बना है। मैं ऐसे पति को छोड़ देना चाहती हूं। पर क्या करूं? वकील है और कई बार आड़े समय पर मेरी रक्षा कर चुका है। वकील साहब से छुट्टी पाने के लिए सबसे पहिले तो अपने निर्वाह की सोचनी है।"

"मेरी भी यही अवस्था है। आज श्रीमती जी ने नोटिस दे दिया है।"

"सच? आज मेरी वकील साहब से भी यही बात हो रही थी। वे कह रहे थे कि उनकी आय से हम दोनों का खर्चा चल नहीं सकता। मैंने एक उपाय सोचा है। मैं जूआ खेलने का अभ्यास रखती हूं। इस-लिए मैंने कोर्ट रोड पर एक कोठी किराए पर ले ली है। वहां अपने जूआ खेलने वाले मित्रों को बुलाकर निर्वाह करने का विचार है परन्तु इसमें मुझे तुम्हारी सहायता चाहिए। हम दोनों मिलकर आय कर सकेंगे। सब खर्चा निकालकर आधा-आधा मंजूर है?"

"मरता क्या न करता वाली बात थी। रामसिंह मान गया और दो-चार दिनों में ही कोर्ट रोड वाली कोठी फर्नीचर आदि से सजा दी गई। अब मित्रों को निमन्त्रण दिया जाने लगा। रामसिंह होस्ट होता और आने वाले मेहमानों के लिए चाय-पानी भोजन आदि का प्रबन्ध करता। जब भी कोई धनी जूआ खेलने वाला मेहमाम आ जाता तो फकीरचन्द की पत्नी भी निमन्त्रित होती। इस प्रकार जूआ आरम्भ हो जाता। रामसिंह अपनी कमीशन ले लेता और सुशीला प्राय: जीतती।

धीरे-धीरे यह अड्डा विख्यात होने लगा और रामसिंह तथा सुशीला की आय भी बढ़ने लगी तथा फकीरचन्द की सहायता से पुलिस को आय का एक भाग जाने लगा।

रामसिंह रात को देर तक जुआखाने में रहता और दिन भर कोठी में पड़ा सोता रहता। अपनी पत्नी को एक सौ रुपया भोजन के लिए

वह देने लगा था। यह देने पर भी उसके पास काफी बचता और वह बचा हुआ धन बैंक में जमा करने लगा।

जूए में सुशीला काफी सिद्धस्त थी। इसके अतिरिक्त वह चतुर भी थो। कभी कोई भारी जुआरी से सामना होता तो वह पत्ते बदलने और हेर-फेर करने में अपनी चतुराई दिखा देती। ऐसा करते हुए जब वह पकड़ी जाती और झगड़ा होने लगता तो रामसिंह बीच-बचाव कर देता। ऐसे समय सुशीला का सौन्दर्य भी सहायकहोता। इसप्रकार कठिनाई सरल हो जाती और काम चलता जाता।

एक दिन अमृतसर का एक म्युनिसिपल कमिश्नर मिस्टर रफीक वहाँ फँस गया और दो हज़ार रुपए हार गया। इस पर भी वह दाव पर दाव लगाता जा रहा था। एक बार उसने सुशीला को पत्ते बदलते देख उसका हाथ पकड़ लिया। सुशीला हँस पड़ी और बोली, "मैं तो हँसी कर रही थी। यह हार-जीत तो केवल रुचि उत्पन्न करने के लिए है। लेन-देन के लिए नहीं।"

परन्तु रफीक को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उसने सुशीला के मुख पर कसकर एक चपत लगाई और अपना सारा रुपया, जो सुशीला के सामने रखा था, उठाकर चलने लगा। रामसिंह, जो अब तक इससे सर्वथा पृथक् बैठा था, रफीक को रुपया बटोरते और ले जाते देख रहा था। सुशीला ने उसको संकेत किया तो रामसिंह ने उसकी गर्दन पकड़ ली। रफीक ने पिस्तौल निकाल ली और पूर्व इसकेकि रामसिंह उसकी पिस्तौल को पकड़े, उसने गोली चला दी। गोली रामसिंह के कन्धे पर लगी, परन्तु कोठी के अन्य नौकरों ने रफीक को काबू में कर लिया। उसके हाथ-पांव बाँधकर पुलिस में टेलीफून कर दिया गया। जूआ खेलने के सब लक्षण वहाँ से हटा दिए गए और रफीक का सारा रुपया गायब कर दिया गया।

जब पुलिस आई तो रामसिंह ने अपने बयान दे दिये कि रफीक ने सुशीला से अश्लील हँसी की थी, जिस पर दोनों में झगड़ा हो गया। वह दोनों में बीच-बचाव करने लगा तो रफीक ने उस पर गोली चला दी। रफीक के बयानों को भी लिखा गया, परन्तु उसके पक्ष में किसी ने साक्षी नहीं दी। अतएव उसको धारा तीन सौ सात के अधीन चालान कर दिया गया।

मुक़द्दमा रामसिंह के पक्ष में था, इस पर भी उसको यह अड्डा बन्द करना पड़ा। ग्राहक वहाँ आने में भय अनुभव करने लगे थे।

सुन्दरसिंह मन्दिर में शिवलिंग पर जल चढ़ा, सूर्य को अर्घ्य दे, नदी तट पर जा पहुँचा। वहाँ वह हाथ जोड़ भगवान से प्रार्थना करने लगा। वह अपने मन में कह रहा था, "प्रभो ! क्या मैंने भूल की है, जो अपने पुत्र का तिरस्कार किया है ? मेरी तुच्छ बुद्धि में जो आया मैंने कर दिया। मेरे मन में प्रकाश करो और साहस दो कि मैं सत्य पर स्थिर रह सकूं।"

इस प्रकार अपने मन में उठ रहे संशयों को भगवान के अर्पण कर, वह निश्चिन्त हो घर जाने के लिए घूमा तो उसको मास्टर जगतराम उसकी प्रतीक्षा में खड़ा मिल गया। मास्टर ने चौधरी को हाथ जोड़ नमस्ते की और पूछने लगा, "चाचा ! कब आए ?"

चौधरी अभी-अभी रेल के स्टेशन से आया था और स्नान कर पूजा-पाठ करने नदी तट पर आ गया था। उसने कहा, मास्टर ! हम अपनी भूल का प्रायश्चित कर आए हैं। इससे गुणवन्ती को सन्तोष हुआ प्रतीत नहीं होता।" इसके पश्चात् चौधरी ने अमृतसर में हुई पूर्ण घटना का वृत्तान्त सुना दिया। मास्टर को गुणवन्ती के व्यवहार पर बहुत दुःख हुआ। वह मन में विचार करता था कि इस परिवार में भारी दरार पड़ गई है और इसका भरना अब सुगम नहीं। कदाचित् व्यतीत हुआ काल ही इसे भर सके। उसने चौधरी को सान्त्वना देने के लिए कह दिया, "चाचा ! कोई अच्छा काम इसलिए नहीं किया जाता कि उसको देख लोग वाह-वाह करने लगेंगे। अच्छाई तो अच्छाई होने के नाते ही की जाती है। इसका फल भगवान के हाथ में है।"

"मास्टर ! मैं यह विचार नहीं कर रहा कि मेरे वहाँ जाने से किसी प्रकार का अपमान हो गया है। मैं तो यह विचार कर रहा हूं कि रामसिंह किसी प्रकार उस नरक से निकल भी सकेगा या नहीं।"

"यह भी तो भगवान के हाथ में है। हमको तो यह चाहिए कि हम उससे अथवा उसकी पत्नी से घृणा न करें और उनके लिए घर का द्वार सदैव खुला रखें।"

"यह तो है ही। हमारे इस पतन से बचे रहने का एकमात्र यही उपाय है कि हम क्रोध और द्वेष से ऊपर रहें।"

इस पर मास्टर ने सुन्दरसिंह को पिछले दिन हुई एक नवीन घटना का उल्लेख कर दिया। उसने बताया, "वह वेश्या, जो गाँव में आई हुई

है, अब पांधा सन्तराम के घर में जाकर रहने लगी है। पहिले वह किराए में रहती थी। ऐसा मालूम होता है कि मालिक मकान ने उसे घर से निकाल दिया होगा और यह औरत अब पांधे के घर जाकर अपना व्यवसाय करने लगी है।"

चौधरी ने कहा "ईश्वर बेचारे पांधे पर दया करे।"

"सुना है कि पांधा उसके द्वारा आय करना चाहता है।"

"यही तो कह रहा हूँ मास्टर! मुझे इसमें उसकी भलाई प्रतीत नहीं होती।"

"मैं समझता हूँ कि गांव का चौधरी उसको सुगमता से समझा सकता है।"

"यत्न करूँगा।" इतना कह सुन्दरसिंह घर को चल पड़ा। उसके घर पर गाँव के लोग एकत्रित हो रहे थे। इनमें प्रायः पांधे के पड़ोसी थे। चौधरी ने उनकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि में देखा तो एक कहने लगा, "चौधरी! इस गांव में अनर्थ होने लगा है। पांधे ने वेश्या को अपने घर में रख लिया है और उससे पेशा कराने लगा है।"

"भाई! घर पांधे का है। वह उसमें जिसको चाहे रख सकता है। मेरा उस पर कोई वश नहीं। इस पर भी मैं पांधे को बुलाऊंगा और समझाने का यत्न करूँगा। यदि वह नहीं माना तो मैं कुछ नहीं कर सकूंगा।'

चौधरी ने पांधे को बुला भेजा। वह आया तो चौधरी ने उसके सम्मुख गांव वालों की बात रख दी। उसने कहा, "सन्तराम! यह बात ठीक नहीं।"

"चौधरी! ठीक और गलत तो अपने विचारने की बात है। यह बात सच नहीं है कि मैं उस औरत से पेशा कराता हूँ। वह मेरे पास मेरी बीवी बनकर रह रही है।"

"तुम्हारी विवाहिता का क्या हुआ?"

' वह मेरे पास आने को तैयार नहीं। यूँ तो वह मेरा घर, मेरे उस चमारिन के साथ जाने से पहिले ही छोड़ चुकी थी। यदि वह मेरे पास रहती तो शायद मैं उस चमारिन को भगाकर न ले जाता। जेल से आने से पश्चात् मैंने अपनी पत्नी को घर लाने का यत्न किया था, परन्तु वह नहीं आई। अब इस औरत ने मेरे घर रहना स्वीकार कर लिया है। बताओ कि वह क्यों न रहे?"

"ठीक है। मैं उसको तुम्हारे घर रहने से मना नहीं कर सकता।

मैं तो केवल यह ही कह सकता हूँ कि तुम अपने घर को रंडीखाना न न बनाओ। इसमें गाँव वालों को आपत्ति है।"

"चौधरी ! ऐसी कोई बात नहीं। यह तुम्हारे मास्टर ने ही बवाल खड़ा किया है। उसने ही गाँव वालों को भड़का कर मेरे विरुद्ध किया है। वह स्वयं बदकार है और दूसरों को बदकार कहता है।"

मुझे घर पर खाना बनाने की भारी दिक्कत थी। मेरी पत्नी तो नहीं। अब इस औरत ने मेरे पर दया कर मेरे घर पर रहना स्वीकार कर लिया है।

"ठीक है।" चौधरी ने कह दिया, "तुम उसको रखो। मुझको कोई आपत्ति नहीं और न ही गाँव वालों को होनी चाहिए। लेकिन तुम्हारे घर में लोगों का, विशेष रूप में युवकों का, आना-जाना नही होना चाहिए।"

पांधा सन्तराम अपने घर लौटा तो वहाँ, गाँव के कुछ युवक उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। पांधे ने उनको पूर्ण बातचीत सुनाई, जो उसकी चौधरी के साथ हुई थी। उन युवकों में से एक, जिसका नाम जग्गू था, कहने लगा, "पांधा ! मेरी पक्की राय है कि मास्टर को यहाँ से निकलवाना चाहिए। जब तक यह गाँव में टिका रहेगा, इस प्रकार की बातें चलती ही रहेंगी। यह मास्टर ही सब लोगों को उल्टी सीधी कानूनी बातें बताता रहता है। हम किसी के घर जाकर उसकी बहू-बेटी को तो खराब नहीं करते। अपने घर में जो चाहें, हम करेंगे। इससे किसी की बहू-बेटी पर बुरा प्रभाव पड़ता है, तो वह उसे सम्भाल कर रखे।"

"ठीक है। परन्तु तुम जानते हो, मंगली ने मुझे कह दिया है कि वह केवल मेरी पत्नी बनकर रहेगी !"

"देखो पांधा !" जग्गू ने कुछ डांटकर कहा, "मैं उसको गाँव में लाया था। यह इसलिए नहीं कि वह तुम्हारे पास रहे। वह गाँव के सांझे खाते में है।"

"ठीक है, परन्तु यदि यह बात फैल गई कि वह पेशा करती है, तो गाँव वाले हो-हल्ला करेंगे।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ कि उनके हो-हल्ला मचाने से पूर्व ही हम अपना काम पूरा कर लें।"

"पर इसके लिए कोई बहाना तो बनाना ही पड़ेगा।"

"वह मैं बना लूंगा।" इतना कह जग्गू पांधे को पृथक् कमरे में ले गया और वहाँ उसने एक योजना बना डाली।

गांव में एक और नाटक रचा जा रहा था। मास्टर जगतराम को जब पहिले दिन चौधरी सुन्दरसिंह ने एक पथिक मानकर भोजन दिया था, तो महिन्दर कौर ने उसे भोजन परसा था। उस दिन ही इस युवक को देखकर वह इसकी ओर आकर्षित हो गई थी। उस समय वह इसका अर्थ समझ नहीं सकी थी।

इसके पश्चात् जब चौधरी ने यह बताया था कि मध्याह्न को वह घर पर भोजन करने आया करेगा और शाम को उसका खाना मन्दिर पर जाया करेगा तो इससे उसे सुख ही हुआ था। वह समझने का यत्न कर रही थी कि यह क्या है?" इस पर भी उसको इसमें कोई कारण प्रतीत नहीं हुआ था।

पश्चात् मास्टर ने स्कूल खोला। मीरा और अन्य बच्चे उसके पास जाकर पढ़ने लगे। इससे महिन्दर कौर उसके कार्यों में रुचि लेने लगी। एक समय आया कि मास्टर ने स्कूल में चित्र-कला और मिट्टी के खिलौने बनाने का काम सिखाने का प्रबन्ध कर दिया। वह लड़कों की इन्द्रियों और मन को शिक्षित करना चाहता था। मास्टर की इस योजना को चौधरी समझ नहीं सका था, इस कारण मास्टर ने समझाया। उसने एक दिन मध्याह्न का भोजन करते हुए बताया, "एक मज़दूर और कारीगर में केवल यह अन्तर होता है कि मज़दूर केवल परिश्रम करता है और कारीगर परिश्रम करते समय अपने मन और इन्द्रियों का भी प्रयोग करता है। मन और इन्द्रियों को शिक्षित करने का अर्थ ही यह है कि काम करते समय ये नियंत्रण में हों।

"देखिए, एक आदमी एक लकीर खींचता है और वह लकीर टेढ़ी-मेढ़ी बनती है। दूसरा सीधी अथवा गोल, मोटी अथवा पतली, जैसी वह चाहे, लकीर खींच सकता है। इसमें अन्तर इस कारण है कि दूसरे हाथ और कान-आँखें पहिले व्यक्ति से अधिक शिक्षित हैं। मैं इस अक्षर ज्ञान के साथ-साथ विद्यार्थियों के मन और इन्द्रियों को भी शिक्षित करना चाहता हूँ। इसका परिणाम यह होगा कि वे केवल मज़दूर न रहकर, साथ में कारीगर भी बन जाएँगे।"

"इसके करने लिए कई ढंग है। ड्राइंग, मिट्टी के खिलौने बनाना, संगीत सिखाना अथवा इसी तरह के अन्य काम सिखाना मन और इन्द्रियों को शिक्षा देने के ढंग हैं।

"मन और इन्द्रियों की शिक्षा का केवल इतना ही प्रभाव नहीं

होता कि विद्यार्थी रेखाएँ ही खींच सकता है, प्रत्युत वह अपने जीवन के अन्य कामों में भी अपना मार्ग सुगमता से निर्माण कर सकता है। जीवन की अन्य कठिनाइयों के समय भी उसका मन, एक सीधी लम्बी, मोटी-पतली अर्थात् मनचाही रेखा खींच सकने के समान अपनी कठिनाई को इच्छानुकूल सुलझा सकता है।"

चौधरी मास्टर के भावों को समझ गया था। इन भावों को महिन्दर ने भी सुना था। उस दिन से ही वह मास्टर को एक अति योग्य और सुलझे हुए मन वाला मानने लगी थी। साथ ही तब से वह मास्टर के काम में अधिक और अधिक रुचि लेने लगी थी। उसके मन में मास्टर को किसी प्रकार सक्रिय सहयोग देने की इच्छा होने लगी थी, परन्तु स्वयं कम शिक्षित होने के कारण वह कुछ कर नहीं सकती थी। वह केवल मास्टर जी को बढ़िया भोजन भर खिला सकती थी।

जब ऐसा अवसर आया कि मास्टर ने महिन्दर और केवली को शिक्षा देकर स्कूल में मास्टर बन सकने की आशा दिलाई तो महिन्दर कौर का मन विलीन होने लगा।

मास्टर बनने के पश्चात् महिन्दर को मास्टर जी को और समीप से देखने का अवसर मिलने लगा। उसको उसमें अद्वितीय गुण प्रतीत होने लगे। शारीरिक आकर्षण तो हुआ ही था, परन्तु जब मन और आत्मा का सामीप्य हुआ तो महिन्दर कौर अपने को कुछ उन्नत होती हुई अनुभव करने लगी। वह समझ गई कि वह एक महानात्मा के संरक्षण में उन्नति कर रही है।

जब रामसिंह अपने घर वालों को अखण्ड पाठ में उपस्थित होने का निमन्त्रण लेकर आया और घर वालों ने जाने से इन्कार कर दिया तो महिन्दर ने मास्टर के मुख पर असन्तोष देखा। जब मास्टर जाने लगा तो वह भी उसके साथ चल पड़ी और मास्टर ने जब उसे अपने मन की बात बताई तो वह तुरन्त इसको कार्य रूप में लाने के लिए अपने पिता के पास चली गई।

सब लोग अमृतसर गए और लौटे। वापिस आते समय चौधरी ने अपनी पतोहुओं को समझाया और कहा, "हमको रामसिंह के व्यवहार पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं, न ही इसमें निराश होने की बात है। इसमें गुणवन्ती का भी कोई दोष नहीं। यह सब उनके संस्कारों का परिणाम है। हमने जो ठीक समझा वह कर दिया। उन्होंने जो ठीक समझा वह किया। एक ही ठीक बात को दूसरे ने ठीक अथवा गलत इसलिए समझा है कि हमारे संस्कार हमें ऐसा समझने की प्रेरणा

देते हैं।

"संस्कार एक दिन में बदल नहीं सकते। इनको बदलने में समय लगता है। कभी-कभी तो कई जन्म लग जाते हैं। यह खेद का विषय तो है कि हमारे विचार एकसमान नहीं हैं, परन्तु इसमें दुःख ग्रौर क्रोध करने का कोई कारण नहीं।"

महिन्दर कौर पर इस वक्तव्य का प्रभाव एक दूसरी दिशा में हुग्रा। वह मास्टर जगतराम के प्रति ग्रपने मन के भावों का विश्लेषण करने लगी थी। वह उसका ग्रादर ग्रौर फिर उसके प्रति श्रद्धा ग्रौर भक्ति ग्रनुभव करती थी। वह देख रही थी कि उसकी लालसा मास्टर की सेवा करने में ग्रधिक ग्रौर ग्रधिक हो रही थी। मास्टर के भोजन तथा कपड़ों ग्रादि का प्रबन्ध तो वह पहिले ही किया करती थी, ग्रब उसका मन मास्टर की इससे भी ग्रधिक सेवा करने का करने लगा था, परन्तु इसमें लोक-लाज एक बहुत बड़ी बाधा थी।

मास्टर उनके साथ एक घर का प्राणी बनकर रह रहा था ग्रौर महिन्दर इसको ग्रनुभव करती थी। जब से वह स्कूल में पढ़ाने लगी थी, वह ग्रपने को मास्टर के सबसे समीप मानने लगी थी। यह सब कुछ स्वाभाविक रूप में चल रहा था। उसने ग्रपने इस ग्रनुभव को न तो कभी मास्टर से कहा था ग्रौर न ही घर के किसी ग्रन्य प्राणी से इसका उल्लेख किया था।

वह विधवा थी। विवाह के समय उसकी ग्रायु केवल चौदह वर्ष की थी ग्रौर विवाह के एक वर्ष के भीतर ही वह विधवा बन गई थी। उसको ग्रपने पिता के साथ जीवन का माधुर्य ग्रभी ग्रनुभव होने ही लगा था कि वह पति से बिछुड़ गई। उसके विधवा होने के एक मास के भीतर ही मीरा का जन्म हुग्रा था। पश्चात् चौधरी एक दिन उसके ससुराल गया ग्रौर महिन्दर से पूछा, "महिन्दर! कहाँ रहना चाहती? ससुराल में या ग्रपने पिता के घर?"

उसका निश्चित उत्तर था कि यदि पिता ग्रौर भाइयों को भार रूप न प्रतीत हो तो उनके घर जाकर ही रहेगी।

इस पर कुछ कहने को रहा नहीं था। चौधरी उसे ग्रपने घर ले ग्राया। ग्रभी तक न तो उसे ग्रपने पिता के घर कोई कष्ट हुग्रा था ग्रौर न ही उसकी कभी ससुराल जाने की इच्छा हुई थी।

उसको विधवा हुए ग्रब ग्यारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे ग्रौर इस काल में ग्रपने पति की स्मृति बहुत ही धुंधली हो चुकी थी। ग्रब उस स्मृति का स्थान मास्टर जगतराम का मधुर ग्रौर सरल व्यवहार लेने

लगा था।

अमृतसर से लौटने पर और चौधरी के समझाने पर कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य निभाया है, तथा उन्होंने किसी अन्य के पसन्द के पसन्द की चिन्ता नहीं करनी, उसका ध्यान मास्टर से अपने सम्बन्ध की ओर चला गया। वह सोचने लगी कि यह सम्बन्ध क्या है। सोचने पर उसे पता चला कि शायद वह मास्टर से प्रेम करने लगी है। यह विचार आते ही एक क्षण तक तो वह स्तब्ध बैठी रह गई और पश्चात् इसके परिणामों की कल्पना कर कांप उठी। तदनन्तर वह अपने इस प्रकार से विचार करने पर अपने मन को धिक्कारने लगी, परन्तु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों वह अपने मन के भावों का विश्लेषण करती गई और चौधरी के कर्त्तव्य और निष्ठा पर विचार करती गई तो उसको विश्वास होता गया कि जो कुछ धारणा उसकी बन रही है, वह सर्वथा स्वाभाविक ही है।

जब चौधरी ने यह कहा कि जब तक हमारे मन में मैल नहीं, हमको दूसरों की निन्दा की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, तो उसको इससे भारी सान्त्वना मिली। वह इन विचारों में लीन, अपने काम में लग गई।

: ११ :

चौधरी के पांधे को समझाने के दो-तीन दिन पीछे की बात है कि पांधा सन्तराम मन्दिर पर जल चढ़ाने आया तो मंगली उसके साथ थी। पांधा ने अपने नियमानुसार मन्दिर को धो, स्नानादि कर जल चढ़ाकर लौटने को तैयार हो गया। इस समय मंगली मास्टर को, जो अपने कमरे में बैठा संध्या और जप कर रहा था, देखती रही। मंगली मास्टर को देख अति प्रभावित हुई थी और वह इसका परिचय पाने के लिए पांधा से पूछने लगी, "यह कौन है ? पुजारी है क्या ?"

"नहीं, एक परदेशी है। चौधरी के घर में बहुत घुसा रहता है और यहां एक स्कूल खोले हुए है।"

"तो यह मास्टर है। पड़ोसिन इसकी बहुत प्रशंसा करती थीं और आपके मित्र इसकी बहुत निन्दा करते थे। औरतें कहती थीं कि यह बच्चों को बिना कुछ लिए पढ़ाता है।"

"हां, पर यह क्या कुछ लेता है, कोई नहीं जानता। मुझको तो शुरू में ही संदेह हो गया था कि इसका यहां किसी औरत से प्रेम हो

गया है, जिससे अपनी जवानी गाँव में बेमोल गँवा रहा है।"

"कौन औरत हो सकती है ?"

"चौधरी के घर में ही कोई होगी। उसकी एक लड़की विधवा है। एक बहू है, जिसका घर वाला उसे छोड़ कहीं चला गया है।"

"परन्तु इसका प्रमाण क्या है ?"

"मेरा अनुमान है। एक युवा पुरुष अपना जीवन इस छोटे से गाँव में व्यतीत कर रहा है, यह देख, और कहा क्या जा सकता है ?"

"इसकी परीक्षा होनी चाहिए।"

"तो तुम करो न !"

वास्तव में इसी बात के लिए पांधा उसे यहाँ लाया था। जब जग्गू ने मास्टर को सबक सिखाने की सोची थी, तो उसकी योजना में मंगली का भी कुछ काम था। मंगली इन दिनों पांधे के मित्रों के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहती थी, इस कारण जग्गू उसे बता नहीं सका था कि उसे क्या काम करना है। इस पर सन्तराम उसे मास्टर के सम्पर्क में लाने के लिए, जिससे झगड़े का कोई बहाना बन जाए, उसे मन्दिर पर ले आया। इस कारण जब मंगली ने मास्टर की परीक्षा करने को कहा तो वह एक दम तैयार हो गया।

मंगली ने कहा, "पर मैं सोचती हूँ कि एक भले व्यक्ति का रहस्य क्यों खोल कर रखा जाए।"

"मैं समझता हूँ कि इससे इसकी भलमनसाहत का पर्दाफाश हो जाएगा। गाँव वाले देख लेंगे कि यह क्या-क्या ढोंग रचाए बैठा है। इस पर उनका ध्यान हमारी ओर से हट जाएगा और हम शान्ति से यहाँ रह सकेंगे।"

मंगली के मन में कुछ और ही बात थी। उसने कह दिया, "अच्छा देखें। मैं क्या कर सकती हूँ।"

इसके लगभग दो मास पश्चात् एक दिन का भोजन करने के पश्चात् मीरा अपने नाना के पास बैठी अपनी पढ़ाई के विषय में बता रही थी। वह कह रही थी, "अगले मास मैं पाँचवी श्रेणी पास कर लूंगी। मास्टर जी कहते थे कि मुझे पड़ोस के गाँव के बड़े स्कूल में भर्ती हो जाना चाहिए।"

"पर मीरा ! तुम तो बहुत पढ़ गई हो। मैं तो पहली श्रेणी तक भी नहीं पढ़ा।"

"मास्टर जी कहते हैं कि मैं पढ़कर स्कूल में माँ की तरह पढ़ाया करूंगी।"

"ओह ! तो तुम मास्टरायिन बनोगी ?"

"मास्टर जी कहते थे कि अगले वर्ष तक पढ़ने वाले इतने हो जाएंगे कि स्कूल में और कमरे बनवाने पड़ेंगे। वे अब स्कूल के लड़कों को खेती-बाड़ी का काम सिखाना चाहते हैं और लड़कियों को कसीदा काढ़ने का।"

"पर यह काम सिखायेगा कौन ?"

"मास्टर जी स्वयं सिखायेंगे और पढ़ाने का काम मैं, माँ और भाभी करेंगे।"

"देखो बेटी ! हमारा विचार है कि यहाँ एक मिडिल स्कूल खोल दें। उस दिन तहसीलदार आया था और कहता था कि वह बड़े साहब को लिखेगा तो सरकार यहाँ मिडिल स्कूल खोल देगी।"

"चाचा ! यह कब तक हो जाएगा ?"

"वह कहता था कि नए वर्ष से हो जाएगा।"

"तब तो बहुत अच्छा होगा। मैं पड़ोस के गाँव में नहीं जाऊंगी।"

इसी समय मन्दिर की ओर से हो-हल्ला सुनाई दिया। सुन्दरसिंह ने खड़े हो मन्दिर की ओर देखा तो बहुत से लोगों को मन्दिर पर हा-हा-हू-हू करते सुन, विस्मय में देखता रह गया। इतने में सोहन भी अपने घर से निकल आया। अब सुनाई देने लगा था, 'मारो साले को, मारो साले को।'

सोहनलाल ने कहा, "चाचा ! वहाँ फौजदारी हो रही है।" इतना कह उसने अपनी लाठी ले ली और लहनू को साथ लेकर मन्दिर की ओर चल पड़ा। चौधरी भी उनके पीछे हो लिया।

जब सोहनलाल मन्दिर पर पहुंचा तो फौजदारी करने वाले भाग चुके थे। पांधा सन्तराम और मंगली वहीं खड़े थे। मास्टर जगतराम लहू से लथपथ अचेत भूमि पर पड़ा था। सोहनलाल मास्टर को देखने लगा तो पांधे ने कहा, "सोहनलाल ! मास्टर को समेटकर रखो। अब तो वह सांडों की तरह पर-स्त्रियों की ओर देख डाके डालने लगा है।"

"किस पर डाका डाला है इसने।"

लहनू मास्टर को देख रहा था। उसके सिर पर लाठी से चोट आई थी। सिर से खून बह रहा था। लहनू कपड़ा ले सिर से बहते खून को बन्द करने का यत्न करने लगा। सोहनलाल ने कहा, "मालूम होता है कि यह बदकार औरत अपनी जवानी लुटाने

यहाँ आई थी।"

"यह तो कोई अन्य करने वाला होगा, तो बताएगा।"

इतना कह पांधा मंगली को साथ ले मन्दिर से खिसकने लगा। परन्तु सोहनलाल ने अपनी लाठी उठा कर कहा, "खबरदार!" घर नहीं, पुलिस चौकी पर चलो। यह हत्या कर तुम भाग नहीं सकते।"

हत्या की बात सुन पांधा काँपने लगा। सोहनलाल ने उसको पकड़ लिया, परन्तु मंगली भाग गई। इस समय सुन्दरसिंह और गाँव के अन्य लोग वहाँ आ पहुँचे। सबने मिलकर पांधे के हाथ-पाँव बांध दिए और उसको चौकी की ओर ले चले। सुन्दरसिंह जगतराम की हालत बिगड़ते देख, उसे चारपाई पर लिटवाकर, गाँव वालों से उठवा गाँव के हकीम के घर की ओर ले गया।

हकीम ने मास्टर को भलीभांति देखा, उसके जख्मों पर तेल लगाया और उसके मुख में दवाई डाल दी। पश्चात् उसने चौधरी से कहा, "इसको बिल्कुल आराम से लेटा रहने दीजिए। खाने को मुर्गे का शोरबा ही देना चाहिए।"

सुन्दरसिंह मास्टर को उठवाकर अपने घर ले आया। घर की स्त्रियों को सारी घटना की सूचना मिल चुकी थी और वे बेचैनी से मास्टर की प्रतीक्षा कर रही थीं। चौधरी ने मास्टर को सोहनलाल के एक कमरे में लेटा दिया और औरतें उसकी देख-भाल करने लगीं।

: १२ :

अगले दिन पुलिस जगतराम के बयान लेने आई। जगतराम ने बताया "लगभग दो सप्ताह हुए मंगली मन्दिर में जल चढ़ाने के पश्चात् मेरी कोठरी के बाहर आ खड़ी हुई और कहने लगी, "मास्टर जी! मुझको भी पढ़ाएँगे आप?"

"मैंने कहा, "स्कूल में आ सकती हो?"

"उसने कहा, "मैं गाँव में बहुत बदनाम हूँ। इस कारण स्कूल में आने से गाँव के लोग अपने बच्चों को स्कूल में नहीं आने देंगे।"

"इस युक्ति को ठीक समझ मैंने उसको सायंकाल स्कूल बन्द होने के पश्चात् मुझसे पढ़ने आने के लिए कह दिया। मुझको यह जान विस्मय हुआ कि वह पाँचवीं श्रेणी तक पढ़ी हुई है।

"कल भी वह समय पर आई और पढ़ाई के पश्चात् अपनी

जीवन-कहानी सुनाने लगी। उसने बताया कि उसका एक अनपढ़ व्यक्ति से विवाह हुआ था, परन्तु लगभग एक वर्ष पश्चात् वह विधवा हो गई थी। पश्चात् वह एक युवक के साथ भाग गई, परन्तु उसको भगाकर ले जाने वाला उससे पेशा कराने लगा। इस प्रकार वह वेश्या-वृत्ति करने लगी थी।

"इस कहानी को सुनाते-सुनाते सायंकाल देर हो गई और मैंने उसको विदा कर दिया। मैं अभी नदी किनारे ही बैठा था कि चौधरी आ गया। चौधरी से बातचीत करते देर हो गई। चौधरी गया तो मैं नदी किनारे ही पूजा-पाठ करने लगा। पूजा समाप्त हुई तो मीरा, चौधरी की दुहिता मेरे लिए भोजन ले आई। मैंने खाना लिया और अपने कमरे में ले गया। कोठरी का दरवाज़ा खुला था। अन्दर जाकर खाने को एक तिपाई पर रख दिया और लैम्प जला दिया। लैम्प जलाने पर मुझे पता चला कि मंगली भीतर बैठी है। मैंने उससे पूछा, "क्या कर रही हो यहां ?"

"आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।"

"क्यों ?"

"प्रेम-दान चाहती हूं।"

"मैं उसको समझाने लगा कि यह ठीक नहीं है। उसको एक ही व्यक्ति से अपना सम्बन्ध रखना चाहिए। इस पर वह मुझे अकेले से सम्बन्ध रखने का वचन देने लगी। जब मैंने उसकी बात नहीं मानी तो वह लपक कर मेरी खाट पर बैठ गई और मुझको गाली देने लगी और उसके साथ ही जग्गू, मोती, सोहनू आदि आठ दस लोग कोठरी में के बाहर आ खड़े हुए। इस समय वह ज़ोर-ज़ोर से शोर मचाने लगी, 'बचाओ, बचाओ......।'

"इस समय पांत्रा सन्तराम कोठरी में आ गया और मुझको गाली देने लगा। साथ ही उसके साथी लाठियां चलाने लगे। मैं भागकर कोठरी से बाहर निकल आया। इस समय मेरे सिर पर एक लाठी लगी और मैं चक्कर खाकर गिर पड़ा। इसके पश्चात् मुझे चेतना हुई तो हकीम साहब मेरे मुख में औषधि डाल रहे थे।"

बयानों के आधार पर पुलिस ने मंगली को भी पकड़ लिया और जग्गू और सोहनू के बयान भी ले लिये।

सबके बयानों के पश्चात् मंगली के अतिरिक्त पांच अन्य लोगों को पकड़ लिया गया और सबको जालन्धर हवालात में भेज दिया गया। जालन्धर से डाक्टर बुलाकर मास्टर की चोटों के विषय में

रिपोर्ट ले ली गई।

जग्गू गांव के एक जमींदार रत्नसिंह का लड़का था। रत्नसिंह अपने लड़के की पैरवी के लिए जालन्धर के कई चक्कर लगा चुका था। एक दिन वह चौधरी सुन्दरसिंह के पास आया और कहने लगा, "चौधरी ! यह मास्टर एक परदेशी आदमी है। उसके लिए हम गांव वालों को परस्पर शत्रुता मोल नहीं लेनी चाहिए।"

"ठीक है।" चौधरी ने कहा, क्या चाहते हो ?"

"वह कचहरी में कह दे कि उसको ध्यान नहीं कि बलवा करने वालों में जग्गू अवश्य था।"

सुन्दरसिंह ने रत्नसिंह से कहा, "आओ, मास्टर साहब से बात कर लेते हैं।"

"हां, वह तो करेंगे ही, परन्तु पहिले तुम बताओ कि यदि वह न माना, तो तुम किस प्रकार हमारी सहायता करोगे ?"

"वह मान जाएगा, मुझको विश्वास है।"

"फिर भी मुझे तुम्हारी ओर से आश्वासन मिलना चाहिए। मैं चाहता हूं कि यदि वह हमारा कहना न माने तो तुम उसको घर से निकाल दो।"

"क्यों ? मेरा उसको घर से निकालने और उसके झूठ बोलने में क्या सम्बन्ध है ? बयान उसने देने हैं। मैं अधिक से अधिक उसको यह कह सकता हूँ कि वह सच बोले. "झूठ बिल्कुल नहीं।"

"पर सच बोलने से मेरा काम नहीं चलेगा।"

"तो तुम्हारा काम चलाने के लिए मैं उसे झूठ बोलने के लिए कहूँ ? यह मुझसे नहीं होगा। इस पर भी रत्नसिंह ! आओ मेरे साथ। वह मान जाएगा। वह बहुत ही अच्छा आदमी है !"

जगतराम अभी भी खाट पर पड़ा था। घाव तो लगभग भर चुका था, परन्तु दुर्बलता बहुत थी और उठकर बैठने से सिर में चक्कर आने लगते थे।

जब सुन्दरसिंह और रत्नसिंह भीतर पहुंचे तो रत्नसिंह ने देखा कि महिन्दर कौर भीतर बैठी मास्टर के सिर पर हल्दी की टकोर कर रही है। रत्नसिंह ने यह दृश्य देखा तो कह दिया, "ओह महिन्दर है।" महिन्दर ने यह सुना, परन्तु वह वहां से उठी नहीं और अपना काम करती रही। सुन्दरसिंह ने एक मूढ़ा अपने लिए और एक रत्नसिंह के लिए मास्टर की चारपाई के समीप रख दिया और दोनों उस पर बैठ गए। चौधरी ने महिन्दर से कहा, "बेटी ! तुम जरा

जाओ। हमें कुछ बातें करनी हैं।"

महिन्दर उठकर गई तो चौधरी ने कहा, "मास्टर जी! ये हैं रत्नसिंह, जग्गू के पिता। यह कहते हैं कि जग्गू ने मूर्खता की है, परन्तु यदि उनको दण्ड हो गया तो वह और भी बिगड़ जाएगा। इसलिए उसको बचाने के लिए तुमसे कुछ कहने आए हैं।"

आगे रत्नसिंह ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि आप अपना बयान इस प्रकार दें कि आप विश्वास से नहीं कह सकते कि जग्गू बलवा करने वालों में था। साथ ही यह भी कह दीजिए कि सोहन सबसे आगे था और आपको उसकी लाठी से चोट लगी है।"

"याद तो मुझको सब कुछ है, परन्तु मैं किसी को फंसाकर किसी प्रकार का लाभ नहीं समझता। इस कारण मैं इतना कह दूंगा कि मुझको ठीक-ठीक याद नहीं कि बलवा करने वालों में कौन-कौन थे? परन्तु मैं यह नहीं कहूंगा कि सोहन की लाठी से मुझे चोट लगी है।"

"इससे तो हमारा काम नहीं चलेगा। पुलिस हमारे विपरीत हो जाएगी और वह क्या करेगी, कहना कठिन है।"

"देखिए रत्नसिंह जी! आपने अपने लड़के को छुड़ाना है। उसके लिए मेरे बयान सहायक होंगे। मुझको किसी को फंसाने में लाभ नहीं, इस कारण मैं सोहन के विरुद्ध क्यों कहूँ?"

"पर पुलिस नाराज़ हो जाएगी। आपके इस बयान से तो पुलिस का मुकद्दमा ही समाप्त हो जाएगा।"

"मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

"मास्टर साहब! देखिए, मैं आपके पास आया हूं। सोहन तो आया नहीं, न ही उसका कोई सम्बन्धी आया है। मैंने पुलिसवालों को एक हज़ार रुपया रिश्वत के लिए दिया है। सोहन के सम्बन्धियों ने कुछ नहीं दिया। इस कारण यदि आप सोहन के विषय में थोड़ा सा भी संकेत कर दें तो पुलिस को अपना मुकदमा सफल होता दिखाई देगा और जग्गू तुरन्त छूट जाएगा।"

"मैंने जो कहा है, वह मैं कह दूंगा और किसी ऐसे को फंसाने के लिए कुछ नहीं कहूंगा, जिसको मैं जानता हूं कि वह दोषी नहीं।"

"इससे पुलिस आपके विरुद्ध हो जाएगी।"

"मेरी आप चिन्ता न करें। आपका लड़का तो बच जाएगा।"

इस पर सुन्दरसिंह ने कहा, "रत्नसिंह! ठीक तो है। तुमको

अपने लड़के की चिन्ता करनी चाहिए। तुम्हें दूसरों से क्या मतलब ? वे बचते हैं अथवा फँसते हैं, तुम्हारा इससे क्या सम्बन्ध है ?"

रत्नसिंह इतनी बात से सन्तोष नहीं हुआ। जगतराम जब ठीक हुआ तो उसके मजिस्ट्रेट के सम्मुख बयान हुए और उसने जैसा रत्नसिंह को कहा था, वैसे बयान दिए।

परन्तु जग्गू नहीं छूट सका। मंगली पुलिस की गवाह बन गई थी और उसने बयान पुलिस के हक में दे दिए।

: १३ :

मंगली ने अदालत में कसम खाकर बयान दिए। उसने कहा, "मैं अमृतसर टाबा टेकसिंह की रहने वाली हूँ। मेरे पिता का देहान्त मेरे होश सँभालने से पहिले ही हो चुका था। मेरी माँ ने मेरा विवाह, मेरी छोटी अवस्था में ही कर दिया था। मैं अभी पन्द्रह साल की भी नहीं हुई थी कि मेरे घर वाले का देहान्त हो गया।

"इस पर मेरे घरवाले की बहिन और माँ मुझसे लड़ने लगीं। उनका विचार था कि मैं अपशकुनी हूं और मेरे कारण ही उनके लड़के का देहान्त हुआ है। मैं बहुत तंग आ गई तो अपने पड़ोस के एक युवक के साथ भाग निकली। उसका नाम मुरली था और वह रेवड़ी बनाने तथा बेचने का काम करता था। मुझे अपने साथ कुछ दिन रखने के पश्चात् वह अपने मित्रों के सम्मुख मुझे लाने लगा। मैंने जब देखा कि वह मुझसे पेशा कराना चाहता है, और इस कमाई से शराब पीता है, तो मैंने उसे छोड़ दिया और ढिलवां चली गई। वहाँ मैंने अपना नाम वेश्याओं में रजिस्टर करा लिया। वहाँ जग्गू मेरे पास आने लगा तथा मुझे यह विश्वास दिलाकर कि मुझे अपने घर रख लेगा, वह कंडेवाला ले आया। यहाँ वह अपने दोस्तों को मेरे पास लाने लगा, मैं चाहती थी कि मैं एक से ही सम्बन्ध रखूं। इस कारण मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैंने पांधा सन्तराम से बातचीत की। उसकी पत्नी उसको छोड़कर जा चुकी थी। मैंने सोचा कि यदि मुझे अपनी पत्नी बना लेगा तो मैं जने-जने की पत्नी बनने से बच जाऊँगी। जब मैंने उसको अपने मन की बात बताई तो वह मान गया और मैं उसके घर आकर रहने लगी।

"मेरा विचार था कि पांधा मुझको दूसरों से बचा सकेगा, परन्तु ऐसा नहीं हो सका और उसके घर में भी अन्य युवक आने लगे। इस तरह मेरे सहारे पांधे का गुजारा मज़े से होने लगा।

"इन दिनों पांधा मुझे मास्टर के पास ले आया। मैंने सोचा कि मास्टर का विवाह तो हुआ नहीं, यदि वह मुझसे सम्बन्ध बना लेगा, तो मेरी अन्य युवकों से रक्षा भी कर सकेगा और मैं वेश्यावृत्ति से बच जाऊँगी। इस कारण जब पांधा मुझे मास्टर से सम्बन्ध बनाने की प्रेरणा देने लगा तो मैं मान गई। मुझे इस बात का पता नहीं था कि वह मुझे किस उद्देश्य से मास्टर के पास भेजना चाहता था। मैं तो सच्चे हृदय से मास्टर जी से पढ़ने जाती थी और फिर उनसे अपना सम्बन्ध बनाना चाहती थी।

"एक दिन मैंने मास्टर जी को अपने अनुकूल करने के लिए यत्न करना चाहा। उस दिन मैंने उनको अपनी कथा बताई और फिर उनके साथ रात व्यतीत करने का प्रस्ताव किया। मैं अभी यह यत्न कर ही रही थी कि सन्तराम, जग्गू सोहन आदि लाठियाँ लिए हुए वहाँ आ गए और मैं उनको आया देख डर गई। मैंने बचाओ-बचाओ की आवाज उनसे बचने के लिए ही उठाई थी।

"जग्गू मास्टर जी को मारने वालों में सबसे आगे था और उसने ही, जब मास्टर जी भागकर कोठरी से निकलने लगे, तो मास्टर जी के सिर पर लाठी मारी। लाठी लगते ही मास्टर जी गिर पड़े और वेहोश हो गए उनको मरा जान जग्गू आदि सब भाग गए। मैं वहीं रह गई और सोचने लगी कि किस प्रकार मास्टर जी की सहायता करूँ। पांधा चाहता था कि मैं उसके साथ भाग जाऊँ, परन्तु मैं जाना नहीं चाहती थी। मेरा विचार था कि मास्टर जी को उठाकर हकीम साहब के पास ले जाया जाए। अभी पांधा मुझको भाग जाने के लिए कह ही रहा था कि चौधरी का लड़का सोहनलाल आ गया। उसने पांधा को पकड़ लिया और गांव के अन्य लोगों की सहायता से, जो शोर सुन वहाँ आ गए थे, उसको बाँधकर पुलिस चौकी की ओर ले गए। चौधरी ने चार लोगों की सहायता से मास्टर जी को चारपाई पर डाला और उनको हकीम साहब के घर की ओर ले गए। अब मैंने अपना वहाँ रहना व्यर्थ समझ, वहाँ से चले जाना ही उचित समझा।

"रात में जग्गू के घर पर ही रही। जग्गू का पिता रत्नसिंह मुझे सिखाता रहा कि मैं यह बयान दूं कि मास्टर जी मुझसे बलात्कार

करना चाहते थे और मैंने शोर मचाया, जिसको सुन पांघा सन्तराम वहाँ पहुंच मुझको छुड़ाने लगा। इस छुड़ाने में ही मास्टर को चोट लग गई। मैंने उसी समय मन में निश्चय कर लिया था कि मैं सच-सच कहूंगी। पीछे मुझको सरकारी गवाह बना लिया गया और मैं सौगन्धपूर्वक कहती हूं मास्टर जी ने मुझको छूआ तक नहीं। इसके विरुद्ध वह मुझको पांघा की ही पत्नी बनकर रहने की सम्मति देता रहा। मैंने बचाओ बचाओ जग्गू और सोहनू से बचाने के लिए कहा था।"

मंगली के इस बयान ने मास्टर जगतराम के जग्गू को छुड़ाने के प्रयत्न को विफल कर दिया।

: १४ :

इस बीच मास्टर को एक और अनुभव हुआ। महिन्दर कौर दो मास तक मास्टर की सेवा-सुश्रूषा करती रही थी। जब तक तो मास्टर अचेतप्राय रहा, सेवा करने वाले कौन-कौन थे, इसका उसके लिए कुछ अर्थ नहीं था। उस समय सेवा करने वाले प्रायः घर के सभी प्राणी थे, परन्तु ज्यों-ज्यों वह सचेत होता गया, तो उसको महिन्दर कौर की सेवा में सहानुभूति के अतिरिक्त भी कुछ अन्य भावना का भास होने लगा। इससे उसको संकोच अनुभव होने लगा। वह चाहने लगा कि वह शीघ्रातिशीघ्र मन्दिर में जाकर रहने लग जाए। परन्तु वह इतना दुर्बल हो गया था कि न तो वह स्वयं मन्दिर में रहने जा सका और न ही उसको किसी ने राय दी।

जगतराम जब कुछ स्वस्थ हुआ तो मुकदमा आरम्भ हो गया और उसको दूसरे-तीसरे दिन जालन्धर जाने की आवश्यकता पड़ने लगी। पश्चात् उसको एक-दो बार लाहौर भी जाना पड़ा। इस सब समय स्कूल बन्द रहा और वह चौधरी के घर में ही रहता रहा।

एक दिन वह जालन्धर से लौटा तो रात के ग्यारह बज गए थे। यद्यपि उसको लिवाने के लिए ढिलवाँ बैल-टांगा गया हुआ था, तो भी रात के ग्यारह बजे से पहिले वह गाँव नहीं पहुंच सका। चौधरी तथा घर के अन्य लोग सो चुके थे। केवल महिन्दर उसकी प्रतीक्षा के लिए बैठी थी।

जगतराम तो ढिलवां से ही दूध पी आया था परन्तु महिन्दर कौर को भोजन खिलाने के लिए बैठे देख, उसको बहुत चिन्ता लग

गई। मास्टर ने कहा, "महिन्दर! यह तुम क्या करती हो? तुम क्या समझती हो कि मैं इतने समय तक भूखा बैठा रहा हूं?"

"मुझको कैसे पता चले कि आपने खा लिया है? क्या खाया है आपने?"

"दूध पिया है।"

"हमने आपके लिए दूध में दलिया बनाया हुआ है।"

"क्यों, आज क्या बात है?"

"रोटी बनाती तो ठंडी हो जाती और खाई न जाती। दलिया तो बड़ी जल्दी गरम हो सकता है।"

"पर मैं तो खा आया हूं। देखो महिन्दर! यदि मैं समय पर न आ सकूं तो समझ लिया करो कि मेरा खाना नहीं होगा।"

"पर केवल दूध पीना तो खाना खाया नहीं कहा जा सकता और फिर मेरे हाथ का दलिया बना देखिए कितना स्वादिष्ट है!"

"तुम्हारे हाथ की बनी तो सब चीज स्वादिष्ट होती हैं। पर मैं यह नहीं चाहता कि इस प्रकार तुम मेरे लिए प्रतीक्षा किया करो।"

"क्यों?"

"बस नहीं।"

इससे महिन्दर कौर मास्टर का मुख देखने लगी। जगतराम अपने कमरे में सोने के लिए चला गया। महिन्दर कमरे के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। मास्टर ने उसकी ओर देखा तो उसे पता चला कि उसकी आँखें डबडबा आई हैं। उसके मुख से केवल इतना निकला, "जाओ अब...।" परन्तु वह आगे कुछ नहीं कह सका। समीप आकर उसने कहा, "महिन्दर! यह क्या है? आंखों में आंसू क्यों?"

"आप कुछ तो खा लीजिए।" कहते-कहते महिन्दर कौर के आंसू ढुलक पड़े।

"पगली कहीं की! अच्छा, जाओ ले आओ।"

वह गई और दलिया गरम कर लाई। इस समय तक मास्टर कपड़े बदल, हाथ-मुख धो, चौकी पर बैठ दलिये की प्रतीक्षा करने लगा था। महिन्दर दलिया लेकर आई तो उसने चौकी सामने रख दी और उस पर दलिए की थाली रख दी।

मास्टर ने खाते हुए कहा, "भला इसमें रोने की क्या बात थी?"

महिन्दर कौर मास्टर के सामने चटाई पर बैठ गई और कहने लगी, "आप यदि मेरे आंसू नहीं देखते तो कभी नहीं खाते। मैं तो

इन्हें छुपाने का यत्न कर रही थी, पर क्या करूँ, वे निकल ही पड़े।"

"क्या विवशता आ पड़ी थी?"

"तो आप नहीं समझते कि एक वो किसी पुरुष के लिए इतना अनुभव करती है, तो क्यों करती है?"

"समझता हूँ। स्त्री में माता का वात्सल्य उसका विशेष गुण है। मैं अपने प्रति तुम्हारे मन में यह भावना मानता हूँ। यदि तुमने मेरी जी-जान से सेवा न की होती तो मैं इस समय यहाँ बैठ दलिया न खा रहा होता।"

महिन्दर कौर के आंसू अभी भी वह रहे थे, परन्तु मास्टर की बात सुन मुस्कराकर बोली, "आप जानते हैं कि मेरी आयु कितनी है?"

"शरीर होगा बाईस-तेईस का, परन्तु तुम्हारा मन पचास वर्ष का हो गया है। तभी तो मेरी इतनी सेवा कर रही हो।"

महिन्दर ने आंखें पोंछ, हंसते हुए कहा, "आप जबरदस्ती मुझे बूढ़ी बना रहे हैं। मैं आपको बता दूं कि मैं मन से भी उतनी ही आयु की हूँ, जितनी शरीर से हूँ। आपसे कुछ छोटी ही हूँ। मेरे मन की भावना को वात्सल्य तो नहीं कह सकते। हाँ, इसको प्रेम कहिए तो ठीक रहेगा।"

"मैं समझता हूँ कि तुम गलत समझ रही हो। तुम्हारा मुझसे प्रगाढ़ स्नेह हो सकता है।"

"किस प्रकार समझाऊँ आपको? मैं आपसे प्रेम करती हूं और आपसे विाह करना चाहती ढ़ूँ। मैं न तो आपकी माँ के तुल्य हूँ और न ही आपके प्रति मेरे मन में बहिन की भावना है। मैं सत्य हृदय से, अपनी अन्तरात्मा को भली भांति टटोलने के पश्चात् कहती हूँ कि मैं आपके चरणों में रहना चाहती हूँ।"

उसके इस प्रकार कहने से यद्यपि जगतराम को आश्चर्य नहीं हुआ तो भी उसको अचम्भा अवश्य हुआ। वह उसके इस प्रकार स्पष्ट कहने की आशा नहीं रखता था। उसने खाना छोड़ दिया और अचम्भे में उसका मुख देखने लगा। एकाएक महिन्दर कौर ने उसके चरण स्पर्श कर, हाथ अपने माथे से लगा लिये। जगतराम अभी भी चुपचाप उसकी ओर देख रहा था। उसे इस प्रकार विस्मय स्तब्ध देख महिन्दर कौर ने कहा, "एक बार आप कह दीजिए कि मुझे आप अस्वीकार नहीं करते। बस इससे अधिक मैं आपसे कुछ नहीं माँगूंगी।"

"पर जो कुछ तुम चाहती हो, वह असम्भव है।"

"क्यों ?"

"मैं तुम्हारे पिता के एहसान के नीचे इतना दबा हुआ हूं कि मैं तुम्हें उनसे मांग नहीं सकता। साथ ही मैं इतना हीन हूं कि संसार में तुमको मैं एक कुलीन स्त्री की भांति रख नहीं सकता।"

"बस या और कुछ भी ?"

"मैं निर्धन और बेकार हूं।"

"और भी कहिए कि आप क्या-क्या हैं ?"

"महिन्दर ! तुम समझती क्यों नहीं ? मैं तुमको किस प्रकार अपने साथ गढ़े में गिरा सकता हूं ?

"मैं आपसे कुछ मांगती नहीं। मैं चाहती हूं कि आप मुझे अपनी दासी के रूप में ग्रहण कर लीजिए। भोजन, वस्त्र तथा रहने को स्थान तो मुझको प्राप्य ही है।"

"परन्तु जब तुम्हारे पिता और भाई को पता चला कि मेरे मन में तुम्हारे प्रति क्या भाव हैं, तो वे मुझको धक्के मार-मारकर यहां से निकाल देंगे।"

"तो आप उन्हें बताएंगे ही क्यों ?"

"तो फिर कैसे होगा ?"

"आप मेरी मांग में सिन्दूर भर दीजिए। बस मैं अपने भाग का प्रसाद आपकी सेवा में अगले जन्म के लिए सुरक्षित रखूंगी।"

"अर्थात् हमारा परस्पर वचन तो अभी हो जाए और हमारा विवाह अगले जन्म में हो। क्या यही मतलब है तुम्हारा ?"

"बिल्कुल।"

"क्या लाभ होगा इससे ?"

"मैं अपने को निराश्रय नहीं समझूंगी। मैं अपने को संसार में एक व्यर्थ की वस्तु नहीं मानूंगी। मेरे लिए भी संसार में कुछ करने को हो जाएगा। किसी की सेवा-शुश्रूषा करना, किसी को प्रसन्न और सन्तुष्ट करना, किसी के सुख-दुःख का भागीदार बनने का अधिकार, किसी के पुण्य-पाप में साझीदार और किसी की जीवन-नौका का साथी होने का अवसर प्राप्त हो जाएगा।"

जगतराम इन सब बातों के लिए विवाह करना आवश्यक नहीं समझता था। विवाह का मुख्य अर्थ वह समझता था, परस्पर यौन तृप्ति में निर्भरता। यह जब सम्भव ही नहीं तो पति-पत्नी भाव का सखा-सखि भाव ही कहा जा सकता है। इस कारण उसने कहा, "महिन्दर ! तुम्हारी बातों से मैं यह समझता हूं कि तुम और मैं सखि-

सखा बनकर रहें। सो तो हम हैं ही।"

"जी नहीं। मैं सखि-सखा सम्बन्ध में अपने मन की भावनाओं को प्रकट करने में अपने को दुर्बल पाती हूँ। मैं यह कह सकती हूं कि मैं आपकी पत्नी रहूँ, परन्तु आपसे मैं यौन सम्बन्ध के लिए घनिष्ठता का आग्रह न करूं।"

"तुम कभी-कभी बच्चों की सी बातें करने लगती हो। भला यह कैसे हो सकता है? यह अति दुस्तर परिस्थिति है और इसमें भय है।"

"देखिए, आपको यहाँ छः वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। मैंने पहिले ही दिन जब आपको देखा था तो समझ लिया था कि मेरा आपसे जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। मैं उस दिन से ही आपको अपना देवता मान स्वीकार किए हूँ। परन्तु इतने काल तक मैंने कभी आपसे यौन सम्बन्ध की इच्छा नहीं की। आज तीन मास से आप मेरे निकटतम हैं। मैंने कभी इस ओर संकेत नहीं किया।"

"परन्तु अब तुम उसको माँगने का अधिकार पाने की इच्छा कर रही हो।"

"अधिकार दे दीजिए। इस पर भी विश्वास रखिए कि आपसे विवाह के पूर्व कुछ अनुचित बात नहीं कहूँगी। विवाह तो माता-पिता जीवित हों तो करने का अधिकार है।"

"समझा। मुझको इस शर्त पर तुमसे यह सम्बन्ध स्वीकार है।" इतना कह मास्टर दलिया खाकर चौकी पर से उठ खड़ा हुआ।

इस घटना के पश्चात् महिन्दर ने मास्टर की प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया।

मास्टर स्वस्थ हो गया। मुकदमा समाप्त हो गया और स्कूल पुनः खुल गया। मास्टर मन्दिर में अपनी कोठरी में जाकर रहने लगा और सारा काम पूर्ववत् चलने लगा।

मुकदमे के पश्चात् मंगली फिर गाँव में रहने चली आयी। जब वह आई तो मन में विचार करने लगी कि वह वहाँ क्यों आई है। उसको यह भलीभाँति विदित था कि उसने वेश्यावृत्ति ही करनी है तो कडेवाल उपयुक्त स्थान नहीं। पहिले भी वह वहाँ जग्गू अकेले की रखैल बनकर रहने आई थी, परन्तु उसने उसे दूसरों के आगे फेंक दिया था। फिर उसने सन्तराम से भी इसी दृष्टि से सम्बन्ध बनाया था। वहाँ भी उसे शान्ति से जीवन व्यतीत करने का अवसर नहीं मिला। पश्चात् वह मास्टर जगतराम के पास गई तो यही विचार कर कि वह उसकी दूसरों से रक्षा

कर सकेगा और वह उसके संरक्षण में शान्तिपूर्वक रह सकेगी। इस पर मास्टर के साथ फौजदारी हो गई।

अब वह विचार करती थी कि जग्गू का पिता जानता है कि उसके बयानों से ही जग्गू को चार वर्ष का कठोर दंड मिला है। मास्टर के साथ दुर्घटना वाली रात वह जग्गू के घर रही थी और रत्नसिंह की धमकियाँ सुन चुकी थी। उसने उसी रात सरकारी गवाह बन पूरा षड्यन्त्र खोल देने का निश्चय कर लिया था परन्तु उसने अपना निश्चय किसी को बताया नहीं था। रत्नसिंह तो उसे बराबर धमकियाँ देता रहा था।

इतना कुछ होने पर भी वह पुनः गाँव में रहने चली आई थी। वास्तव में उसको शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने की एक मात्र आशा मास्टर जगतराम थी। वह समझती थी कि यदि चाहेगा तो चौधरी से कहकर गाँव में शान्तिपूर्वक रहने देगा और अपना संरक्षण देगा। यद्यपि वह नहीं जानती थी कि यह कैसे हो सकेगा, परन्तु जालन्धर अथवा अन्य किसी नगर में जाकर सिवाय वेश्यावृत्ति के उसके लिए कोई उपाय नहीं था। अन्य किसी गाँव में वह किसी को भी जानती नहीं थी। इस गाँव में मास्टर ही उसके लिए एक आशा की किरण दिखाई देती थी। अतएव वह गाँव में चली आई थी।

गाँव आकर उसने पांधा सन्तराम के मकान में रहना शुरू कर दिया और मास्टर से अपने मन की अवस्था का वर्णन करने की योजना बनाने लगी। वह एक दिन मास्टर से जा मिली और उसने अपने मन की अवस्था बताई। मास्टर ने उसको स्पष्ट कह दिया कि जहाँ तक उससे सम्बन्ध का प्रश्न है, वह अपने मन से इस आशा को निकाल दे और जहाँ तक उस गाँव में सरक्षण की बात है, उसके लिए वह किसी समय चौधरी से जाकर मिले तो प्रयत्न किया जा सकता है।

परन्तु ऐसा हो नहीं सका। एक तो गाँव के अन्य युवक पुनः उसके पास आने का आग्रह करने लगे। कुछ उसको रुपए तथा वस्त्रादि भी लाकर देने लगे। इस पर भी वह उनसे अपने को बचाकर रखने का यत्न करती रही।

उसको गाँव में आए अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि एक दिन जग्गू का पिता रत्नसिंह उससे मिलने आया। उसने उसका दरवाजा खटखटाया तो वह मकान के बाहर खुले में आ गई। वह रत्नसिंह को मकान के भीतर ले जाने में भय अनुभव करती थी।

मध्याह्न का समय था और पास-पड़ोस के लोग रत्नसिंह को मंगली

का दरवाज़ा खटखटाते देख एकत्रित हो गए थे। वे किसी भीषण कांड की ग्रशंका करने लगे थे।

मंगली बाहर ग्राई तो रत्नसिंह ने पूछा, "तुम यहां किसलिए ग्राई हो?"

"जीवन व्यतीत करने।"

"यहां के युवकों को बदमाशी सिखाकर न?"

"नहीं सरदार जी। मैं किसी भी गांव वाले से कुछ मांगती नहीं। न ही किसी को यहां बुलाती हूं। कोई नहीं कह सकता कि मैंने किसी को यहां बुलाया हो। ग्रौर तो ग्रौर मैंने किसी को इस घर के ग्रन्दर प्रवेश तक नहीं करने दिया। मेरा यही निवेदन है कि मुझे यहां शान्ति से रहने दिया जाए।"

"तुम दो दिन के भीतर इस गांव को छोड़कर चली जाग्रो।"

"क्यों?"

"तुमने मेरे लड़के को कैद करवाया है।"

"यह झूठ है।"

"जो चाहे कहो। मैं तुमको कह रहा हूं कि यहां से चली जाग्रो नहीं तो गांव वालों को तुम्हारे संस्कार के लिए लकड़ियां बटोरनी पड़ेंगी।"

"तो मुझको पुलिस में जाना पड़ेगा?"

"जहां मन करे जाग्रो।"

इतना कह रत्नसिंह वहां से चला गया। पड़ोसी मंगली की ग्रोर देखकर हंसने लगे। मंगली ग्रभी भी वहां खड़ी रत्नसिंह को जाते देख रही थी। गांव के बच्चे ग्रौर पड़ोसी उसको परेशान देख उसके चारों ग्रोर एकत्रित हो गए। एक, जिसका नाम प्रीतमसिंह था, कहने लगा, "मंगली! पुलिस में चलोगी? चलो मैं ले चलूं।"

"पुलिस में जाने से पहिले गांव वालों से ही न्याय मांगूंगी।"

"गांव में कौन तुम्हारी सहायता करेगा?"

"जिसको परमात्मा का भय होगा।"

"तो तुम परमात्मा की भक्तिनी हो?" प्रीतमसिंह ने हंसते हुए कहा।

"बिल्कुल। मैं शान्तिपूर्वक ग्रपना जीवन व्यतीत करना चाहती हूं। मैं ग्राप लोगों से कुछ नहीं मांगती। ग्राप मुझको शान्ति से रहने दीजिए।"

"तो तुम चौधरी सुन्दरसिंह के पास चली जाग्रो। वह ही तुम्हारा

फैसला करेगा।"

समीप खड़े एक अन्य युवक ने हँसते हुए कहा, "चौधरी तो बूढ़ा हो गया है, वह तुम्हारी मदद कैसे करेगा?"

एकाएक मंगली के मन में एक विचार दौड़ गया। वह बोली, "ठीक कहते हो। वह युवा नहीं है। इस कारण वह मुझे भलीभांति समझ सकेगा।" इतना कह वह उसी समय सीधा चौधरी के घर की ओर चल पड़ी।

सुन्दरसिंह खेतों से लौटकर, भोजन कर, घर के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे तख्तपोश पर लेट विश्राम कर रहा था। मंगली उसके सामने जा खड़ी हुई। चौधरी उसे देख उठकर बैठ गया और पूछने लगा, "क्या चाहती हो?"

"इस गाँव में शान्ति से जीवन व्यतीत करने की स्वीकृति चाहती हूँ।"

"मैं इस गांव में वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्री की सहायता नहीं कर सकता।"

"मैं वेश्यावृत्ति करने तो पहिले भी नहीं आई थी, परन्तु जग्गू और उसके मित्रों ने मुझे रहने नहीं दिया। पांधा के पास भी इसी कारण गई थी। मेरी सदा यही इच्छा रही है कि मैं एक ही के पास रहूँ, परन्तु लोग रहने नहीं देते। अब मैं आपसे इसके लिए सहायता माँगने आई हूं।"

"क्या सहायता चाहती हो?"

"जब तक मैं ठीक रहूँ, मेरे जीवन की रक्षा की जाए। जग्गू का बाप मुझे मार डालने की धमकी देता है।"

"तो तुम्हारा मतलब है कि मैं रत्नसिंह से झगड़ा मोल ले लूं?"

"आप तो चौधरी हैं। जब आप गरीब, कमज़ोर और ईमानदार की सहायता नहीं कर सकते तो फिर चौधरी किस बात के हैं?"

चौधरी इस बात से ऐसा चिल्ला उठा जैसे घोड़ा चटक उठता है। वह विचार करने लगा कि यह औरत तो ठीक कहती है। परन्तु क्या यह ईमानदार है? इसका पिछला जीवन तो ऐसा नहीं था। इस कारण वह कुछ समय तक सिर झुकाए विचार करता रहा। पश्चात् बोला, "तुम गरीब हो, कमज़ोर हो अथवा ईमानदार हो, इसका प्रमाण क्या है?"

"चौधरी! मैं गरीब तो हूँ, न होती तो पेशा क्यों करती? मैं कमज़ोर भी हूं। कौन विधवा कमज़ोर नहीं है। बाकी मैं भगवान

की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं अब पेशा नहीं करूँगी और अपने खाने का प्रबन्ध किसी खेत में मजदूरी कर, कर लूंगी। मैं किसी पर बोझा नहीं बनूंगी।"

सुन्दरसिंह अभी भी असमंजस में पड़ा था। वह अपना मार्ग स्पष्ट नहीं देख पा रहा था। इस समय उसको मास्टर जगतराम से राय करने की आवश्यकता सूझ पड़ी। पहिले भी किसी कठिन समस्या के उठ खड़े होने पर वह मास्टर को राय के लिए बुला भेजता था। अब भी उसने उसे बुलाना उचित समझा। उसने लहनू को बुलाकर कहा कि वह जाकर मास्टर को बुला लाए।

मंगली ने कहा, "चौधरी! मैं तुमसे सहायता माँगने आई हूं, मास्टर से नहीं। चौधरी तुम हो, मास्टर नहीं।"

"ठीक है। परन्तु मास्टर मेरा दाहिना हाथ है। कठिन समय पर मैं उससे सहायता लिया करता हूं। तुम बैठो। उसको आने दो।"

सारे गाँव में यह बात फैल गई कि रत्नसिंह मंगली को मार डालने की धमकी दे गया है और मंगली चौधरी के पास सहायता लेने के लिए गई है। इस कारण तमाशा देखने वाले उसके पीछे-पीछे चौधरी के घर पहुँच पीपल के नीचे जा खड़े हुए। मंगली वहाँ भूमि पर बैठी थी और चौधरी गंभीर मुद्रा में तख्तपोश पर सिर झुकाए विचार करता हुआ बैठा था। तमाशा देखने वाले यह जानना चाहते थे कि चौधरी मंगली को क्या उत्तर देता है। यदि तो वह सहायता देने से इन्कार करता है, तो मंगली क्या करती है और यदि उसकी रक्षा का वचन देता है, तो किस प्रकार यह करेगा।

मास्टर जगतराम आया तो हाथ जोड़ वाहे गुरु की फतेह बुलाकर खड़ा हो गया। चौधरी ने उसे अपने समीप तख्तपोश पर बैठा लिया और पश्चात् मंगली से बोला, "अब बताओ, तुम क्या चाहती हो?"

मगली ने कहा, "मैंने कचहरी में जो बयान दिए थे, वे बिल्कुल सच थे। मैं पहिले भी नेक जीवन व्यतीत करना चाहती थी और अब भी चाहती हूं। पहिले मैं उनके पास जाती रही, जो मुझे उल्टे मार्ग पर ले जाते रहे और अब मैं उनके पास आई हूं जो समाज में दयालू माने जाते हैं। मैं सर्वथा निष्पाप थी। जब मैं विधवा हुई तो उस समय मेरे मन में लेशमात्र भी पाप नहीं था। मेरी सास और ननद के दुर्व्यवहार ने मुझे एक दुर्बलात्मा का आश्रय लेने पर विवश कर दिया। इसमें मेरा दोष केवल इतना ही है कि मैं मुरली पर विश्वास कर बैठी। इसके पश्चात् मैंने भूल की और जग्गू का विश्वास किया। यह भूलें

हैं, पाप नहीं। अब मैं चौधरी के पास आई हूं, मैं समझती हूं कि मैं भूल नहीं कर रही।

"आज से पहिले मैं दुर्भाग्य से उनके पास जाती रही थी, जो मेरा भोग करने के लिए मुझको आश्वासन देते रहे। अब मैं उनके पास आई हूं, जिनको इस बात की लालसा नहीं। मैं शान्ति से जीवन व्यतीत करने में सहायता चाहती हूं।"

मास्टर ने कहा, 'मंगलो तुम किसी नगर में चली जाओ। वहां ईमानदारी से परिश्रम कर निर्वाह करना। यहां खेतों में काम करने से तो तुमको दो-अढ़ाई आने मजदूरी मिलेगी और नगर में एक रुपया तो मजदूरी कमा ही सकोगी।"

"मास्टर!" मंगली ने कहा, "मैं गांव में रहकर दो आने में गुजर कर लूंगी। पर नगर में तो एक रुपए में भी कठिन है। फिर यहां छोटी सी समाज है। यदि मैं नेक रही तो सब जान जाएंगे और बदकार रही, तब भी पहिचान जाएंगे। नगर में तो लोग बलपूर्वक मुझको पेशा करने पर विवश कर देंगे। मेरी अवस्था पर विचार करो और फिर बताओ मैं कैसे नगर में जा सकती हूं। मुझ पर दया करो और यहां ही रहने दो।"

मंगली रो रही थी और मास्टर उसकी अवस्था को समझ रहा था। साथ ही वह उसकी सहायता करने में कठिनाई को भी जानता था।

एकाएक मास्टर को एक बात सूझी। उसने चौधरी को कहा, "चाचा! यह औरत ठीक कहती है। इसको भली औरतों की तरह रहने का अवसर मिलना चाहिए। परन्तु हम क्या कर सकते हैं! यदि किसी बियावान जंगल में रहते होते तो हम उसको अपनी छोटी-सी समाज में सम्मलित कर लेते, परन्तु यहां की समाज तो बहुत बड़ी है। हमसे बाहर भी लोग रहते हैं। इस कारण मेरा सुझाव है कि शीघ्रातिशीघ्र गांव की पंचायत बुला ली जाए और सबके सामने यह बात रख दी जाए। जनता में जनार्दन हैं और हमको विश्वास करना चाहिए कि सबका सामूहिक मत भगवान का आदेश होगा।"

सुन्दरसिंह को मार्ग मिल गया। उसने अगले दिन मध्याह्न के समय गांव के सब बीस वर्ष से ऊपर की आयु के लोगों की पंचायत बुलाने का आदेश दे दिया। पश्चात् उसने मंगली से कहा, "तुम यहां हमारे घर के सामने पड़ी रहो, जिससे तुम्हारा कोई अनिष्ट न कर सके। कल पंचायत तुम्हारी प्रार्थना पर विचार करेगी।"

"ठीक है। मुझे गांव के लोगों पर विश्वास करना चाहिए।"

रात भर गाँव में चहल-पहल रही। लोग परस्पर मिलकर इस विषय पर विचार करते रहे कि मंगली को गाँव में रहने दिया जाए अथवा नहीं। रत्नसिंह इस बात पर तुल गया प्रतीत होता था कि वह मंगली को गाँव से बाहर निकालकर ही रहेगा। उसके गुट में कुछ लोग थे और उनके द्वारा वह गाँव में यह विख्यात कर रहा था कि जो कोई मंगली के पक्ष में राय देगा, वह रत्नसिंह का शत्रु समझा जावेगा।

रत्नसिंह के गुट में एक लाला सालिगराम था। वह जाति का कायस्थ था अपनी युवा अवस्था में तहसीलदार का पेशकार रह चुका था और इस काल में उसने कंडेवाल की अच्छी भूमि में से पचास बीघा अपने नाम कर ली थी। अब वह खेती करता था और गाँव में हुक्का गुड़गुड़ाता फिरता था।

गाँव में वह चौधरी का प्रतिद्वन्दी था और सदैव उसकी चिन्ता किया करता था। उसका कहना था, "चौधरी तो अनपढ़ है और अनपढ़ों का चौधरी है। अनपढ़ ही उसकी बेतुकी बातों को मान सकते हैं।"

आज उसको अपना चौधरीपन चलाने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने लोगों में यह प्रचार आरम्भ कर दिया कि मंगली का वास्तव में मास्टर से सम्बन्ध है। इसी कारण वह दुनिया के सब गाँव छोड़, इस छोटे से गाँव में, जो स्टेशन से दस मील की दूरी पर है, आकर रहना चाहती है।

उसका कहना था, "जो औरत एक बार पेशा कर चुकी, भला वह उसका मज़ा कैसे भूल सकती है। जिसको जने-जने की जूठी थाली खाने की आदत पड़ जाए, वह एक थाली में नहीं खा सकती।"

सालिगराम घूम-घूमकर लोगों को समझाता रहा, "हम, जिनके घरों में बहू-बेटियाँ हैं, मंगली जैसी औरत को इस गाँव में रहने नहीं देंगे।" वह लोगों से सीधा कह देता, "अपनी माँ-बहिनों से पूछ लो। क्या वे ऐसी गन्दगी को इस गाँव में रखना पसन्द करेंगी?"

परिणाम यह हुआ कि रात के बारह बजे तक गाँव भर में यही चर्चा रही और अगले दिन किसानों के हल नहीं निकले।

रात को महिन्दर कौर मास्टर की रोटी लेकर उसके पास गई तो उसके सामने रोटी रख पूछने लगी, "क्या होगा इस मंगली का?"

"तुम क्या चाहती हो महिन्दर?"

"इस बेचारी को यहाँ ही रहने दिया जाए। साथ ही चाचा को उसे अपने खेत में काम दे देना चाहिए, जिससे उसको नेक जीवन व्यतीत करने में सहायता मिले।"

"चाहता तो मैं भी यही हूं, पर गांव वालों की बात मैं क्या कह सकता हूँ ?"

"पर आपने यह गांव वालों के हाथ उसका भाग्य क्यों सौंप दिया है ?"

"गांव में रहने के लिए गांववालों की स्वीकृति आवश्यक नहीं क्या !"

गांव में रहना अथवा न रहना, इसका निर्णय करना गांव वालों का काम नहीं। इसके लिए सरकार ने कानून बनाए हैं। जो उनको न माने, उनको दण्ड दिलवाना लोगों के हाथ में है, परन्तु स्वयं दण्ड देना नहीं। मैं तो समझती हूँ कि गांव वाले तभी हस्तक्षेप कर सकते हैं, जब कोई कानून के विरुद्ध कुछ बात करे। अब होगा यह कि गांव वाले उसके पिछले कामों को जानकर उनका निर्णय करेंगे, जो शायद उसके पक्ष में नहीं होगा। परिणाम यह होगा कि उसको अपना जीवन सुधारने का अवसर ही नहीं मिलेगा।"

मास्टर को अपनी भूल समझ आने लगी। इस समय महिन्दर ने पुनः कहा, "मैं समझती हूँ कि चाचा को उसकी सहायता मनुष्यता के नाते करनी चाहिए थी, चौधरी के नाते नहीं।"

"पर वह तो चाचा के पास इस कारण आई थी कि वह चौधरी हैं।"

"उस बेचारी ने यह समझा होगा कि कंडेवाल का चौधरी एक मनुष्य है और अपने में मनुष्यता रखता है। परन्तु चाचा तो समझते हैं कि चौधरीपन बना रहे, चाहे मानवता की हत्या हो जाए।"

"महिन्दर ! तुम समझ नहीं सकती। यदि गांव वालों की इच्छा के बिना मंगली को यहां रखा जाता तो कदाचित् गांव में हमारा रह सकना भी कठिन हो जाता।"

'क्या होता और क्या न होता, इसका विचार कर हम मानवता छोड़ नहीं सकते थे।"

मास्टर समझ गया कि इस प्रकार की बात, जो मानव के सुधार के साथ सम्बन्ध रखती है, जन-मत के हाथ में देनी उचित नहीं थी। परन्तु अब क्या हो सकता था ? बात पंचायत में चली गई थी। अब तो एक ही बात हो सकती थी कि पंचायत में मंगली की हिमायत की जाए।

रात को यह बात चौधरी के सामने रखी गई। चौधरी का कहना

था कि "किसी गाँव में रहना गाँव की समाज में सम्मिलित होना है। यह गाँव वालों से पूछे बिना नहीं होना चाहिए, इस कारण इस पूछने का प्रबन्ध किया गया है।"

'पर चाचा !" महिन्दर ने पूछा, "क्या तुम समझते हो कि अब गांव वाले मंगली को गांव में रहने की स्वीकृति दे देंगे।"

"इसकी आशा बहुत कम है।"

"तो वे एक व्यक्ति को अपनी अवस्था सुधारने की स्वीकृति नहीं देंगे ?"

'मुझको कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है। सालिगराम लोगों को व्यर्थ की बातें बता-बताकर उत्तेजित कर रहा है और गांव के मूर्ख लोग उसकी बातें सुनकर वाह-वाह कर रहे हैं।"

"यही तो कह रही हूँ कि एक मनुष्य के उन्नति करने के इस प्रयास को इन मूर्खों के हाथ में क्यों दे दिया गया है ?"

सुन्दरसिंह निरुत्तर हो गया। अन्त में उसने कहा, "अब तो बात पंचायत में चली गई है। मैं इसको वापिस नहीं लूँगा। पंचायत के निर्णय के पश्चात् ही हम विचार करेंगे कि हम क्या कर सकते हैं ?"

"मैं चाहती हूँ कि मंगली की सहायता की जाए।"

"मैं अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करूँगा।"

महिन्दर कौर को पंचायत के निर्णय का किंचित् मात्र भी भरोसा नहीं था। वह मन में विचार करती थी कि निर्णय के पश्चात् वह स्वयं मंगली की सहायता करने का यत्न करेगी।

जब से महिन्दर और मास्टर में परस्पर के सम्बन्ध के विषय में समझौता हुआ था तबसे वह मास्टर पर अपना विशेषाधिकार समझती थी और इस अधिकार के अनुरूप वह बात किया करती थी। इसी कारण इस विषय पर उसने मास्टर से अधिकारपूर्वक बात की थी परन्तु वह अपने पिता को वैसा नहीं कह सकी। सुन्दरसिंह इस बात पर डटा रहा कि वह पंचायत के निर्णय का विरोध नहीं करेगा। इस पर महिन्दर कौर ने कहा, "तो फिर मैं स्वयं आकर पंचायत में बात करूँगी।"

"वाहे गुरु ! वाहे गुरु !! महिन्दर ! ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ कि एक औरत पंचायत में आए। यह नहीं हो सकता।"

"परन्तु जब घर के पुरुष ही साहस छोड़ बैठें तो फिर स्त्रियों को मैदान में आना ही पड़ेगा। तुम सब पुरुष एक निःसहाय स्त्री को कुचल

डालना चाहते हो और यह भी चाहते हो कि कोई स्त्री उसकी सहायता को भी न आए, यह कैसे हो सकता है ?"

सुन्दरसिंह घबरा गया। उसने आँखें फाड़कर महिन्दर कौर की ओर देखते हुए कहा, "देखो, महिन्दर ! मैं तुमको पंचायत में आने से मना करता हूं। इसमें मेरी बहुत बदनामी होगी। तुम मास्टर को मेरी ओर से कह दो कि वह मंगली की ओर से बोले "

"उनको कह दिया है ! पर मैं तो यह कहती हूँ कि मंगली को गांव से निकाल देने का अधिकार पंचायत को नहीं है। यदि उसको कोई गांव वाला अपने घर रखने को तैयार हो जाए तो फिर पंचायत क्या कर सकती है। इस कारण चाचा ! मैं कहती हूँ कि मेरा पिता उसको अपनी संरक्षण में रखे। जब वह पेशा करती थी, तब पंचायत उसे निकाल नहीं सकी, तो अब, जब वह नेक बनकर रहना चाहती है, तो पचायत कैसे निकाल सकती है ?"

अगले दिन मध्याह्न के समय दो सौ से ऊपर आदमी चौधरी के घर के सामने मैदान में एकत्रित हो गए। मंगलो पिछले दिन से वहीं बैठी थी। रात भर वह सो नहीं सकी थी और महिन्दर कौर द्वारा दिए भोजन पर ही उसने निर्वाह किया था।

जब सब लोग एकत्रित हो गए, तो चौधरी, जो तख्तपोश पर बैठा था, खड़ा होकर कहने लगा, "भाइयो ! यह कंडेवाल गांव की पंचायत है। ऐसी एक पंचायत आज से बाईस वर्ष पहले हुई थी। तब मेरे पिता जी का देहान्त हुआ था और गांव वाले मुझे चौधरी बनाना चाहते थे। उस समय की पचायत में उपस्थित लोगों में से कई आज भी यहां बैठे हैं और वे जानते हैं कि उस दिन पंचायत में बैठने को किन-किन को स्वीकृति मिली थी।

"मैं समझता हूँ कि मुझको उसी विधि के अनुसार आज भी पंचायत बैठानी चाहिए। गांव की पंचायत में कोई भी बालक, जिसकी आयु बीस वर्ष से कम है, नहीं बैठ सकता। दूसरे गांव में जो कम-से-कम छः मास से रह रहा है, वही इस पंचायत में बैठ सकता है। जो इन शर्तों को पूरा नहीं करता वह अपने आप उठकर इधर मेरे तख्तपोश के पीछे आ जाए।"

चालीस-पचास बच्चे और ऐसे लोग, जो केवल तमाशा देखने आए थे, उठकर तख्तपोश के पीछे चले गए।

इस पर सालिगराम ने उठकर कहा, "चौधरी ! मेरी यह राय है कि इस पंचायत में राय वे ही दें जो गांव में भूमिपति हैं।

जिनके पास एक बिस्वा भी खेत नहीं, उनको पंचायत से निकल जाना चाहिए।"

चौधरी का कहना था, "लाला सालिगराम की यह सम्मति मैं नहीं मान सकता। कारण यह कि गांव में ज़मींदार तो केवल पच्चीस-छब्बीस ही हैं। डेढ़ सौ के लगभग कामे हैं और पांच दुकानदार हैं। दो पुरोहित हैं और एक स्कूल मास्टर है। पच्चीस ज़मींदारों के अतिरिक्त जो डेढ़ सौ से ऊपर लोग रहते हैं, वे भी तो परिवार और बहू-बेटियां रखते हैं। यहां पर जो निर्णय होगा उसका प्रभाव उन पर भी तो होगा।"

"खेतों के झगड़ों में ज़मींदारों की पंचायत बुलाई जा सकती थी परन्तु यह तो पूर्ण गांव का झगड़ा है। इसमें ज़मींदार और दूसरे लोग अलग-अलग नहीं किए जा सकते। इस कारण पंचायत में सभी बैठेंगे।"

इस पर सालिगराम ने कहा, "गांव में जिन लोगों का अपना मकान नहीं, उनको पंचायत से उठा दिया जाए।"

"मैं पूछता हूं कि मंगली को गांव से क्या इसलिए निकाला जा रहा है कि उसका कोई मकान नहीं अथवा इसमें यह कारण है कि उसका चरित्र ठीक नहीं। क्या चरित्र का ठेका मकान मालिकों ने और ज़मींदारों ने ही ले रखा है? ब्राह्मण प्रायः गरीब होते हैं, परन्तु वे हमारे पूज्य हैं। मैं आज्ञा देता हूं कि जो भी आदमी, जिसकी आयु बीस वर्ष से ऊपर है और जो गांव में छः मास से अधिक काल से रह रहा है, वह पंचायत में बैठ सकता है।"

इस पर सालिगराम ने नाराज़ होकर कहा, "चौधरी! यह तुम बहुत ही हिमाकत की बात कर रहे हो। गांव वालों के मामले में गांव से बाहर के लोगों को भी राय देने का अधिकार देकर तुम हमारा अपमान कर रहे हो।"

"मेरी यही राय है और मैं इसी को ठीक समझता हूं। यदि आप लोगों को मेरी यह राय पसन्द नहीं तो मैं चौधरीपन छोड़ता हूं। बताओ लाला सालिगराम! क्या तुम चाहते हो कि पहिले मैं अपने चौधरीपन पर राय लूं?"

"ले लो।"

इस पर लोगों ने कहा, "नहीं नहीं! चौधरी रहेगा। आज इस बात पर राय नहीं की जाएगी।"

सालिगराम का विचार था कि मंगली के विषय में गांव वाले

उसके साथ हैं और यदि उसने चौधरी के चौधरीपन पर ज़ोर दिया तो लोग मंगली के विषय में भी उसके विरुद्ध हो जाएंगे। इस कारण वह कहने लगा, "चौधरी के विरुद्ध मैं अपनी बात वापिस लेता हूँ। मैं चाहता हूँ कि चौधरी आगे काम चलाए।"

इस पर चौधरी ने पंचायत का काम आरम्भ किया। उसने लोगों को पंचायत बुलाने का कारण बताया। उसने कहा, "कुछ महीने से हमारे गाँव में एक वेश्या आकर रहने लगी। उसका आश्रय लेकर गाँव के कुछ लोगों ने मास्टर जगतराम पर फौजदारी की। उसको मार डालने का यत्न किया, परन्तु वह बच गया और उसको मारने वाले पकड़ लिए गये। उन पर पुलिस ने मुकदमा चलाया और हाईकोर्ट ने पांधा सन्तराम को पाँच वर्ष की और अन्य मुलज़िमों को चार-चार वर्ष की सख्त सज़ा की आज्ञा दी।

"मंगली ने कचहरी में अपने बयान दिए जो हाईकोर्ट ने भी ठीक माने हैं और उनमें उसने कहा कि वह पेशा करने पर विवश की गई थी।

"आज वह औरत हमारे गाँव में रहना चाहती है और उसका कहना है कि वह अब ईमानदारी का नेक जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह मेरे पास यहाँ रह सकने की स्वीकृति माँगने आई है। मैं यह उचित समझता हूँ कि इसमें आप सबकी राय भी ले लूँ। क्या आपको इसके यहाँ रहने में कोई आपत्ति है ?

चौधरी के कह चुकने पर सालिगराम ने कहा, "मुझको उसके यहाँ रहने में आपत्ति है। मेरा प्रस्ताव है कि इस औरत को यहाँ रहने न दिया जाए।"

इस समय बहुत से लोग बोल उठे, "उसको यहाँ न रहने दिया जाए।"

इस पर चौधरी ने पूछा, "कोई कुछ और कहना चाहता है ?"

मास्टर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, "चौधरी जी ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ।"

"कहिए मास्टर जी !"

"यह औरत यहाँ रहकर अपना जीवन सुधारने का अवसर चाहती है।"

"नहीं नहीं !" सालिगराम बीच में बोल उठा।

मास्टर ने अपना कहना जारी रखा, "यह बात सब गांव वाले जानते हैं कि कल सरदार रत्नसिंह से मंगली का झगड़ा हुआ था।

रत्नसिंह मंगली के घर गया था और घर का दरवाज़ा खटखटाकर, उसको घर से बाहर बुलाकर बीसियों गाँव वालों के सामने, मंगली को, यदि वह गाँव से चली नहीं जाती, तो मार डालने की धमकी दे रहा था। मंगली उससे डरकर चौधरी के पास रक्षा के लिए आई है। कचहरी ने रत्नसिंह के लड़के को फौजदारी करने पर चार वर्ष का दंड दिया है और अब रत्नसिंह एक और फौजदारी करने आया है। इसका मतलब यह निकलता है कि गांव में कौन रहे और कौन न रहे इसका निर्णय रत्नसिंह और उसके परिवार के लोग ही करेंगे। जब तो रत्नसिंह का लड़का मंगली से दुराचार करता था और उससे पेशा कराता था, तब तो सालिगराम उसके विपरीत नहीं था और गांव से निकालने के लिए नहीं कहता था और अब यह नेक बनकर रहना चाहती है, तो लाला सालिगराम को आपत्ति हो गई। मैं समझता हूं कि सालिगराम बताए कि जब उससे बदकारी कराई जाती थी, तब तो उसको गाँव से निकालने की बात नहीं की। क्या वह नेक औरतों के विरुद्ध है ?

"मेरा कहना है कि अब वह नेक बनकर रहना चाहती है तो उसको नेक बनने में हमको सहायता करनी चाहिए।

"साथ ही अब उसको निकाल देने के अर्थ यह होंगे कि गांव वाले एक गुण्डे से डरकर इस औरत को गाँव से निकाल रहे हैं। इससे रत्नसिंह और अन्य ऐसे ही लोगों की सम्मति से लोगों को निकालने पर तैयार होंगे। इससे तो रत्नसिंह और ऐसे ही अन्य आदमियों के हौसले और भी बढ़ जाएँगे और वे किसी को भी गांव से निकालने की बात करने लग जाएँगे। मेरी प्रार्थना है कि मंगली को अपने को सुधारने का अवसर देना चाहिए।"

किसी ने ऊंची आवाज़ में कह दिया, "वह किसी नगर में चली जाए और गाँव को खराब न करे।"

इस पर मास्टर, जो अभी तक खड़ा था, "कहने लगा, यदि वह अपना जीवन सुधार ले तो फिर क्या खराबी हो सकती है ?"

अब सालिगराम मास्टर के उत्तर में कहने लगा, "हम नहीं चाहते कि गाँव में ऐसी कोई औरत रहे। उसके यहाँ रहने से हमारी बहू-बेटियों के मन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार की बदकारी गांव में फैलने हम नहीं देना चाहते। हम नहीं चाहते कि यह औरत यहाँ रहे।

"आज मास्टर जी को इस प्रकार की औरत की हिमायत में बोलते देख मुझको शक होता है कि मंगली और मास्टर जी का घना सम्बन्ध पहले भी था और अब भी है। मैं मास्टर से यह कहता हूं कि उसको

यदि मंगली से हमदर्दी है तो वह उससे विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

"बात यह प्रतीत होती है कि मास्टर गुलछर्रे भी उड़ाना चाहता है और बदनाम भी नहीं होना चाहता। दूसरों को गुण्डा कहना आसान है, पर जब गुण्डों के हाथ लगेंगे तो नानी याद आ जाएगी।

"गांव के भाइयो ! हम न तो मंगली को यहां रहने देना चाहते हैं और न ही मास्टर को। इन दोनों ने यहां गन्दगी फैला रखी है। बोलो भाइयो, हम इन दोनों को गांव से निकालकर ही दम लेंगे।"

"जब सालिगराम कह चुका तो एक ने नारा लगा दिया, "लाला सालिगराम।"

बहुत से लोग चिल्ला उठे, "ज़िन्दाबाद।"

दूसरी बार फिर नारा लगाया गया और नारा लगाने वालों की संख्या पहिले से अधिक हो गई। तीसरी बार नारा लगा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि सारा गांव उसके साथ है।

अब चौधरी ने हाथ खड़ा कर सबको चुप कराया और कहा, "तो मैं राय लेता हूं। वे लोग हाथ खड़ा करें जो मंगली को गांव में नहीं रहने देना चाहते।"

पूर्व इसके कि लोग हाथ खड़ा करें, सालिगराम ने उठकर कहा, "मेरा प्रस्ताव अब यह है कि मास्टर और मंगली, दोनों के लिए यही राय ली जाए।"

चौधरी ने कहा, "तनिक सोच लो। ये लोग ठीक नहीं कह रहे। मास्टर पिछले सात वर्षों से तुम्हारे बच्चों को बिना फीस लिए पढ़ाता आ रहा है।"

"और हमारे चौधरी की लड़की को खराब कर रहा है।" सालिगराम ने खड़े-खड़े कह दिया।

"यह झूठ है।" चौधरी ने तीव्र स्वर में कहा।

"बिल्कुल सच है। मैं बहुत बातें जानता हूं। गांव के सब लोग जानते हैं कि पच्चीस वर्ष की युवा विधवा एक अविवाहित युवा पुरुष की महीनों ही सेवा कर कैसे पाक साफ़ रह सकती है ?"

"तो तुम सब लोग यह चाहते हो ?"

"हां !" सालिगराम ने ऊंची आवाज़ में कह दिया। इस पर लोग फिर "सालिगराम ज़िन्दाबाद" के नारे लगाने लगे।

चौधरी ने अब खड़े होकर कहा, "मैं मंगली से कहना चाहता हूं कि उसकी अर्ज़ी पंचायत ने स्वीकार नहीं की। मैं पंचायत विसर्जन करता हूं।

गाँव भर के लोग सालिगराम ज़िन्दाबाद के नारे लगाते हुए चले गए। उनमें से तो कई मंगली पर, जो चौधरी के घर के सामने ही बैठी थी, थूकते हुए निकले। मंगली अपना मुख आंचल से ढांपे, और घुटनों में दिए हुए रो रही थी। उसके पास अब महिन्दर भी खड़ी थी।

महिन्दर ने पंचायत की पूरी कार्यवाही सुनी थी और अपने विषय में सालिगराम का लांछन सुन क्रोध में पागल हो रही थी। इस नई परिस्थिति में वह अपना कर्त्तव्य नहीं विचार सकी।

जब सालिगराम और उसके साथी चले गए तो दस-पन्द्रह गाँव वाले इस नाटक के अगले भाग को देखने के लिए खड़े हो गए। वे प्रायः कामे थे। इनमें केवल दो ही भूमिपति थे। एक भूपति था और दूसरा नरेन्द्रसिंह। नरेन्द्रसिंह ने भूपति से कहा, "दादा! यह तो ठीक नहीं हुआ।"

"मैं तो इसके हक में नहीं था, परन्तु गाँव के लोग प्रायः सालिगराम के पक्ष में थे।"

"चौधरी अब क्या करेगा? उसकी लड़की की भी तो निन्दा की गई है?"

"वह मंगली के पास जो खड़ी थी।"

"वह खड़ी तो इसलिए थी कि एक ओर तो सारा गांव था और दूसरी ओर वह अकेली वेचारी थी।"

"कुछ भी हो। चौधरी की बहुत बदनामी हुई है।"

एक कामे ने कह दिया, "मालिक! यह सालिगराम तो गुण्डा है। इसके डर के मारे गांव वालों ने राय दी है।"

नरेन्द्र ने कहा, "मैं तो समझता हूँ कि मंगली या तो गांव छोड़ जाएगी नहीं तो ये लोग उसको मार डालेंगे। चौधरी की लड़की तो अब फाँसी लगा लटक जाएगी।"

भूपति ने कहा, "चौधरी के पास चलकर पूछना चाहिए कि वह क्या कर रहा है?"

"क्या लाभ होगा इससे? यदि हम उसकी सहायता करने को तैयार हैं तब तो जाने के अर्थ हैं अन्यथा वेकार उसको तंग करने में कोई लाभ नहीं।"

नरेन्द्र और भूपति अभी बातें कर ही रहे थे कि कामे चौधरी के

पास जा खड़े हो गये। चौधरी अभी तक गंभीर विचार में मग्न तख्त-पोश पर बैठा हुआ था। एक कामे ने कह दिया, "चौधरी! यह तो बड़ा जुल्म हो गया है।"

जगतराम भी वहीं पास ही खड़ा था। एक अन्य कामे ने उसे देखते हुए कह दिया, "अब तो पुलिस में रिपोर्ट लिखा देनी चाहिए।"

"नहीं भाई! इससे कुछ लाभ नहीं होगा। एक बात तो तय है कि अब मैं गांव में चौधरी नहीं रहा। गांव वालों का मुझ पर कोई विश्वास नहीं रहा।"

जगतराम ने कहा, "चौधरी! तुम ठीक कहते हो। ऐसी अवस्था में इस पदवी पर चिपटे रहना ठीक नहीं।"

सोहनलाल महिन्दर और मंगली के पास खड़ा था। उसने मंगली से पूछा, "मंगली! अब क्या करेगी?"

मंगली ने कुछ उत्तर नहीं दिया। महिन्दर कौर उसको उठाकर चौधरी के पास ले गई और चौधरी से पूछने लगी, "चाचा! अब यह क्या करे?"

"मैं क्या बता सकता हूं। मुझको तो कुछ सूझ नहीं रहा।"

"मैं समझती हूं कि यह हमारे घर पर ही रह जाए। पांधे के घर पर तो लोग इसको मार डालेंगे।"

"हम बदनाम हो जाएंगे बेटी! यह तो ठीक नहीं प्रतीत होता।"

"बदनाम तो हो ही गए हैं। सालिगराम ने कह दिया और लोगों ने उसकी जय बोल दी है।"

"वह बदनामी तो समय पाकर धुल जाएगी पर इसको घर में रखने से तो बहुत गड़बड़ हो सकती है।"

इस पर मंगली ने चौधरी के मुख पर देखते हुए कहा, "चौधरी! तुम चिन्ता न करो। मैं यहां से चली जाऊंगी। कदाचित् कल ही। मैं अब इस गांव में रहने की रुचि भी नहीं रखती। मैं बहिन महिन्दर की सहानुभूति का बदला नहीं दे सकती। भगवान इसका फल देगा।"

इतना कह वह वहां से चल दी। उन्होंने देखा कि वह पांधा सन्त-राम के घर की ओर जा रही है।

सोहनलाल ने अपने पिता से कहा, "यह मार डाली जाएगी।"

"इससे इसका भला ही होगा। इसका पिछला जीवन भूत बन इसको तंग करता रहेगा, और यह चित्त की शान्ति कहीं भी नहीं पा सकती।"

अब मास्टर कहने लगा, "चाचा! मैं यहां से चला जाऊंगा। अब

इस गाँव में मुझको कुछ काम नहीं रहा।"

"ठीक है। जहाँ मान-मर्यादा सुरक्षित नहीं, वहाँ रहने में कुछ लाभ नहीं। हमारी बात तुमसे अधिक कठिन है। हमारी इस गाँव में जड़ लग रही है। एक पेड़ की भाँति जड़ उखड़ जाने से हम सूख जाएंगे। इसपर भी विचार करता हूं कि यहाँ आँधी इतने वेग से चल रही है कि पेड़ टूटकर गिर रहा प्रतीत हो रहा है।"

इस समय नरेन्द्रसिंह और भूपति इनके पास आकर खड़े हो गए। नरेन्द्रसिंह ने कहा, "चौधरी! दुष्टों का संगठन बन गया है और यह संगठन गाँव के भले व्यक्तियों को बहाकर विनाश की ओर ले जा रहा है। यह वार केवल गांव के चौधरी और निस्सहाय औरतों पर ही नहीं हुआ, परन्तु गाँव के सब भले आदमियों पर हुआ है।"

"ठीक है।" सोहनलाल ने कहा, "पर ऐसा अनुभव करने वाले भले लोग हैं कितने? आटे में नमक भी नहीं।"

इस पर भूपति ने विचार उपस्थित कर दिया, "सोहन भैया! यदि हम थोड़े से भी एकत्रित हो जाएं तो अन्य हमारे साथ आ मिलेंगे।"

"इकट्ठे होकर करेंगे क्या?" सुन्दरसिंह ने पूछ लिया।

"अपनी रक्षा। चौधरी! तुम हमारी पीठ पर हाथ रखो, तो मैं गाँव में से पचास ऐसे व्यक्ति इकट्ठे कर सकता हूँ, जो सुख-दुःख में साथ दें। इस सालिगराम को तो मज़ा चखाना ही पड़ेगा।"

"लाला बेचारा क्या है? यह बदमाशी तो रत्नसिंह की है। वह स्वयं तो पंचायत में आया नहीं और इस लाला को आगे कर गाँव की बहू-बेटियों की इज़्ज़त उछालने लगा है।"

"चौधरी!" भूपति का सुझाव था, "कल कुछ अपने लोगों की पंचायत बुलाओ और गाँव में दो पंचायतें बन जाएंगी।"

"यह मैं तब ही कर सकता हूँ जब मैं पूर्ण गाँव के चौधरीपन को छोड़ दूं।"

"तो छोड़ दो। आज निन्दा के पश्चात् चौधरी बने रहना ठीक भी तो नहीं।"

"यह पंचायत बुलाकर ही हो सकेगा।"

"बुला लो न।"

"एक-दो दिन में बुलाऊंगा।"

"तब तक तो मंगली चली जाएगी।"

"मेरे चौधरीपन छोड़ने अथवा एक छोटी पंचायत बनाने से उसके रहने अथवा जाने में कोई सम्बन्ध नहीं।"

भूपति और नरेन्द्र गए तो कामे भी, जो चौधरी से सहानुभूति प्रकट करने आए हुए थे, चले गए। पीछे रह गए मास्टर जगतराम और सोहनलाल। महिन्दर कौर भीतर चली गई थी। ये तीनों तख्तपोश पर बैठकर अपने भविष्य पर विचार करने लगे। चौधरी का कहना था, "अब इस गाँव में वह होकर रहेगा, जो पिछले चालीस वर्ष से नहीं हुआ था। झगड़ा होगा, दंगा होगा, लोग घायल होंगे, मर जायेंगे। पुलिस वालों के हाथ रंगे जाएँगे, ज़मीनें बिकेंगी और ज़मींदार भूखे रहेंगे।"

मास्टर ने अपने मन में उठती हुई बात कह दी। उसने कहा, "चाचा! अब स्कूल तो चल नहीं सकेगा। लँगड़ा लुंजा चला भी तो मेरी पढ़ाने में रुचि नहीं रही। मैं चाहता हूँ कि मैं कल प्रातःकाल ही यहाँ से चला जाऊँ।"

"कहाँ जाओगे?"

"अमृतसर, और वहाँ से अपने गाँव को।"

"वहाँ क्या होगा?"

"यह वहाँ जाकर देखूंगा। कदाचित् अपनी जड़ वहाँ जाकर कायम करना चाहूंगा। या तो वहाँ भूमि लूंगा अन्यथा कोई व्यवसाय करूँगा। यहाँ तो सात वर्ष की स्कूल की मास्टरी करने पर भी कुछ नहीं बना।"

चौधरी जानता था कि मास्टर का भारी अपमान किया गया है। साथ ही चौधरी का विचार था कि गाँव वाले अपने चौधरी की हिमायत तो कर सकते हैं, पर वे मास्टर के लिए लड़ने मरने के लिए तैयार नहीं हो सकेंगे।

वह यह भी समझता था कि मंगली से सम्बन्ध रखने से कदाचित् कोई गाँव वाला उससे सम्पर्क नहीं रखेगा। मास्टर के विषय में भी उसका वैसा ही विचार था। इस कारण उसने कह दिया, "ठीक है। मैं आपको यहाँ ठहरने के लिए नहीं कह सकता। मेरी गाँव में पहिली जैसी स्थिति नहीं है। पहिले मैं अनुभव करता था कि मुझमें आत्मरक्षा करने की सामर्थ्य है। अब मैं अपने को असमर्थ पाता हूं। इस कारण तुम शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से चले जाओ।"

इस प्रकार मास्टर का जाना निश्चित हो गया। मास्टर भीतर कमरे में गया तो महिन्दर कौर वहाँ पर उसका बिस्तर और सामान इकट्ठा कर रही थी। जगतराम ने उससे पूछा, "यह क्या कर रही हो महिन्दर?"

"आपका सामान बाँध रही हूँ।

"क्यों?"

"आप जा रहे हैं न, यहाँ से।"

"हाँ, पर यह सामान नहीं जा रहा।"

"क्यों ?"

"यह मेरा नहीं है। मैं यहाँ फटे कपड़ों में आया था और उसी प्रकार जाऊँगा। पर अभी तो मैं नदी तट पर पूजा आदि के लिए जा रहा हूं। रात यहाँ रहूँगा। कल दिन के आठ बजे के पश्चात् यहाँ से चलूंगा।"

"मैं तो चाहती थी कि रात की गाड़ी से ही चल दिया जाए। यह बहुत अच्छा रहता, इस पर भी जैसी आपकी इच्छा।"

"गाड़ी पर जाने के लिए मेरे पास टिकट के दाम नहीं हैं। मैं तो पैदल जाना चाहता हूँ।"

"टिकट का दाम चाचा देंगे।"

"क्यों ? मैं अब यहाँ से कुछ नहीं ले जाना चाहता।"

"जैसी इच्छा। मैं इसमें आपको कुछ नहीं कहूँगी।"

मास्टर ने देखा कि महिन्दर की आंखें डबडबा आई हैं। इस पर भी वह शान्त भाव में बिस्तर के पास, जो बाँधा जा रहा था, बैठी हुई थी।

मास्टर ने कहा, "इस सबको बाँधने की आवश्यकता नहीं है।" इतना कह वह नदी की ओर चला गया।

तृतीय परिच्छेद

: १ :

मोहनसिंह चौबीस सौ रुपया अपने सलूके की अन्दर की जेब में रखे हुए दिल्ली की गाड़ी में सवार हो गया। पैसेंजर गाड़ी थी और छोटे बड़े सभी स्टेशनों पर ठहरती हुई जा रही थी। बारह बजे दिन की चली हुई गाड़ी अगले दिन सवेरे दस बजे दिल्ली के स्टेशन पर जा पहुंची। मार्ग में मोहन ने न तो किसी से दिल्ली के विषय में जानने का यत्न किया और न ही किसी ने उससे पूछा कि वह कहां जा रहा है। छः फुट लम्बे सिख जवान को हाथ में इतनी ही लम्बी लाठी लिए देख, सभी लोग उसके विषय में मौन रहने में ही कल्याण समझते थे।

दिल्ली स्टेशन पर पहुंच उसको किसी से पूछने की आवश्यकता न

हुई। उसने स्टेशन बाबू को टिकट दिया और बाहर निकल आया। बाहर एक टाँगवाले ने उसने पूछा—"यहाँ सराय किधर है ?"

टाँगेवाले ने टेढ़ी दृष्टि से मोहन को देखकर भाँप लिया कि पहली बार दिल्ली आया है। उसने कह दिया, "चलो सरदार! मैं टाँगे में ले चलता हूँ।"

"क्या लोगे ?"

"दो रुपये।"

"बहुत दूर है क्या ?"

"सरदार यह दिल्ली है।" टाँगेवाले ने निरर्थक बात कह दी।

"दो रुपये बहुत ज्यादा हैं।"

"तो सरदार क्या दोगे ?"

"मैं क्या जानूं। मुझको क्या मालूम कि कितनी दूर है ?"

"तो बताया तो है दो रुपये लगेंगे।"

"अच्छी बात है। चलो।" मोहनसिंह ने टाँगे पर बैठते हुए कहा।

टाँगेवाले ने टाँगा काश्मीरी गेट की ओर घुमा दिया। काश्मीरी गेट से बाहर निकलक बेला रोड, दिल्ली गेट और वहाँ से नगर दीवार के बाहर-बाहर अजमेरी गेट, हौज़ काज़ी, लाल कुआँ, होता हुआ फतेहपुरी के पास सराय के सामने जा खड़ा हुआ। एक घंटा भर घुमा-कर लाने पर मोहनसिंह को विश्वास हो गया कि दो रुपए का काम तो है ही। उसने जेब में से दो रुपए निकालकर टाँगेवाले को देने के लिए हाथ बढ़ाया तो इतने में समीप से ही इंजन की सीटी बजने का शब्द हुआ। मोहनसिंह ने पूछा, "यह कौन सा स्टेशन है ?"

टाँगेवाले ने उत्तर दिया, "यह स्टेशन सब्जीमण्डी का है। बीकानेर, अजमेर की गाड़ियाँ यहाँ से जाती हैं।"

मोहनसिंह को सन्तोष हो गया। उसने रुपए टाँगेवाले को दिए और सराय के अन्दर चला गया। वहाँ बातचीत कर उसने एक कोठरी ले ली। बाज़ार से ताला ला कोठरी में लगा दिया और कपड़े आदि सामान खरीदने बाज़ार को चल दिया।

इस समय बारह बज रहे थे। बाज़ार में काम-काज ज़ोरों पर था। उसने खेस, चादर, तकिया और कुर्त्ते के लिए कपड़ा, कछेरे, तहमतें और पगड़ियाँ खरीद लीं। कपड़े सीने के लिए एक दर्जी को दे दिए पश्चात् नया जूता और साबुन-तेल लेकर वह सराय लौट आया। दिल्ली में दुगने-तिगुने दाम देना एक परदेशी के लिए मामूली बात है। यह खर्च कर उसे शोक नहीं हुआ। कारण यह कि गाँव में तो उसको भी

कभी कपड़े खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। वहाँ खद्दर ही पहिना जाता था और खद्दर घर पर काता और बुना जाता था।

स्नानादि से निवृत्त हो, वह भोजन करने बाज़ार को चल पड़ा। हलवाई की दुकान से दो सेर पूड़ी खा और डेढ़ रुपया देकर सराय में आकर सो रहा।

सायंकाल जब वह सराय से निकला तो एक अन्य सिख, जो सराय के बाहर खड़ा था, उसके साथ-साथ चलता हुआ पूछने लगा, "कित्थों आए हो सरदार जी!"

"कंडेवाल, ज़िला जालन्धर का रहने वाला हूँ।"

"सैर करने आए हैं?"

"नहीं जी! कुछ काम-काज करने।"

"क्या काम कर सकते हैं आप?"

इस प्रश्न से मोहनसिंह उसका मुख देखता रह गया। इस पर साथ चलने वाले सरदार ने पूछा, "वहाँ क्या करते थे?"

"हल चलाता था।"

इस पर साथ चलने वाला हँस पड़ा और कहने लगा, "यहाँ खेत तो हैं नहीं और हल चलाने के लिए जगह नहीं। देखो सरदार! मोटर चलानी सीख लो।"

"वह क्या होती है?"

"देखी नहीं? बिना घोड़े के गाड़ियाँ चलती हैं। इन गाड़ियोंको चलाने का काम।"

"हां। पर कैसे सीखा जा सकता है?"

"किसी कम्पनी में चले जाओ। दो-अढ़ाई सौ फीस लेंगे और तीन महीने में काम सिखा देंगे।"

"दो-अढ़ाई सौ रुपया?"

"और क्या? बादमें पचास रुपए की नौकरी भी तो मिलजाएगी।"

"नौकरी? पचास रुपए महीने की?"

"तो और क्या चाहते हो?"

"देखो भाई! कोई ऐसा काम बताओ, जिससे दो-चार वर्षों में लखपती बन जाऊँ।"

साथ चलने वाला सरदार हँस पड़ा। पश्चात् एकाएक खड़ा हो मोहनसिंह का मुख देखता हुआ बोला, "एक मनुष्य की कमाई इतनी नहीं हो सकती। चोरी-डाका अथवा कोई अन्य इसी प्रकार का काम करना चाहते हो तो इतना रुपया मिल सकता है।"

"चोरी-डाका और क्या ?"

"देखो सरदार ! मोटर ड्राईवरी से काम नहीं चलेगा। उसमें पचास रुपए महीना और वह भी चौबीस घंटे की नौकरी करने पर। एक काम है। यदि कर सको तो बताऊं ?"

"क्या ?"

"अलमोड़ा की ओर लड़कियां बहुत खूबसूरत होती हैं। वहां से लड़कियां भगाकर दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता बेची जाती हैं।"

"वाहे गुरु, वाहे गुरु ! ! सरदार जी !"

"एक-दो वर्ष में लखपती होने का तरीका और कोई नहीं।"

"मतलब यह कि तुमको मालूम नहीं।"

"यही समझ लो। कितना पढ़े हो ?"

मोहनसिंह ने कुछ झेंपकर कहा, "गुरुमुखी पढ़-लिख सकता हूं।"

साथी खिलखिलाकर हंस पड़ा। मोहनसिंह उसके मुख पर देखने लगा तो उसने पूछा, "कुछ रुपया-पैसा जेब में है ?"

मोहनसिंह ने सुन रखा था कि दिल्ली में ठग बहुत होते हैं। इस कारण उसने झूठ बोल दिया, "हां, पचास-साठ रुपए हैं।"

"क्या नाम है ?"

"मोहनसिंह।"

"अच्छा देखो, इस बाजार की सैर करो। इसको चांदनी चौक कहते हैं। अब मैं चलता हूं।"

मोहनसिंह के साथ दिल्ली में खुलकर बात करने वाला यह पहला व्यक्ति था। स्वाभाविक रूप में उसने पूछ लिया, "सरदार जी ! आप कहां रहते हैं।"

"क्यों ?"

"आपकी बातें बहुत मजेदार मालूम हुई हैं।"

"पर मैं बातों के अतिरिक्त भी तो कुछ काम करता हूं।" यह कह वह हंस पड़ा।

"क्या काम करते हैं ?"

"जानकर क्या करोगे ?"

"ऐसे ही। करना कुछ नहीं।"

वह साथी हंसता हुआ बिना उत्तर दिए पीछे को लौट पड़ा।

मोहनसिंह को उसकी बातों में कुछ रस मालूम हुआ था। इस पर भी वह उसको रोक नहीं सका। वह एकान्त में बैठकर उसकी बातों पर विचार करना चाहता था। पचास रुपए की नौकरी के लिए वह मन

को तयार नहीं कर सका था। पढ़ा-लिखा था नहीं, और जेब में कुल चौबीस सौ रुपया था। वह विचार करने लगा कि ईमानदार आदमी से वास्ता पड़ जाए तो वह अवश्य कुछ काम विचार कर लेगा।

: २ :

अगले दिन प्रातःकाल उठ स्नानादि कर मोहनसिंह बाजार में भोजन करने चल पड़ा। पिछली रात उसने फव्वारे के पास एक तन्दूरी रोटियों की दुकान देखी थी। उस समय तो उसको भूख नहीं थी क्योंकि शाम को ही उसने डटकर पूड़ियां खाई थीं। आज वह वहां भोजन करने जा पहुंचा। दुकान के भीतर गया तो नौकर ने उसको एक कोने की मेज़ पर बैठा दिया और पूछा, "क्या खाएँगे?"

उसी मेज़ के दूसरी ओर एक और व्यक्ति बैठा था। मोहनसिंह ने उसे देखा तो तुरन्त पहिचान गया। यह कल वाला सरदार ही था, जो उसको सराय के बाहर मिला था और जिसने उसे मोटर ड्राईवरी सीखने को कहा था। मोहनसिंह ने उसे देखकर कहा, "ओह!"

इस पर उस व्यक्ति ने कह दिया, "मालूम होता है कि हम दोनों की दोस्ती होकर रहेगी।"

"दोस्त तो हम पहिले ही बन चुके हैं। मैं आपकी बातों को बहुत पसन्द करता हूं।"

उस व्यक्ति ने नौकर को इशारा किया। नौकर भीतर रोटा लेने चला गया। इस पर मोहनसिंह ने कहा, "मैंने तो इसको बताया ही नहीं कि क्या लाए।"

"मैंने आपके लिए और अपने लिए, दोनों के लिए बता दिया है।"

"ठीक किया है। अब मैं विचार करता हूं कि मोटर ड्रायवरी ही सीख लूं। क्या आप मेरी सहायता कर सकेंगे?"

"मैं यह काम नहीं जानता। मैं आपको एक कम्पनी में ले चलूंगा। वे सिखाने की पेशगी मांगेंगे।"

"कितना लगेगा?"

"यह भी नहीं बता सकता। अभी खाना खाने के बाद चलेंगे। एक-दो दुकानों से पता कर लेंगे। जहां समझ में आवेगा भर्ती हो जाना।"

"सरदार जी! आपका नाम क्या है?"

"धर्मसिंह।"

"कहां रहते हैं?"

"यहीं पिछवाड़े में। एक दिल्ली के सेठने हम लोगोंके लिए कोठरियाँ बना रखी हैं। एक कोठरी का किराया दो रुपए महीना होता है। तुम भी सराय छोड़ दो। वहाँ आठ आना रोज देना पड़ेगा। मतलब पन्द्रह रुपया महीना। इतना किराया मोटर ड्राईवर दे नहीं सकता।"

"तो कोई कोठरी मिल जाएगी वहाँ?"

"हाँ। मेरी कोठरी के बगल में ही एक खाली है। मोटर की दुकानों से होकर वहाँ चलेंगे।"

"धर्मसिंह! मैं तुम्हारा बहुत ही एहसान मानूंगा। बस, मेरी गाड़ी चला दो।"

"गाड़ी चला दूं। कहाँ है तुम्हारी गाड़ी?"

इस समय नौकर दो प्लेट महाप्रसाद और दो-दो रोटी तन्दूरी ले आया। दोनों खाने लगे।

मोहनसिंह ने उसको बताया, "मेरे पास कोई गाड़ी नहीं। मेरा कहने का मतलब तो यह था कि मेरे पास रुपया बहुत कम है। यदि मैं किसी काम-धंधे पर लग जाऊँ, तो मेरी जीवन-गाड़ी चलने लगेगी।"

दोनों चुपचाप खाते रहे। मोहनसिंह मन में विचार कर रहा था कि वाहे गुरु की अपार कृपा है कि उसको एक साथी मिल गया है। उसको वहाँ दुकान पर भोजन करते देख समझ गया कि उसके घर में औरत वगैरह नहीं है। कदाचित् वह अपने घर से अपनी पत्नी को लाया ही नहीं। धर्मसिंह मन में विचार करता था कि अभी-अभी यह देहात से आया है। बिल्कुल सीदा-सादा आदमी है। एक ही दिन इससे चालीस-पचास रुपए ठग लूंगा तो क्या लाभ होगा? कदाचित् इसको पता चल गया और क्रोध में गर्दन पकड़ बैठा, मैं तो मर ही जाऊंगा। धर्मसिंह मोहनसिंह के लम्बे-तगड़े शरीर से अति प्रभावित हुआ था। वह उसको ठगने के स्थान उससे मित्रता करने में लाभ समझने लगा था। वास्तव में इस समय भी उसकी जेब में एक पैसा तक नहीं था और वह ढाबे में इस आशा में आकर बैठा था कि कोई परिचित आकर बैठे तो उससे चार आने मांगकर पेट भरे।

इतने में पिछले दिन वाले हृष्ट-पुष्ट सिख को आते देख प्रसन्न हो उसने नौकर को संकेत कर कहा कि उस सिख को यहाँ इसी मेज पर ले आए।

नौकर ने बैठाया तो उसने अपने और मोहनसिंह, दोनों के लिए आर्डर दिया और उसको बहुत प्रसन्नता हुई जब मोहनसिंह ने उससे सहायता मांगी। उसने सोचा कि यदि कोई विघ्न नहीं पड़ा तो यह गुरु का

प्यारा उसके भारी काम आ सकता है।

मोहनसिंह ने चार रोटियाँ खाईं और दो प्लेट महाप्रसाद की चट कर गया। धर्मसिंह ने एक रोटी और एक प्लेट महाप्रसाद की खाई। जब खा चुके तो नौकर ने दाम बताया, "धर्मसिंह के पाँच आने और मोहनसिंह के बारह आने बने थे। मोहनसिंह ने पाँच रुपए का नोट दिया तो धर्मसिंह ने कह दिया कि दोनों का दाम काट ले।"

मोहनसिंह ने पन्द्रह आने में दोनों की रोटी का काम चलते देख कहा, "यहाँ तो बहुत सस्ता है। कल पूरी खाई थीं, डेढ़ रुपया दिन के खाने का और एक रुपया दस आने रात के खाने का दिया था।"

"ठीक है। वह स्थान हम लोगों के लिए नहीं है।"

दोनों वहाँ से दरियागंज की ओर चल पड़े। फव्वारे के पास गुरुद्वारे के सामने खड़े हो, दोनों ने मस्तक नवाया और आगे बढ़ चले। चलते-चलते मोहन ने कहा, "बहुत बड़ा गुरुद्वारा है?"

"हाँ। यह नौवें बादशाह गुरु महाराज शहीद गुरु तेगबहादुर महाराज का स्थान है। उनको शहीद करने के बाद यहाँ पर उनके शरीर को जनता को दिखाने के लिए रखा गया था।"

मोहनसिंह ने घूमकर पुनः हाथ जोड़ सिर झुका नमस्कार की और फिर चल पड़ा। दोनों दरियागंज जा पहुँचे। उन दिनों दरियागंज सड़क की बाईं ओर मोटर मरम्मत करने के कई कारखाने थे। वे वहाँ ही सबसे पूछने लगे। प्रत्येक कारखाने वाले ने मोटर सिखाने का प्रबन्ध किया हुआ था। इस प्रकार कारखाने वालों को मोटरों की सफाई इत्यादि के लिए आदमी मुफ्त अथवा बहुत कम पर मिल जाते थे। साथ ही मोटर चलाना सिखाने के लिए कुछ रुपया मिल जाता था।

सब दुकानों पर घूमकर और पूछकर एक के साथ फैसला हो गया। एक सौ रुपया मोटर सिखाने का, एक महीने के बाद यदि कुछ काम करने के योग्य हो जाए तो दस रुपया महीने पर फैसला हो गया था।

मोहनसिंह इस फैसले से सन्तुष्ट था। साथ ही साथ यह भी निश्चय हो गया कि मोहनसिंह एक सौ रुपया पांच-छः दिन में दे देगा और काम अगले दिन से ही आरम्भ कर देगा।

इसके पश्चात् वे रेल के स्टेशन के सामने कैथोलिक गिरजाघर के पिछवाड़े में बनी कोठरियों को देखने जा पहुंचे। एक अहाता सा बना था, जिसमें एक मैदान के चारों ओर चालीस के लगभग कोठरियाँ बनी थीं। इनमें कई लोग रहते थे।

अहाते में प्रवेश करते ही एक कमरे में एक चौकीदार रहता था,

जो दिन में मालिक की दुकान पर काम करता था। धर्मसिंह उस चौकीदार के पास पहुंचकर कहने लगा, "यह मेरा भाई एक कोठरी लेना चाहता है।"

"किराया पेशगी देना होगा।" चौकीदार ने कहा।

"हां हां। दिखाओ तो।"

चौकीदार ने एक बड़े से चाबियों के गुच्छे को खूंटी से उतारा और उनको साथ लेकर चल पड़ा। धर्मसिंह ने कहा, "मेरे बगल में एक कोठरी खाली है। वही दे दो।"

"वही दिखाने जा रहा हूं।"

कोठरी का फर्श पक्का था। इस पर भी कोठरी में सील थी। कोई रोशनदान अथवा खिड़की नहीं थी। दरवाजे में से ही उसमें हवा, धूप आदि जा सकती थी। मोहनसिंह ने कोठरी देख कहा, "इससे कहीं अच्छी तो हमारे यहां गाय-भैंस आदि के लिए होती है।"

"सरदार! यह दिल्ली है।"

मोहनसिंह ने एक महीने का किराया पेशगी दे दिया। पश्चात् बाजार से एक चारपाई, एक चटाई और एक लैम्प खरीद लाया। यह सामान कोठरी में रख, सराय जाकर अपना सामान ले आया।

: ३ :

मोहनसिंह अपने रुपए को सुरक्षित रखना चाहता था। इस कारण उसने एक सन्दूक खरीदा। इसमें उसने अपने कपड़े, जो दर्जी ने उसे सी दिए थे, रख, उनके नीचे उसने अपने सारे रुपए रख दिए और सन्दूक को एक मजबूत ताला लगा दिया।

अब तक वह अपने चौबीस सौ रुपयों में से लगभग पचास रुपए व्यय कर चुका था। शेष को वह बहुत ही बचा-बचाकर व्यय करना चाहता था। वैसे तो दिल्ली आकर, यहां की अवस्था देख, तथा कोठरी की हालत देख, अब वह पश्चात्ताप सा करने लगा था। ढाबे की रोटी, जो वह खा आया था, उससे उसे किंचित् मात्र भी सन्तोष नहीं हुआ था। वह अपने घर की लस्सी, दूध, मक्खन को स्मरण करने लगा था।

महाप्रसाद जो उसने खाया था, उसमें मिर्च-मसाला तो ठीक था, परन्तु उसमें एक विचित्र प्रकार के घी की गंध आती थी। यह गंध उसे बिल्कुल पसन्द नहीं थी। घर में तो ताजा घी खाने को मिलता था। स्थान जो उसे रहने को मिला था, इतना गन्दा और छोटा था कि उसकी तुलना

वह घर के जानवर बाँधने के स्थान से भी नहीं कर सकता था। वह समझता था कि दिल्ली में भी बड़े और साफ-सुथरे स्थान होंगे, परन्तु उनका किराया बहुत अधिक होगा और यदि उसने कोई वैसा स्थान किराए पर लेना है, तो उसको बहुत अधिक किराया देना पड़ेगा। इसके लिए उसे काफी अधिक कमाने के योग्य होना चाहिए। यहाँ उसे निराशा अनुभव होने लगती थी। इस पर भी अब दिल्ली से घर वापिस वह नहीं जाना चाहता था। इसमें उसको लज्जा अनुभव होने लगती थी।

सायंकाल हुआ तो उसने मिट्टी के तेल का लैम्प जला लिया। उसने देखा कि अन्य कोठरियों में भी मिट्टी के तेल की छोटी कुप्पियाँ जल रही हैं। इससे उसे अनुमान हो गया कि वहाँ ठहरने वाले सभी निर्धन लोग हैं।

धर्मसिंह अभी तक नहीं आया था। उसकी कोठरी को ताला लगा था। मोहनसिंह सोच रहा था कि वह आजाए तो दोनों भोजन करने चलें। परन्तु वह नहीं आया। विवश वह अकेला उठा और खाना खाने के लिए ढाबे की ओर चल दिया।

धर्मसिंह ढाबे पर पहिले से ही बैठा था। मोहनसिंह उसे देख प्रसन्न हुआ परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी मेज़ पर एक बोतल तथा एक गिलास देख वह ठिठक गया। धर्मसिंह ने उठकर उसका स्वागत किया। मोहनसिंह बैठ तो गया परन्तु विचार करता रहा कि वह खाने के लिए कुछ मँगवाए अथवा न।

धर्मसिंह ने गिलास और बोतल मोहनसिंह के आगे कर दी। नौकर ने एक गिलास लाकर और रख दिया और मुस्कराता हुआ चला गया।

मोहनसिंह ने बोतल और गिलास धर्मसिंह के सामने सरकाते हुए कहा, "मैं नहीं पीता।"

"पीकर देखो। ज़िन्दगी का मज़ा आजाएगा।"

"न भाई! मुझको यह मज़ा नहीं चाहिए।"

"दाम नहीं देने पड़ेंगे। मैंने दे दिए हैं।"

"नहीं मैं नहीं पियूँगा।" इस प्रकार बोतल एक दूसरे की ओर सरकती रही। इस समय नौकर आया और पूछने लगा, "क्या खाएंगे?"

"शिकार। धर्मसिंह ने कहा।"

नौकर दो प्लेटों में सूअर का मांस और दो रोटियाँ रख गया। मोहनसिंह ने जल्दी-जल्दी खाना आरम्भ कर दिया परन्तु धर्मसिंह धीरे-धीरे खाता हुआ अपनी बातें सुनाता जाता था। उसने कहा, मैं अटारी का रहने वाला हूँ। वहाँ मेरी बीबी है और एक बच्चा है। वह लड़ती

थी और मैं उसको पीटता था। वह मुझे पीटती तो मैं उसके बाल नोचता था। हुक···।"

धर्मसिंह को हिचकी आने लगी थी। उसने रोटी का टुकड़ा खाया और शराब में पानी मिलाकर पिया। अब वह फिर कहने लगा, "मैं उसको छोड़ आया हूं। इस बात को पांच वर्ष हो चुके हैं। इसके पश्चात् मैं घर नहीं गया। हुक···।"

"ओ मक्खन!" धर्मसिंह ने नौकर को आवाज़ दी। नौकर आया तो उसने कहा, "आचार लाओ। आज नशा कुछ ज़्यादा चढ़ गया है।"

भोजन समाप्त हुआ। इस समय दोनों का दाम धर्मसिंह ने दिया। मोहनसिंह देना चाहता था परन्तु धर्मसिंह ने देने नहीं दिया। इस समय धर्मसिंह ने सूअर के मांस की चार प्लेटें खाई थीं। मोहन तो दो ही खा सका था। धर्मसिंह ने नौकर को चार आना इनाम भी दिया था। मोहनसिंह विस्मय कर रहा था कि सवेरे तो धर्मसिंह के पास खाने को दाम नहीं था और इस समय वह दानी बना हुआ है।

धर्मसिंह ने कहा, "मोहन भापा! ज़रा मुझकोसहारादेना। आज नशा कुछ ज्यादा हो गया है। बाहर खुली हवा में चलूंगा तो ठीक हो जाएगा।"

मोहनसिंह ने धर्मसिंह को बांह से सहारा देकर उठाया। धर्मसिंह ने बोतल को, जो आधी खाली हो चुकी थी, डाट लगाकर जेब में रख लिया और मोहन का आश्रय लेता हुआ दुकान से बाहर निकल, अहाते में जा पहुंचा। वहां पहुंच मोहनसिंह की कोठरी के सामने रुककर उसने कहा, "भापे! ज़रा अपनी कोठरी का दरवाज़ा खोलो। तुमसे कुछ बात करनी है।"

"सवेरे कर लेंगे। अभी तुम नशे में हो।"

"नहीं, अभी करेंगे। खोलो न दरवाज़ा।"

मोहनसिंह ने कुछ विचार कर दरवाज़ा खोला और भीतर जाकर लैम्प जलाया। धर्मसिंह ने लैम्प को देखकर कहा, "यह तो बहुत बढ़िया है। कितने का लिया है?"

"तीन रुपए का।"

"इसकी रोशनी दिन के समान है।"

मोहनसिंह मुस्कराकर चुप कर रहा। धर्मसिंह मोहनसिंह की खाट पर बैठ गया और उसको अपने पास ही बैठाकर कहने लगा, "मैं तुमको कुछ रखने को दे रहा हूं। कल सुबह ले लूंगा।"

"क्या है?"

"यह लो।" इतना कह धर्मसिंह ने अपनी जेब में से एक बंडल निकालकर उसके हाथ में रख दिया। बण्डल में दस-दस और पाँच-पाँच के कई नोट थे। यह देते हुए धर्मसिंह ने कहा, "इन्हें रख लो। इस समय मैं नशे में हूं और मेरी···।"

यह कहता-कहता रुक गया और मोहनसिंह के मुख पर देखने लगा। मोहनसिंह विस्मय में उसका मुख देख रहा था। उसको न समझते देख धर्मसिंह ने कहा, "एक है। अभी आ रही है। मुझको नशे में देख, यह सब ले जाएगी और कल फिर मैं पैसे के लिए भटकता फिरूँगा।"

'वह तुम्हारी कौन है?"

"दोस्त है। रात भर रहेगी। सुबह चली जाएगी।"

"इनको गिन डालो।"

"भापा! नहीं।" इसको रख लो। लो वह आ गई प्रतीत होती है। मेरी कोठरी का दरवाज़ा खटखटा रही है।"

मोहनसिंह ने नोटों का बण्डल तकिए के नीचे रख दिया। पश्चात् दोनों बाहर आ गए। एक औरत धर्मसिंह की कोठरी का दरवाज़ा खटखटा रही थी। मोहनसिंह ने देखा कि औरत मोटी और शरीर की भद्दी है। वैसे उसका चेहरा अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ता था। उस औरत ने मोहनसिंह को अपनी ओर घूरते देख अपना मुख घुमा लिया। धर्मसिंह हँस पड़ा और दरवाज़ा खोल उस औरत को भीतर ले दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। मोहनसिंह भी अपनी कोठरी में चला गया और धर्मसिंह के विषय में विचार करने लगा। वह सोच रहा था कि इसके पास इतना रुपया कहाँ से आ गया। यही विचार करते-करते वह सो गया। आधी रात के लगभग कोठरी में गर्मी के कारण और हवा बन्द होने के कारण उसकी नींद खुल गई। उसने कोठरी का दरवाज़ा खोला और बाहर आ गया।

धर्मसिंह की कोठरी में झगड़ा हो रहा था। दोनों एक दूसरे को गाली गलोज दे रहे थे। मोहनसिंह पहिले तो कुछ देर तक सुनता रहा और जब भीतर चीजों के पटक-पटक कर फेंकने का शब्द होने लगा तो उसने दरवाजा खटखटा दिया। दरवाजा खुला तो मोहनसिंह ने देखा कि दोनों गुत्थमगुत्था हो रहे हैं। एक ओर मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी।

मोहनसिंह ने दोनों को छुड़ाया। उनको पृथक्-पृथक् कर उसने पूछा, "धर्मसिंह क्या बात है?"

"यह मुझसे रुपया माँगती थी। मैंने कहा कि सुबह तुमसे लेकर

दे दूंगा। पर यह मानी नहीं और गाली देने लगी। मैंने भी गाली दी तो इसने बर्तन उठा-उठाकर फेंकने आरम्भ कर दिए और फिर मुझसे लड़ने लगी।"

मोहनसिंह की हंसी निकल गई। उसने उस औरत से पूछा, "कितना रुपया चाहिए तुमको?"

"पांच रुपया।" उस औरत ने कहा।

"तो इधर आओ। मैं देता हूं।"

"लाओ।"

मोहनसिंह ने कोठरी में जाकर अपनी जेब में से पांच रुपये निकालकर दिए तो उस औरत ने मुस्कराकर और कुछ आंखें मटकाकर ले लिये और शुकरिया कह कोठरी में से बाहर निकल गई।

धर्मसिंह ने कोठरी का दरवाजा बन्द कर लिया। मोहनसिंह ने अपनी खाट बरामदे में कर ली और बाहर ही सो गया।

: ४ :

अगले दिन से मोहनसिंह मोटर के कारखाने में जाकर काम सीखने लगा। वह वहां आठ बजे पहुंचा था। दोपहर को एक बजे वह फव्वारे वाले ढाबे में जा पहुंचा और भोजन कर दो बजे पुनः मोटर कारखाने जा पहुंचा। वहां मिस्त्री उसे मोटर के पुरजों के नाम और काम बताने लगा।

सायंकाल वह कोठरी में आया और स्नान कर कपड़े बदल ढाबे पर जा पहुंचा। वहां धर्मसिंह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। सवेरे मोहनसिंह के जागने के समय धर्मसिंह सो रहा था। जब मोहनसिंह कारखाने गया तब भी धर्मसिंह सो रहा था। उसने उसकी कोठरी का दरवाजा खटखटाया था, परन्तु वह उठा नहीं था।

अब शाम के समय, मोहनसिंह ढाबे पर पहुंचा तो धर्मसिंह उसे संकेत से बुलाकर कहने लगा, "मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

"मैंने कारखाने में काम सीखना शुरू कर दिया है। मालिक सिखाने की फीस मांगता था। मैंने वचन दिया है कि पांच दिन में दे दूंगा। आज घर पर चिट्ठी लिख दी है। आशा तो है जल्दी ही आ जाएगा।"

"तुम मेरे रुपयों में से दे देते। पीछे आते तो उसमें रख देते। देखो भापा! आजकल मुझे अपने कारोबार में बहुत लाभ हो रहा है। कल वाले रुपए तुमने गिने थे?"

"नहीं। वे अभी वैसे ही रखे हैं, जैसे तुमने दिए थे।"

"तो उस औरत को कहां से दिए थे?"

"अपने पास से दिए थे। जब तुम रुपए लोगे तो तुमसे मांग लूंगा।"

"पर मैं तो अपनी आज की कमाई भी तुम्हारे पास रखने वाला हूं।"

"क्यों?"

"मेरी कोठरी सुरक्षित नहीं। फिर वह औरत आ गई तो सब कुछ ले जाएगी।"

"तुम उसको आने ही क्यों देते हो?"

"मेरी उससे मुहब्बत हो गई है।"

"खूब मुहब्बत है। वह कल तुमको जूतों से पीटने वाली मालूम होती थी।"

"उसने शराब पी रखी थी और उसी के नशे में सब कुछ बक रही थी।"

"नहीं धर्मसिंह! वह अच्छी औरत नहीं है।"

"भापा? वह मेरी बीवी तो है नहीं। दोस्त है। साथ ही औरतों से झगड़ा होता है और फिर सुलह हो जाती है। ऐसा पहिले भी कई बार हो चुका है।"

"पर देखो न, इस प्रकार की बाज़ारी औरतों से सम्बन्ध बनाने से तो अच्छा यही है कि तुम अपनी बीवी को बुला लो।"

धर्मसिंह हँस पड़ा और बात बदलकर बोला, "बताओ क्या खाओगे।"

"यहां का खाना मुझको अच्छा नहीं लगता। इस पर भी गुज़ारा तो करना ही है। जो मर्जी हो मंगवा लो।"

आज फिर दाम धर्मसिंह ने दिये। मोहनसिंह ने बहुत कहा, परन्तु धर्मसिंह नहीं माना। कोठरी में पहुंचकर धर्मसिंह ने मोहनसिंह को एक बटुआ, जिसमें बहुत सी चीजें थीं, दिया। उसने लेने से पहिले पूछा, "यह क्या है?"

"यह मेरी आज की कमाई है।"

"कहां से कमाया है?"

"बताऊंगा। अभी तुम इसे रखो। मुझे अभी एक स्थान पर जाना है। फिर किसी दूसरे समय इस विषय पर बात करूंगा।"

इतना कह धर्मसिंह ने बटुए में से एक दस रुपए का नोट निकाल लिया और अपनी कोठरी में ताला लगा बाहर चला गया।

मोहनसिंह ने अपनी कोठरी का दरवाज़ा बन्द कर लिया और

पिछले दिन के नोटों का बण्डल और इस बटुए को सामने रख लिया। बण्डल में चार सौ पचास रुपए थे और एक कागज़ था। कागज़ पर अंग्रेज़ी में कुछ लिखा था। बटुए में तो एक हज़ार एक सौ नब्बे रुपए थे, एक सोने का लौकेट था, कुछ कागज़ थे। एक छोटा सा कार्ड था, जिस पर अंग्रेज़ी में कुछ लिखा था।

मोहनसिंह यह देख घबरा उठा और विचार करने लगा। वह यह तो समझ गया कि यह चोरी का माल है और इस माल को रखकर वह भी चोर बन गया है। वह विचार करनेलगा किइस रुपए का क्या करे। उसे भय लग रहा था कि कदाचित् अभी धर्मसिंह को पकड़ने के लिए पुलिस आ रही है और उसकी भी तलाशी ले लेगी। रुपयों के साथ कागज़ात से चोरी पहिचानी जा सकती है। इससे उसका अपना रुपया भी इस संदेह में कि वह भी चोरी का है, पकड़ा जा सकता है। इससे तो वह भी कैद हो सकता है। इन सब प्रत्याशित परिस्थितियों पर विचार कर वह काँप उठा। वह बार-बार बाहर जाकर देखने लगा कि धर्मसिंह आया है कि नहीं। उसकी कोठरी को ताला लगा था। इससे निराश हो वह अपनी कोठरी में आ गया। कोठरी के अन्दर आकर उसने सबसे पहिले काम यह किया कि नोटों के अतिरिक्त जितने भी कागज़ थे, उनको दियासलाई लगाकर जला दिया। अब दो वस्तुएँ रह गई थीं। एक बटुआ और दूसरा लौकेट। वह इनको भी अपने से दूर करना चाहता था। इस अर्थ वह इन दोनों को अपनी जेब में रख, बाहर निकल, कोठरी को ताला लगा, अहाते के बाहर निकल गया। अहाते से दूर जाकर उसने एक ओर बटुआ और दूसरी ओर लौकेट फेंक दिया। पश्चात् वह अपनी कोठरी में लौट आया।

इस पर भी उसको सन्तोष नहीं हुआ था। उसने धर्मसिंह का सारा रुपया एक कपड़े में बाँध सन्दूक में रख दिया और सन्दूक को ताला लगाकर विचार करने लगा कि अब क्या करे।

प्रातः उठकर उसने देखा कि धर्मसिंह की कोठरी को ताला लगा है। उसने विचार किया कि शायद वह पकड़ लिया गया है और चोरी के रुपयों का पता लगाने के लिए, पुलिस उसको पीट रही है। यदि वह बक गया कि रुपया उसके पास रखा है, तो बहुत जल्दी ही पुलिस उसको पकडने भी आ सकती है। इससे उसको पसीना छूटने लगा। उसने स्नानादि से छुट्टी पा कारखाने के कपड़े पहिने और वाहे गुरु का नाम लेता हुआ काम पर जा पहुंचा। वहाँ जाकर काम में इतना लीन हो गया कि उसे इसका ध्यान ही नहीं रहा। जब दोपहर को खाना खाने

की छुट्टी मिली तो उसे रात की घटना स्मरण हो आई। धर्मसिंह से छुट्टी पाने के लिए उसने मिस्त्री से पूछा, "मिस्त्री साहब! यहां कहीं रहने को सस्ती सी कोठरी मिल सकती है?"

मिस्त्री आश्चर्य में उसका मुख देखने लगा। पश्चात् उसने पूछा, "अब तक कहां रहते रहे हो?"

"फतेहपुरी सराय में।"

"ओह! तो तुम चोरों के अड्डे पर जा पहुंचे हो?"

"तो वह चोरों की जगह है?"

"मेरा यह मतलब नहीं। वहां परदेशी ठहरते हैं और इस कारण उसके चारों ओर चोर चक्कर लगाते रहते हैं।"

मोहनसिंह को स्मरण हो आया कि पहिले दिन, धर्मसिंह भी वहीं पर मिला था। इस पर उसको कंपकंपी हो उठी। उसने कहा, "मिस्त्री साहब! कहीं रहने को जगह दिला दो।"

"मेरे साथ चलना। कटरा बहरामखां में कोई जगह मिल जाएगी।"

मोहनसिंह तो कोठरी छोड़ना चाहता था। इस कारण शाम को छुट्टी कर वह मिस्त्री के साथ कटरा बहरामखां जा पहुंचा। दो-एक घरों में पूछने पर उसे रहने को एक कमरा किराए पर मिल गया। कमरा ऊपर की मंज़िल पर था। खिड़की थी और एक रोशनदान भी था। वह स्थान पहिले वाले स्थान से बहुत अच्छा था, परन्तु सीढ़ियां और गली बहुत ही गन्दी थीं। वास्तव में इस एक घर में बहुत से लोग रहते थे और सीढ़ियां सब की सांझी थीं, इस कारण कोई उन्हें साफ नहीं करवाता था।

मोहनसिंह ने कमरा देख तुरन्त विचार कर लिया कि वह उस कमरे को ले लेगा। इस कमरे का किराया पाँच रुपये मासिक था। मोहनसिंह ने पाँच रुपये पेशगी देकर रसीद ले ली और अपना सामान लाने चल दिया। उसने तुरन्त मकान बदल लिया।

उसका विचार था कि वह चोरी का रुपया धर्मसिंह को वापिस कर दे। इसके लिए प्रतिदिन शाम को वह फव्वारे वाले ढाबे पर जाता रहा और खाना खाकर उसकी कोठरी देख आता। धर्मसिंह नहीं मिला और उसकी कोठरी पर सदैव ताला लगा देखता रहा।

इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गए। एक दिन उसने देखा कि धर्मसिंह की कोठरी खुली है, परन्तु उसमें कोई अन्य किराएदार बैठा है। उसने इस विषय में चौकीदार से कुछ पूछना उचित नहीं समझा।

दो मास के पश्चात् उसको कारखाने से तीस रुपये महीना मिलने लगा। छः महीने में वह एक अच्छा ड्राईवर और कारीगर बन गया और उसे ड्राईवरी का लायसेंस मिल गया। अभी उसे कोई नौकरी नहीं मिली थी, इस कारण वह कारखाने में ही काम करता रहा। वहां से तीस रुपये उसे अभी भी मिल रहे थे।

उसे नौकरी मिलने में एक वर्ष लगा। एक मद्रासी अफसर, जिसकी कोठी तुग़लक रोड पर थी, उसकी मोटर चलाने का काम उसे मिला। वेतन साठ रुपये मासिक था और साथ में तुगलक रोड की कोठी में रहने के लिए, नौकरी वाले घरों में घर था। इस समय उसको घर से आए सवा वर्ष व्यतीत हो चुका था। इस काल में वह लगभग दो सौ रुपये व्यय कर चुका था। धर्मसिंह के डेढ़ हज़ार रुपये अभी तक उसके पास थेब।

जब से उसे साठ रुपए मिलने लगे थे, वह कुछ बचाने भी लगा था। अब वह खाना स्वयं घर पर बनाता था। जिस दिन खाने के समय वह काम पर जाता था, उसको खाने का एक रुपया अतिरिक्त मिल जाता था। इस प्रकार वह लगभग बीस रुपए मासिक बचा लेता था। परन्तु वह तो विचार करता था कि घर से लाखों कमने निकला है।

मिस्टर रंगा अय्यर, जिसके पास वह नौकर था, की कोठी पर, नौकरों के घरों में से एक घर में वह रहता था। घर पक्का और हवादार था। घर के बाहर बरामदा था और पीछे टट्टी तथा गुसल-खाना था। जहां तक रहने का सम्बन्ध था, यह घर बहुत ही साफ और सुथरा था। जहां तक भोजन का सम्बन्ध था, उसको गांव जैसा भोजन तो नहीं मिलता था, बहुत परिश्रम करने पर भी वह केवली जैसी रोटी नहीं बना पाता था। इसके अतिरिक्त घी, दूध, लस्सी, मक्खन उसे गांव में बहुत मिलता था और यहां तो उसका प्रश्न ही नहीं था। इसके लिए वह वास्तव में बहुत ही तरसता था।

यह ठीक था कि सप्ताह में एक-आध बार वह सिनेमा देख आता था। कभी कोई सरकस नगर में आता तो वह भी देख आता। गाना सुनने का उसे शौक था, परन्तु गाने वाली औरतें प्रायः पेशावर वेश्याएँ होती थीं। उनसे उसको घृणा थी। हां, कभी गुरुद्वारे पहुंच जाता तो उसको शान्ति मिलती।

वह कभी-कभी विचार करता था कि उसको नगर में आने का क्या लाभ हुआ ? इस विचार से वह सदैव उदास हो जाता था। इतने काल

तक अपनी पत्नी से पृथक् रहने के कारण अब उसकी याद उसका सताने लगी थी। कभी-कभी उसके पिता का कहना कि वह भी एकनया विवाह कर ले, उसको कष्ट देने लगता था।

किसी-किसी दिन तो वह इतना उदास हो जाता था कि सब कुछ छोड़-छाड़कर घर वापिस भाग जाने को उतावला हो जाता था। यदि कोई वस्तु उसके मस्तिष्क को शान्ति पहुंचाती थी, तो वह रंगा अय्यर की पत्नी लक्ष्मीदेवी का व्यवहार था। वह इस लम्बे छः फुट के हृष्ट-पुष्ट युवक को, अपने घर से दूर आकर नौकरी करते देख सहानुभूति रखने लगी थी। जाड़े के मौसम में साहब का कोट तथा कुछ अन्य कपड़े उसने दे दिए थे। कभी घर में दावत आदि होती तो फल अथवा मिठाई उसे अवश्य मिलती और अन्य नौकरों से अधिक मिलती।

रंगा अय्यर की लड़की तारा थी, जो कालेज पढ़ने जाया करती थी। मोहनसिंह प्रायः उसे कालेज छोड़ने जाता था और छुट्टी होने पर कालेज से लाने चला जाता था। तारा का व्यवहार भी उससे बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण था। इन दोनों के व्यवहार के कारण ही उसका जीवन सुगम तथा रसमय बना हुआ था, अन्यथा अब उसे घर से भाग आने में पश्चात्ताप ही होने लगा था।

। ५ ।

एक दिन मिस्टर रंगा अय्यर और उसकी पत्नी दोनों ने एक मित्र के घर जाना था। मिस्टर रंगा को अपने अफसर से मार्ग में मिलना था वह अपने अफसर से मिलने गया तो लक्ष्मीदेवी बाहर मोटर में ही बैठी रही। मिस्टर रंगा को भीतर कुछ विलम्ब हो गया। लक्ष्मी जब बैठे-बैठे थक गई तो उसने मोहनसिंह से पूछ लिया, "ड्राईवर ! यहां से तुम्हारा घर कितनी दूर है ?"

"सरकार ! अढ़ाई सौ मील के लगभग।"

"बस ? देखो, हम मालाबार के रहने वाले हैं। यहां से दो हजार मील का रास्ता है। फर्स्टक्लासका किराया चार सौ रुपया एक आदमी का एक तरफ का लगता है। हम स्वयं वहां से साहब के पास रहने चले आए हैं। तुम्हारी बीवी नहीं आ सकती क्या ?"

"नहीं सरकार !"

"क्यों ?"

मोहनसिंह कुछ देर तक विचार करता रहा कि वह क्या बताए।

विचार करने पर उसने बात बनाकर बतानी उचित समझी। उसने कहा, "हजूर ! वह आना नहीं चाहती। गांव में जो कुछ खाने को मिलता है, वह यहाँ दो सौ रुपयों में भी नहीं मिल सकता।"

"ओह ! क्या मिलता है वहां ?"

"दूध, दही, घी, मक्खन, लस्सी......।"

मोहनसिंह इतना कहकर चुप कर गया। लक्ष्मीदेवी ने कहा, "कभी हमको अपने गांव ले चलो न। हम तुम्हारी बहू को देखेंगे।"

मोहनसिंह गम्भीर विचार में मग्न हो गया। वह कह नहीं सका कि चलिए। लक्ष्मीदेवी ने उसे चुप देख पूछा, "क्यों क्या बात है ?"

"कुछ नहीं।" इतना कहते-कहते उसकी आंखें भीग गई। वह मोटर में अपनी अगली सीट पर बैठा था और लक्ष्मीदेवी पीछे की सीट पर बैठी थी। इस कारण वह मुख घुमाकर बातें कर रहा था। जब उसको घर का और पत्नी का स्मरण हुआ तो उसकी आंखों में आंसू भर आये। वह चुप कर गया और फिर गाड़ी से उतर बाहर लान में चला गया। लान में घूमकर वह अपने चित्त को स्थिर करने लगा।

जब मिस्टर रंगा अय्यर आया तो वह भी मोटर में लौट आया और अपनी सीट पर बैठकर उसने मोटर स्टार्ट कर दी।

लक्ष्मी ने अपने पति से मोहनसिंह से हुई बातचीत बता दी। इससे रंगा अय्यर के मन में भी उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गई।

एक रविवार के दिन, जब रंगा अय्यर कोठी के लान में बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था, तो उसको मोहनसिंह के विषय का स्मरण हो आया। मोहनसिंह इस समय मोटर गैरेज की छत पर बैठा गन्ना चूस रहा था। रंगा अय्यर ने उसको देखा तो उसके मन में उसके विषय में और अधिक जानने की इच्छा हो आई। उसने उसको बुला भेजा। जब मोहनसिंह आया तो उसने उसे सामने लान में बैठाकर पूछा, "मोहनसिंह ! एक दिन तारा की मां ने तुमसे तुम्हारी बहू और घर के विषय में पूछा था और तुम रोने लग गए थे तुम अपने घर जाना चाहते हो ?"

"नहीं सरकार !"

"तुम्हारा चित्त अपनी बीवी और बच्चों से मिलने को नहीं करता ?"

"करता तो है सरकार !"

"तो तुमको हम छुट्टी देंगे, एक महीने के वेतन सहित। और अगर तुम अपनी बीवी और बच्चों को साथ ले आओगे तो तुम्हारी तरक्की कर देंगे।"

"साहब ! यह बात नहीं। मेरे पास इतना पैसा है कि मैं जाना चाहूं तो नौकरी छोड़कर भी जा सकता हूं। हमारा गांव में भी बहुत रुपया है। हमारी सौ बीघा भूमि है और हज़ारों रुपयेसालाना हम बचा लेते हैं। इस पर भी मैं अब गांव नहीं जाना चाहता। गांव से आते समय मैंने एक निश्चय किया था, वह अभी तक पूरा नहीं हुआ। जब होगा तब घर जाऊँगा। नहीं तो घर का और बाल-बच्चों का मुख नहीं देखूंगा।"

"क्या निश्चय किया था ?"

मोहनसिंह कुछ विचार कर कहने लगा, "सरकार ! मेरे लिए यह साठ रुपया कोई आकर्षण नहीं। मैं घर छोड़कर दिल्ली लखपती बनने आया था। यहां ईमानदारी से इतना रुपया कमाने का कोई साधन नहीं मिला। मैं अभी तक वैसा साधन ढूंढ़ रहा हूं। जब मिल गया तो इतना रुपया कमाकर ही घर लौटूंगा।"

"तो क्या इतना रुपया तुम्हारी बीवी ने तुमसे मांगा है ?"

"जी नहीं। वह तो बेचारी गऊ है। मैंने स्वयं ही विचार किया था कि जब तक मैं इतना कमाकर उसको दे नहीं सकता तो क्या लाभ है जीवन का ?"

मिस्टर रंगा अय्यर ने गम्भीर होकर कहा, "मोहनसिंह ! तुम तो कुछ पढ़े-लिखे भी नहीं। यहां तो पढ़े-लिखों को भी इतना रुपया नहीं मिलता।

"देखो, मैं विलायत तक पढ़ आया हूं। वहां की सबसे बड़ी परीक्षा पी०-एच० डी० कर आया हूं। मेरे पिता मद्रास हाईकोर्ट में जज थे और उनकी सिफारिश बहुत मानी जाती थी। इस पर भी मुझको अढ़ाई हज़ार रुपया वेतन मिलता है। इस वेतन में इस कोठी और फर्नीचर का किराया, बिजली-पानी का खर्चा आदि अढ़ाई सौ रुपया सरकार काट लेती है। मोटर का चार सौ रुपया खर्च हो जाता है; तीन सौ के करीब नौकरों को वेतन देता हूं। रोटी और मेहमानदारी का खर्चा पांच-छः सौ रुपया हो जाता है। बीमा की रकम दो सौ रुपया, इन्कम टैक्स दो सौ रुपया, फिर बच्चों की पढ़ाई और कपड़े हैं। इस प्रकार बचत तो न के बराबर ही है। यदि मरते समय मैं कर्ज़दार नहीं हूंगा तो इतना अवश्य है कि निर्धन ज़रूर रहूंगा।

"हां, यदि मैं ईमानदारी छोड़कर बेईमानी, रिश्वत आदि लेनी शुरू कर दूं तो ज़रूर लखपती बन सकता हूं।"

मोहनसिंह को धर्मसिंह की बात याद हो आई। उसने कहा था कि

अमीर होने का तरीका अल्मोड़ा-गढ़वाल की खूबसूरत लड़कियों को लाकर बेचना है। अब उसके साहब ने बताया था कि अमीर होने का तरीका है रिश्वत लेना। उसको यह भी पता चल गया था कि लोग रिश्वत इस कारण देते हैं कि साहब उनके साथ अनुचित रियायत करें। बेईमानी से उनके झूठे बिल पास कर दें।

इतना स्मरण कर वह काँप उठा। इससे उसको उसी प्रकार भय लगने लगा, जैसे धर्मसिंह के चोरी के रुपयों को देखने पर लगा था।

उसने साहब से कहा, "तो सरकार! पैसा कमाने का कोई ऐसा तरीका नहीं, जिसमें पाप न लगे?"

"पाप-पुण्य का तो तब ही पता चलता है, जब कोई पकड़ा जाता है और जब तक पकड़ा नहीं जाता, तब तक पाप भी पुण्य बना रहता है। बड़े-बड़े ठेकेदार, दुकानदार, कारखानेदार और अफसर लाखों तो इसी प्रकार कमाते हैं। ईमानदारी से तो निर्वाह के लिए ही पैदा किया जा सकता है।

"इस पर भी अपनी मेहनत को कुछ तो अधिक मूल्य वाला बनाया जा सकता है। इसके लिए अपनी योग्यता बढ़ानी आवश्यक है। योग्यता दो प्रकार की होती है एक तो मनुष्य की शिक्षा से उत्पन्न होती है और दूसरे सरमाए से। सरमाए से मेरा मतलब है रुपये से जो किसी काम में लगाया जा सकता है।

"मोहनसिंह! मेरा कहा मानो, तो लाखों कमाने का विचार छोड़ दो। हाँ, अगर तुम मेहनत कर सकते हो तो एक काम मैं तुम्हें बता सकता हूँ, जिससे तुम्हारी मेहनत के साथ मेरा सरमाया मिल सकता है और उससे लाखों नहीं तो हज़ारों अवश्य कमाए जा सकते हैं।"

"हमारे परिवार के खेत हैं, जहाँ तम्बाकू पैदा किया जाता है। उन खेतों में मेरे हिस्से के परती पड़े हुए हैं। यदि तुम वहाँ जाना चाहो तो मेरे भाग के खेतों में तम्बाकू पैदा करने का काम कर सकते हो। उनसे जो कुछ पैदा होगा, आधा तुम्हारा और आधा मेरा होगा।"

"तो यहाँ से फिर देहात में चला जाऊं?"

"हाँ। दो काम हैं, जिनमें मेहनत करने से अच्छी आय हो सकती है। एक खेती और दूसरा व्यापार। नौकरी तो चाहे कितनी ही बड़ी हो, घटिया वस्तु है। इसमें जितना अधिक वेतन मिलता जाएगा, उतना ही खर्चा बढ़ता जाएगा। खेती और व्यापार में आय बढ़ती है सरमाया लगाने से। भूमि भी सरमाए का एक रूप है।

"यदि तुम्हारे पास पचास हज़ार हों तो तुम खा-पीकर एक वर्ष में

आठ-दस हज़ार बचा सकते हो। और यदि तुम्हारे पास पचास लाख हों तो वर्ष में दस लाख बचा सकते हो। इसी प्रकार भूमि यदि अधिक हो तो आय भी अधिक हो सकती है। इस सबके साथ सरमाए को लगाने की योग्यता भी होनी चाहिए। भूमि पर तुम चरी भी बो सकते हो और गेहूं भी। इसी प्रकार रुपयों से तुम मोतियों का व्यापार भी कर सकते हो और तूड़ी-भूसे का भी। इसके लिए योग्यता की आवश्यकता है।

"देखो, मेरी पचास बीघा भूमि है। उस भूमि पर तम्बाकू पैदा किया जा सकता है। मैं तुमको बढ़िया विलायती तम्बाकू का बीज मँगवा दूंगा और हमारे खेतों पर वह पैदा हो सकेगा। परिश्रम करने की आवश्यकता होगी। एक बीघा भूमि में दो-तीन हज़ार का तम्बाकू पैदा हो सकता है। पचास बीघा भूमि में से पच्चीस बीघा एक वर्ष बोयी जा सकेगी और उसमें चालीस-पचास हज़ार की आय होने की संभावना है। उसमें से आधा तुम्हारा और आधा मेरा। इस प्रकार करना चाहो तो मैं प्रबन्ध कर दूंगा। इस ड्राईवरी में तो तुम जैसे हो, वैसे ही रहोगे।"

मोहनसिंह को समझ आने लगी थी। पंजाब की भूमि पर बढ़िया तम्बाकू पैदा नहीं किया जा सकता था। इसका अर्थ वह यह समझा कि उसके परिवार की भूमि कम कीमत की है। अर्थात् पचास के स्थान पर सौ बीघा होने पर भी उनके पास इतना सरमाया नहीं, जितना मिस्टर रंगा के पास है। उसका मन करने लगा था कि वह रंगा के प्रस्ताव को मान जाए। इसी समय उसको स्मरण हो आया कि गुरु महाराज ने तम्बाकू के काम को निषिद्ध कहा है। इस बात को स्मरण कर उसका मन बुझ गया।

उसने गम्भीर हो कहा, "सरकार! तम्बाकू को हाथ लगाना हमारे धर्म के विरुद्ध है।"

"क्या?"

"तम्बाकू को हाथ लगाना, सिख धर्म में मना है।"

"तो तुम विचार कर लो। अच्छा, अब तुम जाओ। देखो, तारा और तारा की माँ कहीं जा रहे हैं, उनको ले जाओ।"

मोहनसिंह के मस्तिष्क में उथल-पुथल मच रही थी। वह विचार कर रहा था कि क्या करे। प्रश्न अति विकट था। उसके सामने तीन मार्ग थे। एक था कि वह घर को लौट जाए और अपना सब रुपया पिता के चरणों पर रख क्षमा माँग ले। दूसरा मार्ग था कि वह चोरी करे; झूठ, दगा, फरेब, रिश्वत इत्यादि अवगुणों को ग्रहण कर ले। अब रंगा बाबू ने एक तीसरा मार्ग बताया था कि उसके खेतों में जाकर

तम्बाकू की खेती करे।

घर पर जाएगा तो उसके परिवार की आय चार-पाँच हज़ार वार्षिक ही थी। इतने पर ही सन्तोष करना होगा। यदि दूसरा मार्ग अपनाएगा तो पकड़े जाने का भय था। इसके अतिरिक्त भी उसका मन इस उपाय के लिए तैयार नहीं हो सका था। जहाँ तक तम्बाकू पैदा करने का काम था, इसमें उसकी पन्द्रह-बीस हज़ार की वार्षिक आय होने की सम्भावना थी। इस पर भी तम्बाकू की गन्ध तक से वह घबराता था। दिल्ली में भी जब टाँगे इत्यादि में अथवा मोटर में सिगरेट पीया जाता था, तो वह कष्ट अनुभव करता था। तम्बाकू के खेत में काम करने पर तो वह सिर से पाँव तक तम्बाकू की गन्ध से भर जाएगा।

वह इसी प्रकार के विचारों में लीन था और दिन व्यतीत हो रहे थे। रंगा अय्यर की पत्नी को अपने पति के प्रस्ताव से, कि मोहनसिंह उनके खेतों पर जाकर काम करे, विशेष प्रसन्नता नहीं हुई थी। उसके विचार में मोहनसिंह एक नेक, चरित्रवान और ईमानदार ड्राईवर था और वह उसकी सेवाओं से वंचित नहीं होना चाहती थी।

: ६ :

न तो मोहनसिंह अपने मन को तैयार कर सका कि वह दक्षिण में जाकर तम्बाकू की खेती करे और न ही मिस्टर रंगा मोहनसिंह जैसे ड्राईवर को पृथक् कर सका। उसकी पत्नी कहती रहती थी कि मोहनसिंह के चले जाने पर न जाने कैसा ड्राईवर मिलेगा। मोहनसिंह विश्वस्त था और उसके साथ वे अपनी युवा लड़की को निस्संकोच कहीं भेज देते थे।

एक दिन मोहनसिंह सर्विस के लिए मोटर कश्मीरी गेट कम्पनी में देकर पैदल ही लाल किले की ओर आ रहा था कि मार्ग में उसे धर्मसिंह जाता दिखाई दिया। धर्मसिंह सड़क के पार था और उसी ओर जा रहा था, जिस ओर मोहनसिंह। मोहनसिंह ने लम्बे पग रखकर सड़क पार की और धर्मसिंह के सामने जा खड़ा हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को पहिचाना और एक दूसरे से गले मिले। फिर साथ-साथ चलते हुए मोहनसिंह ने कहा, "मैं तुमको एक महीने तक उस कोठरी में और ढाबे में जाकर देखता रहा। जब तुम्हारी कोठरी में दूसरे लोग आ गए तो फिर जाना छोड़ दिया। कहाँ गए थे तुम ?"

"गया नहीं था। पकड़कर ले जाया गया था। उस रात मैं तुमको कहकर गया था कि मैं एक काम से जा रहा हूँ। घर से निकला तो मार्ग

में मुझे एक आदमी मिला, जिसका जेब मुझे भारी लगा। मैं समझ गया कि जेब में भारी पर्स है। मैंने हाथ चलाया, जेब कतर डाली, परन्तु बटुआ जेब से निकलते समय अटक गया। मैंने झटका दिया तो बटुआ मेरे हाथ में आ गया, परन्तु उस आदमी ने मेरा हाथ पकड़ लिया और शोर मचा दिया। बस फिर क्या था, पकड़ लिया गया। पुलिस ने मुकदमा चलाया और दो वर्ष की सज़ा हुई। एक महीना हुआ छूटा हूं। एक-दो अवसर काम के मिले हैं और गुज़र हो रहा है।"

"तुम्हारे रुपए मेरे पास रखे हैं। मैं समझ गया था कि तुम चोरी करते हो। इस कारण मैंने तुमसे पृथक् हो जाना ही उचित समझा। जब अगले दिन तुम नहीं आए तो मैंने मकान बदल लिया। इस पर भी तुम्हारा रुपया तुम्हें वापिस कर देने के विचार से, तुम्हारी कोठरी पर तुम्हें देखने जाता रहा था।"

"कहां रहते हो अब ?"

"नहीं बताऊंगा। मैं चाहता हूं कि तुम बताओ कि कहां मिलोगे, जिससे वहीं पहुंच तुम्हारा रुपया तुम्हें वापिस कर दूं।"

धर्मसिंह कुछ देर तक विचार कर पूछने लगा, "कितना है वह ?"

"पन्द्रह सौ से ऊपर है।"

"पन्द्रह सौ ?"

"हां।"

"तो तुमने कुछ खर्च नहीं किया उसमें से ?"

"मेरे घर से रुपया आ गया था। मुझे आवश्यकता ही नहीं रही।"

"पर वह तो चोरी का रुपया था। जब तुम्हारे पास था, तो तुम्हारा ही हो गया।"

"मैं चोरी का धन न तो प्रयोग में लाना चाहता हूं और न ही अपने पास रखना चाहता हूं।"

"मेरे रहने का अभी ठीक प्रबन्ध नहीं हुआ। इस कारण इतना रुपया जेब में लिए-लिए घूमना नहीं चाहता। तुम कुछ दिन और रखो। मैं तुमसे ले लूंगा।"

"कहां से ले लोगे ?"

"इसकी चिन्ता तुम क्यों करते हो ? मुझको रुपयों की आवश्यकता होगी तो मैं स्वयं तुमको ढूंढ लूंगा। देखो भापा ! जब जेल से बाहर निकला तो जेब में एक पैसा भी नहीं था। मैं तुम्हारे पास पहुंचने के लिए चिन्तित था। परन्तु तुमको ढूंढ सकने से पहिले ही एक शिकार मिल गया।"

"बहुत खराब काम करते हो तुम !"

"लोग इसको खराब ही कहते हैं।"

"और तुम नहीं कहते क्या ?"

"नहीं। मैं इसी प्रकार अपना काम चलाता हूं। यह मेरी जीविका है।"

"कोई और काम क्यों नहीं ढूंढ लेते ?"

"कोई भी काम करूं, बात वही रहती है। बिना खराब कामों के निर्वाह से अधिक नहीं मिलता। एक काम मैंने तुमको भी बताया था। उसमें हज़ारों की आय हो सकती थी। पर तुम राज़ी नहीं हुए। यदि तुम मान जाते तो मैं तुम्हारे साथ शामिल हो जाता।"

"लड़कियां बेचने की बात कहते हो क्या ?"

"हां।"

"वह तो चोरी करने से भी ज्यादा बुरी बात है। इसमें तो रुपया चुराते हो, तो रुपये वाले को दुःख होता है, पर रुपए को कोई कष्ट नहीं होता। लड़कियां चुराने में तो लड़कियों के माता-पिता को तो दुःख होगा ही, साथ ही साथ लड़कियों को भी दुःख होगा।"

"मैं जानता हूं। इसीलिए कम खराब काम करता हूं।"

मोहनसिंह ने उसको इस प्रकार युक्ति करते देख पूछा, "क्या दो वर्ष तक जेल भुगतने के पीछे भी तुमको अपने काम पर पश्चात्ताप नहीं लग रहा ?"

"बात यह है कि मैं धनी बनना चाहता हूं। धन ईमानदारी के कामों से नहीं मिलता। इसीलिए यह करने पर विवश हूं।"

"मुझको एक आदमी ने तम्बाकू के खेतों पर काम करने के लिए कहा है। उसका कहना है कि इस प्रकार मैं दस से बीस हज़ार की आय प्रतिवर्ष कर सकूंगा।"

"तो तम्बाकू बोना ईमानदारी का काम समझते हो ?"

"इसमें क्या बेईमानी है।"

'खराबी यह है कि तम्बाकू पैदा किया जाएगा, वह बाज़ार में बिकेगा। यदि तम्बाकू की पैदावार अधिक हुई तो तम्बाकू सस्ता होगा और उससे बने सिगरेट-सिगार सस्ते होंगे। लोग अधिक पीयेंगे और अधिक बीमार होंगे। यह तो जनता को एक धीरे-धीरे, परन्तु निश्चय से काम करने वाले, विष देने के समान होगा।"

"तो तुम यह काम भी करना नहीं चाहते ?"

"देखो भापा ! गेहूं की खेती से तम्बाकू की खेती में क्यों अधिक

लाभ होता है ? इस कारण कि इसमें परिश्रम से अधिक लाभ मिलता है। यह ऐसे ही है जैसे किसी की जेब कतरने में परिश्रम तो होता है पैसा भर और मिल जाते हैं सैकड़ों।"

"परन्तु जहां लड़कियां बेचना और चोरी करना कानून से मना है, वहाँ तम्बाकू बोना तो मना नहीं।"

"कानून से मना होना अथवा न होना इस बात का प्रमाण नहीं कि अमुक कार्य अच्छा नहीं है, अथवा है।"

"तम्बाकू की खेती सरकार ने इस कारण मना नहीं की कि अधिकारियों में अधिकतर लोग यही पीते हैं। यह जानते हुए भी कि इसमें एक ऐसा विष रहता है, जो गले और दिल को हानि पहुंचाता है, वह इसको मना नहीं करती। मेरे कहने का अर्थ यह है कि किसी काम का अच्छा अथवा बुरा होना इस बात से पता नहीं चलता कि कानून से क्या ठीक है अथवा क्या वर्जित है।"

मोहनसिंह निरुत्तर हो रहा था, इस पर भी इस बात को मानने लिए के तैयार नहीं हुआ कि चोरी करना अथवा लड़कियाँ बेचना तम्बाकू पैदा करने के तुल्य काम है। इस कारण उसने कहा, "धर्मसिंह ! तुम अपना रुपया ले लो। मैं नहीं जानता कि मैं कब तक दिल्ली में रहूंगा। मेरे जाने के समय तुम नहीं मिले तो बहुत कठिनाई रहेगी। बताओ, कल किस स्थान पर मिलोगे ?"

"मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं कल कहां होऊंगा। तुम मुझको कोई स्थान बता दो। मैं तुम्हें कल वहां मिल जाऊंगा।"

मोहनसिंह की इच्छा नहीं थी कि वह मिस्टर रंगा अय्यर की कोठी का पता धर्मसिंह को बताए, परन्तु अन्य कोई उपाय न देख उसने कह दिया, "आठ नम्बर तुगलक रोड पर मैं मोटर ड्राईवर के क्वार्टर में रहता हूं।"

"तो ठीक है। जिस दिन मैं अपने रहने का कोई प्रबन्ध कर लूंगा, आकर रुपया ले जाऊंगा।"

उस दिन मोहनसिंह कोठी में पहुंचा तो मिस्टर रंगा ने उसको बुला भेजा। वह उसके पास उपस्थित हुआ तो रंगा की पत्नी लक्ष्मी, तारा और अन्य बच्चे उपस्थित थे। रंगा ने मोहनसिंह से कहा, "मोहनसिंह ! हमारा तबादला हो गया है। हम कोचीन जा रहे हैं। बताओ, तुम हमारे साथ चलोगे अथवा हमारी नौकरी छोड़ दोगे ?"

मोहनसिंह ने कह दिया, "यदि आप ले चलेंगे तो चलूंगा। पर आपकी तम्बाकू की खेती का क्या हुआ ?"

मिस्टर रंगा गम्भीर हो बोला, "अब हम ऐसे स्थान पर जा रहे हैं, जो हमारे घर के समीप है। वहां चलकर इस विषय पर भी विचार कर लेंगे।"

"तो मैं चलूंगा।"

"ठीक है। मैंने मोटर कम्पनी वालों को टेलीफोन कर दिया है कि मोटर हमको रेल द्वारा बुक कर भेज दें। कल हम जा रहे हैं। तुम हमारे साथ चलने के लिए तैयार हो जाओ। गाड़ी कल सायंकाल पाँच बजे चलेगी।"

मोहनसिंह बितर-बितर मुख देखता रह गया। उसको धर्मसिंह के रुपयों का स्मरण हो आया था। वह विचार कर रहा था कि यह रुपया उसको कैसे वापिस करे। इस पर भी उसने मन में निश्चय कर लिया था कि वह रंगा अय्यर के साथ जाएगा। नए-नए नगर देखने की लालसा उसके मन में प्रबल हो उठी थी। उसने कहा, "सरकार! मैं आपके साथ चल रहा हूँ।"

: ७ :

रंगा बाबू कोचीन में भारत सरकार द्वारा बनाई जा रही नई बन्दरगाह की देख-भाल के लिए भेजा गया था। वहाँ पहुंच उसको एक विशाल कोठी रहने को मिल गई। उसमें भी नौकरों के रहने के लिए पृथक् मकान थे। उनमें से एक मोहनसिंह को दे दिया गया।

दो सप्ताह पश्चात् उसकी मोटर पहुंच गई और मोहनसिंह का काम आरम्भ हो गया। परन्तु कोचीन दिल्ली से बहुत ही छोटा नगर था और रंगा बाबू की कोठी समुद्र तट के समीप ही थी। बच्चे भी समीप ही स्कूल में भर्ती हो गए थे। तारा का कालेज भी पास ही था। इस कारण मोटर का प्रयोग बहुत कम होता था। महीने में कभी एक-दो बार ही मोटर की आवश्यकता पड़ती थी और मोहनसिंह दिनभर खाली बैठा रहता था।

दो महीने व्यतीत होते-होते मोहनसिंह अनुभव करने लगा कि वह बेकार का वेतन ले रहा है। जब दूसरे मास का वेतन देने के लिए रंगा ने मोहनसिंह को बुलाया तो मोहनसिंह ने हाथ जोड़कर कह दिया, "सरकार। पिछले पन्द्रह दिन में एक बार भी तो गाड़ी निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ी। पिछले दो मास में मैं केवल दो-तीन बार आपको मोटर में लेकर गया हूँ। इससे मैं समझता हूं कि मुझको वेतन फोकट

में दे रहे हैं। यहां तो सस्ते ड्राईवर मिल जाते हैं। इस कारण मेरा निवेदन है कि या तो मुझको दिल्ली वापिस लौट जाने की स्वीकृति मिल जाए, अन्यथा वह खेतों के काम की बात कर दी जाए।"

रंगा अय्यर को भी मोहनसिंह को लाने में लाभ प्रतीत नहीं हुआ था। उसने खेतों की बात पर विचार करना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "मैं समझता हूँ कि तुम ठीक कहते हो। मेरा विचार है कि एक रविवार हम अपने गाँव में चलें। वह यहां से सत्तर मील है। हम शनिवार सायंकाल यहाँ से चलेंगे। रात को वहाँ पहुंच जाएँगे। मैं यहां से एक तम्बाकू की खेती के जानकार को भी ले चलूंगा। वहां से लौटकर इस विषय पर निश्चय कर लेंगे।"

मोहनसिंह इस बात से प्रसन्न था और वह उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जिस दिन वहाँ जाना था। मिस्टर रंगा को तम्बाकू की खेती में जानकार को साथ ले चलने के लिए तैयार करने में एक मास लग गया और इस मास का वेतन भी मोहनसिंह को फोकट में मिला। मास में एक दिन भी गाड़ी की सवारी नहीं की गई थी।

रंगा अय्यर का गांव मालाबार की पहाड़ियों में की एक सुन्दर घाटी में था। वह घाटी काफी लम्बी-चौड़ी थी और उस गाँव के पूर्व में रंगा के परिवार के खेत थे। उनमें पचास बीघा भूमि रंगा की अपनी थी। कोचीन से उत्तर-पूर्व की ओर सत्तर मील की दूरी पर, उनका विलियौर गाँव था। वहाँ तक पक्की सड़क जाती थी। वही सड़क रामेश्वरम् और कन्याकुमारी के लिए भी थी और इस मार्ग पर वर्षभर यात्रियों के लिए बसें आती-जाती रहती थीं।

जाने से दो दिन पूर्व ही मोहनसिंह ने गाड़ी की सफाई की और बैटरियाँ चार्ज करवालीं। अतएव शनिवार को सायं पांच बजे चलकर रात के नौ बजे वे विलियौर जा पहुंचे।

रंगा, उसकी स्त्री लक्ष्मी, तारा और साथ में तम्बाकू का विशेषज्ञ था। वे वहां पहुंचे तो रंगा के चाचा, मामा और श्वसुर इत्यादि सब एकत्रित हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि रंगा ने अपने आने की सूचना दे रखी थी। पूर्ण पार्टी का स्वागत किया गया। रंगा, उसकी पत्नी और तारा तो घर के भीतर चले गए और मोहनसिंह तथा साथ में आए जानकार व्यक्ति को घर के बाहर छावन के नीचे खाट डालकर बैठा दिया गया। वह विशेषज्ञ तो उस इलाके का ही रहने वाला एक नायर जाति का था। उसको भी भोजन मोहनसिंह के साथ बाहर ही दिया गया। वह नायर हिन्दुस्तानी में बातचीत नहीं कर सकता था, इस

कारण दोनों भोजन कर विना एक शब्द भी कहे, खाट पर सो रहे।

प्रात:काल लक्ष्मी आई और दोनों को स्नानादि से शीघ्र अवकाश पा जाने के लिए कह गई। मोहनसिंह ने देखा कि वह उदास-सी लगती है और उसकी आँखें फूली हुई हैं। उसको संदेह हो गया कि वह रोती रही है। इस कारण उसने पूछा, "सरकार! आपका स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"हां। क्यों?"

"आपकी आंख फूली हुई हैं और लाल हो रही हैं।"

"लक्ष्मी ने केवल इतना कहा, "यहां का जलवायु कभी भी मेरे अनुकूल नहीं रहा।"

इतना कह वह भीतर चली गई, परन्तु इस उत्तर से मोहनसिंह को सन्तोष नहीं हुआ। इस पर भी वह और अधिक पूछ नहीं सकता था। आधे घंटे में दोनों स्नानादि से छुट्टी पाकर तैयार हुए तो उनके लिए पीने को कॉफी और उड़द चावलों के बड़े आ गए। काफी एक आदमी लाया था, परन्तु तारा साथ थी। मोहनसिंह ने देखा कि तारा का मुख भी उतरा हुआ है, परन्तु उससे वह पूछने का साहस नहीं कर सका।

वह अभी कॉफी पी ही रहा था कि रंगा घर से निकल आया और मोहनसिंह से बोला, "हम खेतों तक पैदल ही चलेंगे।"

वे तीनों वहां से पूर्व की ओर चल पड़े। गांव से आधा मील चलने पर एक कटहल के पेड़ के समीप रंगा खड़ा हो गया और मोहनसिंह तथा अपने साथी को समझाने लगा। उसने बताया, "मेरे खेत इस पेड़ से आरम्भ होते हैं। यहां से दो फलांग पूर्व की ओर इस मेंड़ पर जाने से एक नाला मिलेगा। वहां से दक्षिण की ओर नाले के साथ-साथ आधा फलांग के लगभग जाना चाहिए। वहाँ पर नारियल का पेड़ है। उस पेड़ से पश्चिम की ओर आते जाएँ तो एक कटहल के पेड़ की सीध से आजाएँगे। वहां से यहां लौट आने पर मेरे खेतों की परिक्रमा हो जाएगी।

"अभी हम यह परिक्रमा करेंगे। पहिले तुम्हें सिंचाई के प्रबन्ध की बात बताता हूं। वह नाला उस सामने वाले पहाड़ों पर से आता है। बारह महीने यह चलता है। उसको काटकर खेतों की सिंचाई का प्रबन्ध हो सकता है।"

"एक बार मैं बहुत छोटा था कि मेरे पिता ने तम्बाकू की खेती की थी। सब खेतों पर नहीं, केवल पाँच बीघा भूमि पर और उससे इतना धन प्राप्त हुआ था कि मेरी बहिन का विवाह हुआ था और मेरे विवाह के लिए भी कुछ रुपया बच रहा था।

"अब तो मैं चाहता हूं कि इस सब खेत पर तम्बाकू बोया जाए।

ग्राधे खेत में इस वर्ष ग्रौर शेष ग्राधे में ग्रगले वर्ष। इस प्रकार बारी-बारी से किया जाए। ग्राधे खेतों को खाद देकर ग्राराम दिया जाए। मेरी इच्छा है कि मोहनसिंह ! तुम वहाँ के मैनेजर बनकर काम करो। मैं तुमको एक ऐसा ग्रादमी दे दूंगा, जो तुम्हारी भाषा मजदूरों को समझा सके।

"ग्रौर ग्राप।" उसने विशेषज्ञ को संबोधन कर कहा, "बताइए कि यहाँ कि भूमि कैसी है ग्रौर किस किस्म का तम्बाकू बोया जा सकता है, जो ग्रधिक-से-ग्रधिक लाभ दे सके?"

वह विशेषज्ञ ग्रपने साथ कागज़ के बहुत से लिफाफे लाया था। उसने वहाँ के भिन्न-भिन्न स्थानों की मिट्टी के नमूने ले लिए। लिफाफों पर उसने निशान लगा लिए। उसने खेतों का चक्कर काटा ग्रौर जल का प्रबन्ध देखा। वहाँ की वायु में नमी हाईड्रोमीटर से देखी। इस प्रकार ये लोग घूम-घामकर सब कुछ देखते रहे। मिस्टर रंगा ने एक खेत में जिसका क्षेत्रफल सवा बीघा था, तम्बाकू बोया हुग्रा था। तम्बाकू देसी ढंग का था। उस खेत की भी मिट्टी ले ली गई। यह सब कुछ ग्रपनी डायरी में लिखकर ग्रौर खेतों का मानचित्र बना, वे लौटने को तैयार हो गए। इस सब समय मोहनसिंह विचार कर रहा था कि उसको यह स्थान ग्रनुकूल बैठेगा ग्रथवा नहीं।

वहाँ का दृश्य ग्रति मनोहर था। वहाँ न तो ग्रधिक गर्मी थी ग्रौर न ही ग्रधिक सर्दी। इस पर भी वह देख रहा था कि वहाँ के रहने वाले प्राय: काले रंग के ग्रौर ग्रति निर्धन थे। उसने रंगा के घर के लोगों को भी देखा था। वे भी ग्रपनी भाषा में ही बोलते थे ग्रौर बहुत ही साधारण रूपरेखा रखते थे। पूर्ण परिवार में केवल रंगा ही कुछ गौरवर्णीय था। तारा वहाँ की सब लड़कियों से सुन्दर थी ग्रौर लक्ष्मी सबसे ग्रधिक सौम्य स्वभाव की थी।

वहाँ के लोगों को ग्रौर उनकी भाषा को देख उसका मन वहाँ रहने को नहीं करता परन्तु प्राकृतिक दृश्य देख ग्रौर रुपया कमाने का स्रोत जान उसका निर्णय था कि वह काम करेगा।

लौटते समय रंगा ने मोहनसिंह को कहा, "मैं समझता हूँ कि खेत के किनारे तुम एक मकान बनवा लेना ग्रौर उसमें ग्रावश्यक सामान नगर से ले ग्राना। खेतों के लिए एक पम्प का प्रबन्ध करना होगा ग्रौर एक गरम हवा से पत्ते सुखाने वाली मशीन का। इसके ग्रतिरिक्त एक दुभाषिया का भी प्रबन्ध मैं कर दूंगा जो तुम्हें यहाँ के लोगों की बात बता सके ग्रौर तुम्हारी बात उनको समझा सके।

"देखो मोहनसिंह ! यदि एक वर्ष तक तुम लोगों से ठीक व्यवहार रख सके तो वे तुम्हारे भक्त बन जाएँगे।"

मोहनसिंह का कहना था कि जब इन विशेषज्ञ महोदय की सम्मति ठीक हुई तो वह तुरन्त यहाँ आकर काम आरम्भ कर देगा। इस पर भी मोहनसिंह विचार कर रहा था कि उसका घर से इतनी दूर आकर वही काम करना, जो वह घर में बहुत ही आराम से कर सकता था, कहाँ तक ठीक होगा। उसके मन में एक ही बात आती थी कि वह वहाँ रहकर कुछ सीखेगा ही।

इस समय वे घर पर आ पहुँचे। वहाँ सबके लिए भोजन रंगा के ससुराल वाले लेकर आए हुए थे। लक्ष्मी की माँ और भाई भी थे। रंगा, तारा और लक्ष्मी के लिए भोजन भीतर ले जाया गया और मोहनसिंह और विशेषज्ञ के लिए भोजन वहीं छादन के नीचे रख दिया गया। उनको खिलाने के लिए एक लड़की वहाँ खड़ी थी। अब छावन के नीचे गोबर का चौका लगा था और उनके लिए लकड़ी की चौकियाँ रखी थीं।

लड़की ने जब मोहनसिंह को देखा तो खिलखिलाकर हँस पड़ी। मोहनसिंह इसका अर्थ नहीं समझा। उसने स्वाभाविक रूप से उस लड़की की ओर प्रश्नभरी दृष्टि में देखा और पूछा, "क्या है छोकरी ?"

इस पर वह और भी हँसी। अब मोहनसिंह को समझ आई कि वह उसकी भाषा नहीं समझ सकी। इस कारण उसने हाथ से संकेत कर पूछा कि "क्या बात है ?"

इस पर उस लड़की ने अपनी भाषा में कुछ कहा और फिर टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में कहा, "यह दाढ़ी, मूंछ और बाल भयंकर हैं।" साथ ही उसने हाथों से दाढ़ी-मूंछ की रूपरेखा बना दी।

"ओह ! तुम तो हिन्दुस्तानी बोलती हो।" मोहनसिंह ने विस्मय में कहा।

"हम बम्बई में रहा। वहाँ बोलता सुना।

"ठीक, ठीक। तुम मेरी दाढ़ी पर हँसी हो न ?" मोहनसिंह ने दाढ़ी पर हाथ लगाकर कहा।

लड़की फिर हँसी और उसने कहा, "भोजन है। बैठो यहाँ।" यह कह उसने पटरी की ओर संकेत कर दिया।

मोहनसिंह और उसके साथी ने हाथ धोए और चौकी पर जा बैठे। लड़की ने उसके सामने केले के पत्र बिछा दिए और उन पर चावल,दाल, शाक आदि रख दिए। मोहनसिंह ने अनुभव किया कि खाना रात से काफी अच्छा और स्वादिष्ट है। वे दोनों स्वाद ले लेकर खा रहे थे और

वह लड़की उनके सामने खड़ी थी। मोहनसिंह ने देखा कि वह गन्दगी रंग की और तीखी रूपरेखा वाली थी। कानों में चांदी की वालियाँ मात्र भूषण थे। इससे उसने अनुमान लगाया कि इसके-माता-पिता काफी निर्धन रहे होंगे। इस पर उसने लड़की से पूछा, " तुम्हारा नाम क्या है ?"

"दुर्गा।"

"ओह दुर्गा भवानी !"

"नहीं। दुर्गा।"

"तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं ?"

"नहीं हैं।"

मोहनसिंह समझ गया कि वह अनाथ है। उसने फिर पूछा, "मेरी दाढ़ी अच्छी नहीं क्या ?"

उसने उत्तर नहीं दिया। उसको कुछ लज्जा लगी और वह मुख मोड़कर बैठ गई।

जब ये चावल आदि खा चुके तो उस लड़की ने इन्हें उड़द और चावल की बनी एक मिठाई परस दी। यह भी इन्होंने बहुत पसन्द की। जब वे खा चुके तो तारा बाहर आ गई और पूछने लगी, "ड्राईवर ? कुछ और चाहिए क्या ?"

"नहीं सरकार ! इस समय का खाना रात से काफी अच्छा था।"

"वह मेरे मामा के घर से आया था।"

"और यह लड़की भी आपके मामा के घर की है ?"

"यह एक अनाथ लड़की है। उनके यहाँ रहती है और काम करती है।"

"यह हिन्दुस्तानी बोलती है।"

"हाँ, बचपन में यह अपने माता-पिता के साथ बम्बई रही थी।"

"इसको मेरी दाढ़ी और मूंछ पसन्द हैं।"

यह सुन तारा ने माथे पर त्योरी चढ़ा दुर्गा की ओर देखा और दुर्गा खाली बर्तन उठाकर भीतर भाग गई। मोहनसिंह ने तारा का क्रोध शांत करने के लिए कह दिया, "मुझको उसका हँसना बुरा नहीं लगा।"

"क्यों ?"

"कोई तो मुझको देखकर हँसा है। बाकी लोग तो मेरी दाढ़ी देखकर डरते और माथे पर त्योरी चढ़ाते हैं।"

"तारा भी हँस पड़ी और भीतर चली गई।

वापिस कोचीन लौटते समय रंगा ग्रय्यर ने मोहनसिंह से कहा, "मेरे भाई और भतीजे की भूमि मुझसे पृथक् हो चुकी है और जब से मेरे पिता का देहान्त हुआ है, वह परती पड़ी है। कल रात मुझको इस भूमि का प्रबन्ध करने आया देख सब नाराज़ होने लगे। उनका कहना था कि मुझको इतना वेतन मिलता है तो मुझे भूमि पर काम करने की क्या आवश्यकता है। इसमें तो घाटे के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। साथ ही उनका कहना था कि यदि मैंने भूमि जोतनी ही है तो अपने भतीजे को मैनेजर नियुक्त कर दूं। तुमको वे पसन्द नहीं करते।

"मैंने तो यह निश्चय किया है कि मेरा और तुम्हारा यहाँ का काम इस विशेषज्ञ की सम्मति पर निर्भर है। तुम क्या कहते हो मोहनसिंह?"

मोहनसिंह की आँखों के सामने अभी तक दुर्गा घूम रही थी। वास्तव में उसको दुर्गा अन्य लड़कियों से कुछ विलक्षण प्रतीत हुई थी। उसने रंगा की बातों की ओर विशेष ध्यान न देकर कह दिया, "हाँ सरकार! मैं काम करूंगा।"

"मैंने यह भी निश्चय किया है कि यदि तुम काम करोगे तो आय का आधा भाग तुम्हारा होगा।"

"मैं आपका जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा।"

इसके पश्चात् मिस्टर रंगा साथ आए विशेषज्ञ से बातें करने लगा। वे दोनों अपनी ही भाषा में बातें कर रहे थे।

उनकी इस यात्रा के कई दिन पीछे भूमि के विशेषज्ञ की सम्मति आई। वह सम्मति उत्साहवर्धक थी। उसमें यह लिखा था कि वहाँ पर वर्जीनिया तम्बाकू उत्पन्न हो सकता है। साथ ही उसने विशेष प्रकार की खाद, जो उन खेतों में उस विशेष तम्बाकू के लिए चाहिए थी, लिख-कर भेज दी।

मिस्टर रंगा ने एक पम्प और तेल का इंजिन खरीद लिया। साथ ही उसने नए ढंग के हल और खाद एकत्रित कर दी। इस पर मोहनसिंह रंगा का एक पत्र लेकर उसके ससुराल वालों के पास चला गया। वहाँ से एक अधेड़ आयु का नौकर जो कि हिन्दुस्तानी बोल सकता था, मिल गया। उसकी सहायता से मजदूर एकत्रित कर उसने खेतों के किनारे एक लकड़ी का घर बनवा लिया। बाहर मज़बूत लट्ठों के ऊपर भूमि से छः फुट की ऊंचाई पर, एक प्लेटफार्म बनाकर उस पर लकड़ी की कुटिया बनवाई। छत को चूने से रोकने के लिए रंगा ने उसको एक प्रकार का

"लिनोलियम" कपड़ा भेज दिया और उसने छत के ऊपर लगवा लिया। इस कुटिया में खिड़की और द्वार भी बनवा लिया। इस प्रकार एक बहुत बढ़िया कमरा बन गया। कुछ अन्तर पर उसने लकड़ी का एक-छोटा सा गोदाम बनवा लिया। इसमें वह खेत के औज़ार और हल इत्यादि रखना चाहता था। नाले के किनारे उसने एक पक्का ईंटों का कमरा बनवाया। इसके अन्दर पम्प और इंजन लगवा लिया।

इस सब प्रबन्ध करने में उसको दो मास लग गए और इस सब समय वहाँ दुर्गा ही उसको खाना खिलाने आती रही। इससे दोनों एक दूसरे को भलीभाँति जानने लगे थे। दुर्गा को मोहनसिंह से बातें करने में आनन्द आता था और उसके हिन्दुस्तानी समझ सकने के कारण ही घर के आदमी ही मोहनसिंह को खाना खिलाने भेजते थे।

एक दिन मोहनसिंह रंगा के ससुरालवालों के विषय में दुर्गा से पूछने लगा, "लक्ष्मी देवी के कितने भाई हैं?"

"दो थे। एक मर चुका है। कुमारस्वामी बहुत अच्छा आदमी है।"

"उसकी पत्नी का नाम क्या है?"

"पार्वती।"

"तुम्हारा भाई है क्या?"

उसने सिर हिलाकर न करदी।

"तुम्हारा विवाह हो गया है क्या?"

"हाँ।" कहकर हँसने लगी। फिर उसने सिर पर हाथ रख संकेत किया कि सुहाग सिन्दूर नहीं है।

"कब होगा?"

"नहीं बताऊँगी।"

"कहाँ होगा?"

उसने फिर सिर हिला दिया और टेढ़ी दृष्टि से मोहनसिंह की ओर देखा। जब उसके मुख पर उसके भावों को जानने के लिए मोहनसिंह ने देखा तो वह हाथ से दाढ़ी और केशों की ओर संकेत करने लगी। एकाएक उसने समझा कि वह कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं सकती। वह कुछ अपने विषय में समझने लगा था। उसके इस प्रकार अभिनय करने का अर्थ मोहनसिंह गलत समझ रहा है, यह विचार कर उसने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए कह दिया, "सुब्बाराव।"

सुब्बाराव दुभाषिये का नाम था। वह दाढ़ी मूंछ सदैव सफा रखता था। इससे मोहनसिंह समझ गया कि सुब्बाराव से उसके विवाह की बात हो रही है। इस पर भी उसको संदेह बना ही रहा कि उसने यह बात

सत्य कही है अथवा उसको धोखा देने के लिए। उसने भी इस विषय पर और अधिक बात करनी उचित नहीं समझी।

सुब्बाराव की सहायता से उसने काम करनेवाले इकट्ठे करवाकर हल चलवा दिया। जिस दिन हल चलना आरम्भ हुआ, रंगा अय्यर के घर के सब प्राणी बड़े छोटे, सब खेत की मेंढ़ पर आ गए और मोहन-सिंह को स्वयं हल जोतते देख अपनी भाषा में हँसी और बातचीत करते रहे। वे विस्मय कर रहे थे कि मोहनसिंह वहाँ के अन्य हल चलाने वालों से अधिक काम करता है। प्रातः सूर्योदय से पूर्व वह और अन्य काम करने वाले खेतों में आ गए थे और बारह बजते-बजते उन्होंने पाँच बीघा भूमि खोद डाली थी।

जब मोहनसिंह हलों को साफ करवा गुदाम में रखवा और बैलों को पशुशाला में बाँध उनके सामने दाना डलवाकर अपने लकड़ी के मकान में पहुँचा तो सुब्बाराव और दुर्गा वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सुब्बा-राव ने बताया कि मिस्टर रंगा के सम्बन्धी उसके वहाँ आकर काम करने को पसन्द नहीं करते। सुब्बाराव का विचार था कि वे खेत में आकर काम करने वालों को बरगलाएँगे। इसी कारण वह यहाँ छुपकर बैठा देखता रहा है।

"देखो सुब्बाराव!" मोहनसिंह ने कहा, "मैं दो हज़ार मील से चलकर यहाँ काम करने आया हूँ और काम करूँगा। यदि यहाँ के लोग काम नहीं करेंगे तो मैं अपने देश से काम करने वाले ले आऊँगा। यह काम तो अब होगा ही। यह रुक नहीं सकता। इस पर भी यदि यहाँ के लोग काम करें तो मैं उनको इतना इनाम दूंगा कि दूसरे लोग उनसे ईर्ष्या करने लगें।"

इस पर दुर्गा ने पूछा, "अपने देश के आदमी भी आप जैसे होंगे।" और उसने दाढ़ी की ओर संकेत कर दिया।

मोहनसिंह ने सिर हिलाकर हाँ का संकेत कर दिया। इस पर दुर्गा चिन्ता अनुभव करने लगी। मोहनसिंह ने पूछा, "क्या बात है दुर्गा?"

उसने चिन्ता का भाव बनाते हुए कह दिया, "कुछ नहीं।" इसके आगे उसने अपनी भाषा में कुछ कहा, जिस पर सुब्बाराव हँसने लगा। मोहनसिंह ने पूछा, "क्या कहा है इसने?"

सुब्बाराव ने हँसते हुए कहा, "यह कहता है कि तब तो यहाँ की सब औरतें डर के मारे भाग जाएँगी।"

"क्यों?"

"यह कहती है कि उसको ऐसा अनुभव होता है कि तुम लोग औरतों

को कच्चा चबा जाओगे।"

मोहनसिंह ने मुस्कराते हुए पूछा, "वह तो उससे डरकर भागी नहीं तो अन्य क्यों भाग जाएँगी ?"

"मैं भी भाग जाऊँगी।" दुर्गा ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा।

मोहनसिंह ने बात बदल दी। उसने सुब्बाराव से कहा, "कोई खाना बनाने वाला मिल जाए तो मेरा खाना यहाँ बन जाया करे। अब कुमारस्वामी के घर खाने में संकोच होता है। इतने दिन तो खाया है।"

"यहाँ खाना बनाने वाला नहीं मिलेगा।"

"तो मैं स्वयं बना लिया करूँगा। खाना बनाने के लिए बर्तन कहाँ से मिल सकेंगे ?"

"मिल जाएँगे।"

"तो ले दो। दाम ले जाओ।"

"पर कुमारस्वामी इसको पसंद नहीं करेगा।"

"क्या हानि है इसमें ?"

"आप रंगा बाबू के विशेष आदमी हैं। वे आपको अपना खाना बनाने नहीं देंगे।"

"यही तो मैं नहीं चाहता।"

"तो मैं बना जाया करूँ ?" दुर्गा ने पूछ लिया।

"यह भी ठीक नहीं होगा।"

"क्यों ?"

इस पर सुब्बाराव ने दुर्गा को कुछ अपनी भाषा में कहा और फिर दोनों अपनी ही भाषा में झगड़ने लगे। मोहनसिंह समझ नहीं सका। जब उसने उन दोनों को लाल-पीले होते देखा तो उसने दोनों को चुप कराने के लिए कहा, "ठहरो ठहरो। मेरी सुनो।"

दोनों चुप कर गए तो उसने सुब्बाराव से पूछा, "क्या कहती है यह?"

"कुछ नहीं।" इतना कह उसने भोजन, जो दुर्गा लाई थी, उसको खाने को कहा।

इतना तो मोहनसिंह समझता था कि सुब्बाराव ने दुर्गा को यहाँ आकर भोजन बनाने से मना कर दिया है। इस पर ही दोनों में झगड़ा हुआ है। परन्तु जब सुब्बाराम ने कहा, "कुछ नहीं।" तो वह समझ गया कि लड़की ने कुछ कहा है, जो कि सुब्बाराव को पसन्द नहीं है। इस पर उसको यह स्मरण हो आया कि एक समय दुर्गा ने कहा था कि उसका विवाह सुब्बाराव से होने वाला है। अतएव उसने इस बात को और आगे चलाना उचित नहीं समझा। वह हाथ धो खाना खाने बैठ

गया। जब दुर्गा परस रही थी और सुब्बाराव उसके सामने बैठा हुआ था, तो मोहनसिंह ने कह दिया, "मैं कल से खाना अपने हाथ से बनाऊँगा। अब तुम खाना लेकर मत आना।"

"क्यों ?"

"तुम दोनों झगड़ा जो करते हो।"

इस पर दुर्गा रो पड़ी और रोते हुए कहने लगी, "यदि यह बात मालकिन को पता चल गई तो वह मारेंगी।"

"क्यों मारेंगी ?"

"मैं झगड़ा नहीं करती थी। यह तो सुब्बाराव कर रहा था। वह कहता था कि मैं तुम्हारा खाना बनाने के लिए नहीं आ सकती। तुम अच्छे आदमी नहीं हो। इस पर ही मैंने इसको कहा था कि वह भी अच्छा आदमी नहीं है। मालकिन इससे मेरा विवाह करना चाहती हैं।"

"तब तो तुमको ऐसी बातें नहीं करनी चाहिएँ।"

"पर मैं इससे विवाह नहीं करूँगी। यह अच्छा आदमी नहीं है।"

सुब्बाराव ने उसके मुख पर एक चपत लगाने के लिए हाथ उठाया परन्तु मोहनसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया और दुर्गा छलांग मारकर दूर जा खड़ी हो गई।

सुब्बाराव ने उसको क्रोध में कुछ कहा। इस पर दुर्गा ने भ. उसको कुछ कहा। मोहनसिंह ने खाना छोड़ दिया और कहा, "दुर्गा! ले जाओ। यह व्यवहार ठीक नहीं है।"

इस पर दुर्गा ने दूर से ही कहा, "आप भोजन करिए और इसकी बातों पर ध्यान न दीजिए।"

सुब्बाराव ने कहा, "यह बात मालकिन के पास जाएगी और वे इसको पीटेंगी।"

"देखो सुब्बाराव ! यह झगड़ा मालकिन के पास नहीं जाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि तुम दोनों ही यहीं पर सुलह कर लो।"

"यह तो तब ही हो सकता है, जब यह मुझसे विवाह करने के लिए तैयार हो जाए।"

"मैं मालकिन की मार से नहीं डरती।" दुर्गा ने कह दिया। "मैं इस म्लेच्छ से विवाह नहीं करूँगी।"

"मैं भी तुमसे विवाह नहीं करूँगा। मैं म्लेच्छ हूं तो तुम कौन हो, बता दूं ?"

"ऊ...ऊ...ऊ...।" दुर्गा ने मुख बनाकर कहा।

मोहनसिंह उसके इस भाव से हँस पड़ा। इस समय दुर्गा बर्तन समेट

रही थी। मोहनसिंह उठ खड़ा हुआ और बोला, "आज मालकिन से कह देना कि मैंने अपने भोजन का प्रबन्ध कर लिया है। अब मैं यहां भोजन बना लिया करूँगा।"

दुर्गा गई तो सुब्बाराव मोहनसिंह को बताने लगा कि खाना बनाने के बर्तन वह अपने घर से ला देगा और उसको खाना स्वयं बनाना आरम्भ कर देना चाहिए। मोहनसिंह ने उसके मन की बात जानने के लिए कहा, "तुम ठीक कहते हो। यह लड़की बहुत सिर चढ़ गई मालूम देती है।"

"सरदार! असल बात तुम नहीं जानते। हमारे देश में ऊँची जातियों के ब्राह्मण छोटी जात की लड़कियों से विवाह तो कर लेते हैं परन्तु उस विवाह से उत्पन्न सन्तान को अपनी जाति में नहीं लेते। वे लड़के लड़कियाँ अपनी माँ की ही जाति की रहती हैं। इस लड़की ने मुझको यही कहा था। मैं वैसा हूँ नहीं।"

"तुमने भी तो उसको बहुत बुरा-भला कहा है। मैं देख रहा था कि जब तक तुम उससे झगड़ा कर रहे थे तो उसका मुख क्रोध से लाल हो उठा था।"

"मैंने जो कुछ कहा था, वह सत्य है। इसका बाप और माँ एक गुजराती के यहाँ नौकरी करते थे। यह उस गुजराती की ही लड़की है।"

"तो फिर क्या हुआ?"

"हुआ यह कि कोई ब्राह्मण इससे विवाह नहीं करेगा। मैं भी तो मालकिन के कहने पर ही तैयार हुआ था। अब मैं भी उससे विवाह नहीं करूँगा। इसका परिणाम यह होगा कि उसे या तो किसी मुसलमान से विवाह करना पड़ेगा, अन्यथा वह वेश्या का काम करेगी।

मोहनसिंह के रोंगटे खड़े हो गए। इस बात को इस प्रकार सुनते हुए उसके मन में आया कि सुब्बाराव के मुख पर कसकर एक चपत लगा दे, परन्तु जानता था कि उस गाँव में उसको कोई दूसरा दुभाषिया नहीं मिलेगा। इससे वह अपने क्रोध को भीतर ही भीतर पी गया। रंगा बाबू के सहस्रों रुपये खेतों पर व्यय हो चुके थे और वह इस प्रयास को विफल करना नहीं चाहता था।

उसने एक बात कही, "सुब्बाराव! हमारे देश में तो जब कोई वेश्या को भी अपने पास रखता है तो वह उसको पेशा करने को नहीं कहता। तुम कैसे आदमी हो कि अपनी होने वाली बहू को ही कह रहे हो कि वह वेश्या का पेशा करेगी?"

"पर मैं उससे विवाह नहीं करूँगा।"

"मालकिन कहेगी, तब भी नहीं?"

"मालकिन अब नहीं कहेंगी।" यह कहकर वह क्रोध में उठ वहाँ से चला गया।

: ९ :

यह सब कुछ होने पर भी सुब्बाराव ने दुर्गा की मालकिन से शिकायत नहीं की। हाँ, अगले दिन से मोहनसिंह ने अपना खाना स्वयं बनाना आरम्भ कर दिया। सुब्बाराव ने बताया कि रंगा बाबू के सम्बन्धियों ने मज़दूरों को खेतों पर काम करने से मना किया था, परन्तु वे यत्न में सफल नहीं हो सके। मोहनसिंह मज़दूरों को नकद वेतन देता था और आवश्यकता पड़ने पर वह कुछ पेशगी भी दे देता था। रंगा बाबू ने इस अर्थ मोहनसिंह को कुछ रुपया दे रखा था। फिर उसकेपास अपना रुपया भी था। इस कारण कामों की सुख-सुविधा का वह ध्यान रखता था और वे भी उससे प्रसन्न थे।

मोहनसिंह ने जब अपना खाना स्वयं बनाना आरम्भ किया तो कुमारस्वामी सुब्बाराव को लेकर उसके पास पूछने आया कि उसने ऐसा क्यों किया है। मोहनसिंह ने कह दिया, "मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ परंतु मैं अपने ढंग से खाना बनाना चाहता हूँ। यहाँ कोई भी आदमी हमारे देश का खाना बनाना नहीं जानता।"

इस पर कुमारस्वामी ने कहा, "कहो तो दुर्गा तुम्हारी इच्छा के अनुकूल बनाकर ले आया करे। तुम उसको समझा दोगे तो वह समझ जाएगी।"

"जी नहीं! मैंने सुना है कि वह सुब्बाराव की होने वाली पत्नी है और मैं नहीं चाहता कि सुब्बाराव की पत्नी मेरे लिए खाना बनाए।"

"मैं सुब्बाराव की इच्छा से कह रहा हूँ।"

"जी नहीं। यह ठीक नहीं। मेरा विचार है कि शीघ्र ही उसका विवाह कर देना चाहिए।"

उनकी बातचीत में सुब्बाराव दुभाषिये का काम कर रहा था। इस कारण मोहनसिंह की बात सुन वह हँस उठा। जब कुमारस्वामी चला गया तो सुब्बाराव ने प्रसन्नता में उबलते हुए कहा, "सरदार! मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। तुम्हारी इस बात से मालिक मेरे विवाह का प्रबन्ध कर देंगे। मैं तो कोई दूसरी ही बात समझा था। मैं समझता था कि कदाचित् तुम दुर्गा को अपने पास रखना चाहते हो। अब पता चला कि तुम उसका मेरे साथ विवाह पसन्द करते हो।"

मोहनसिंह को अब समझ आया कि सुब्बाराव क्यों उसको भोजन स्वयं बनाने में सहायक हो रहा था। इसपर भी वह यह उचित समझता था कि यदि यह बात ठीक है, तब तो उसका विवाह जल्दी ही हो जाना चाहिए परन्तु सुब्बाराव के कहने के उत्तर में बोला, "एक बात है। तुम तो कहते थे कि तुम उससे विवाह नहीं करोगे ?"

"यह बात मैंने क्रोध में कह दी थी। उसने मुझे म्लेच्छ कहकर मेरी माँ को गाली दी थी। मैंने भी उसको माँ की गाली दी थी। वास्तव में दुर्गा जैसी लड़की इस सारे देहात में नहीं है। मैं उससे विवाह के लिए इच्छुक हूँ।"

इस पर भी दुर्गा का विवाह नहीं हो रहा था। मोहनसिंह तो अपना खाना स्वयं बनाने लगा था, इस कारण दुर्गा का वहाँ आना-जाना बन्द हो गया था। मोहनसिंह ने भी इस विषय पर कभी बातचीत नहीं की। उसके पास इस प्रकार की बातों के लिए अब समय ही नहीं रहा था। वह अपने खेतों के काम में सब कुछ भूल गया था। अपने लिए तो वह केवल इतना करता था कि दिन में एक बार भोजन बनाता था और दो बार खा लेता था।

समय व्यतीत होने के साथ वह वहाँ की भाषा भी जानने लग गया। परिणामस्वरूप सुब्बाराव की आवश्यकता अब कम पड़ रही थी। अब वह स्वतंत्र रूप से खेतों में काम करने वालों से बातचीत कर सकता था।

खेतों में समय पर बीज डाल दिया गया और उपज उचित खाद के प्रयोग के कारण बहुत अच्छी हुई। सिंचाई, निराई तथा देखभाल बहुत ही भली प्रकार से होने के कारण पच्चीस बीघा भूमि हरे-नीले पत्तों से लहलहा उठी।

इस समय तब तम्बाकू के पत्तों के सुखाने का प्रबन्ध भी हो गया था। एक बहुत बड़ा लकड़ी का शेड बनवाया गया था। उस शेड को गरम और सूखा रखने के लिए उसमें गरम हवा भेजने का प्रबन्ध किया गया और वर्षा आदि से माल को बचाने के लिए पर्दे बनवा लिए गए।

रंगा अय्यर कोचीन के कृषि-विभाग के कर्मचारियों की राय से लिखता रहता था कि किस समय क्या-क्या प्रबन्ध करना चाहिए और मोहनसिंह उसके पत्र के अनुसार प्रबन्ध करता रहता था।

मोहनसिंह को काम करते हुए छः मास से ऊपर हो चुके थे और इस काल में रंगा बाबू कई चक्कर वहाँ के लगा चुका था। वह मोहनसिंह को परिश्रम और समझदारी से काम करते देख बहुत प्रभावित हुआ था। यही कारण था कि इस काम में उसने अपना दस हज़ार नकद लगा दिया

था।

तम्बाकू की पत्ती काटकर डोरी से शेड में लटका दी जाती और फिर एक पंखे से उसमें गरम हवा चलाई जाती थी। परिणामस्वरूप वह पन्द्रह-बीस दिन में सूखने के स्थान दो ही दिन में सूख जाती थी और पश्चात् पेटियों में बन्द कर मद्रास सिगरेट अथवा सिगार फैक्टरियों को भेज दी जाती थी।

सब फसल पैदा करने, काटने और सुखाने में एक वर्ष लग गया और इस समय में दूसरी पच्चीस बीघा भूमि में बीज डाल दिया गया था और सिंचाई आरम्भ हो गई थी।

पहला माल सारा फैक्टरियों को जा चुका था। रुपया वसूल हो चुका था और उसका हिसाब करने रंगा बाबू गाँव में आया हुआ था। रंगा अय्यर ने मोहनसिंह को अपने ससुराल ही बुला लिया था और वहाँ पर ही उसको सब हिसाब समझा दिया। उसने बताया कि सम्पूर्ण उपज पचास हज़ार पौंड हुई है। कुल एक हज़ार पेटियाँ यहाँ से भेजी गई थीं। प्रत्येक में पचास-पचास पौंड भरी गई थी। प्रति पेटी चालीस रुपया मिला था। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल चालीस हज़ार रुपया आय हुई थी। सारा खर्च, भूमि का, मशीनों तथा इमारतों की घिसाई आदि मिलाकर पन्द्रह हज़ार हुआ था। इस प्रकार नकद लाभ पच्चीस हज़ार हुआ और उसका आधा साढ़े बारह हज़ार मोहनसिंह के नाम हिसाब में डालकर बैंक में जमा करा दिया गया है।

मोहनसिंह इस हिसाब को सुन तथा लाभ देख बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने रंगा बाबू को धन्यवाद दिया और कहा, "मैं अब अपने पिता और भाइयों को मुख दिखाने के योग्य हो गया हूँ। यद्यपि यह मेरे स्वप्नों से कम ही है परन्तु दिल्ली रहकर तो इतना कुछ कदापि नहीं हो सकता था।"

रंगा ने इसका कारण बता दिया, उसने कहा, "मोहनसिंह! वास्तव में तुमको नगरों की आय के कारण का पता नहीं था। आय तब होती है, जब परिश्रम के साथ सरमाया और युक्ति का सम्मिश्रण हो जाए। नगरों में, जहाँ इन तीनों बातों के बिना आय होती हो, तो समझ लो कि कहीं न कहीं अवश्य धोखाधड़ी हो रही है। ईमानदारी की कमाई नगरों में हो अथवा देहात में, इन तीनों बातों के मिलने से ही संभव है। मैंने अपनी योजना में तुम्हारा परिश्रम और अपना सरमाया मिलाकर तथा कुछ ज्ञान, जो मुझको था, मिलाकर यह सब कुछ कर दिखाया है। ये तीनों बातें अकेले-अकेले कुछ भी फलदायक नहीं हो सकतीं। अब तुम अमीरी के मार्ग पर चल पड़े हो और मैं समझता हूँ कि एक-दो वर्षों में ही तुम

अपन घर अच्छा खासा धन भेज सकोगे। अपनी बीवी को भी तुम किसी भी समय बुला सकोगे।

"मेरी राय मानो, अपनी लकड़ी के 'केबन' के साथ एक और 'केबन' बनवालो और अपनी बीवी और बच्चों को यहाँ ले आओ। कुछ ही वर्षों में तुम लाखों के नहीं तो हज़ारों के मालिक तो हो ही जाओगे।"

रंगा के ससुराल वालों ने भी इस हिसाब को सुना था। जब दुर्गा ने इस आय की बात सुनी तो उसको भारी प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता को प्रकट किए बिना वह नहीं रह सकी। रंगाबाबू तो उसी सायंकाल चले गए और अगले दिन मध्याह्नोत्तर दुर्गा मोहनसिंह के घर आ पहुँची।

सीढ़ियों पर चढ़ और प्लेटफार्म पर खड़े होकर उसने दरवाज़ा खट-खटाया तो मोहनसिंह ने दरवाज़ा खोल दिया। वह दुर्गा को वहाँ देख चकित रह गया। उसने विस्मय में पूछा, "क्या बात है दुर्गा? कैसे आई हो?"

मोहनसिंह दरवाज़े पर ही खड़ा उससे पूछ रहा था। इस कारण दुर्गा ने कहा, "भीतर नहीं आने दोगे?"

"यह ठीक नहीं प्रतीत होता।"

"क्यों?"

मुब्बाराव कहता था कि तुम एक युवा लड़की हो···। आगे वह कह नहीं सका। पर दुर्गा ने कह दिया, "तो क्या हुआ? युवा लड़कियाँ पुरुषों को खाती नहीं।"

"परन्तु पुरुष तो युवा लड़कियों को खा जाते हैं।"

"तुम मुझको खा जाओगे? तो खा जाओ। चलो भीतर।"

मोहनसिंह भीतर हो गया तो वह उसके पीछे भीतर आकर खड़ी हो गई। मकान अति गन्दा हो रहा था। कई दिन से सफाई आदि कुछ नहीं हुई थी। प्रातः की रोटी के बर्तन अभी तक गन्दे पड़े थे। इस प्रकार सब अस्त-व्यस्त देख दुर्गा ने कहा, "बहुत गन्दे रहते हो तुम। सफाई भी नहीं कर सकते?"

"सप्ताह में एक बार करता हूं। कल सफाई करने का दिन था, परन्तु रंगा बाबू के आ जाने के कारण हो नहीं सकी।"

"नित्य क्यों नहीं करते?"

"मुझको स्वयं ही करनी पड़ती है। खेत में काम करता हूं, नौकरों का प्रबन्ध करता हूं; सुब्बाराव से तुम्हारी भाषा सीखता हूँ, रोटी बनाता हूं और बर्तन साफ करता हूं। इतना कुछ करने के पश्चात् घर की सफाई के लिए समय ही नहीं बचता।"

"तो किसी को काम के लिए नौकर रख लो न। अब तो तुम बहुत धनी हो गए हो।"

"कौन कहता है ?"

"रंगा बाबू आए थे और बता गए हैं कि तुमको साढ़े बारह हज़ार की आय हुई है।"

"ओह ! तो वे तुमको बता गए हैं ?"

"मुझको तो नहीं। वे मालिक को बता रहे थे और हम सब सुन रहे थे। इसी कारण मैं बधाई देने आई हूं।"

"तुम बहुत अच्छी हो, दुर्गा ! आज प्रातःकाल सुब्बाराव आया था और कह रहा था कि रंगा बाबू के भाइयों को जब पता चला तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। गांव के कुछ अन्य लोग भी मुझसे ईर्ष्या करने लगे हैं। इतनी बड़ी आय इस गांव में किसी को नहीं होती।"

"मैं कहती हूँ कि घर का काम करने के लिए किसी को नौकर रख लो। वह तुम्हारे घर की सफाई कर दिया करेगा; तुम्हारे कपड़े धो दिया करेगा, रोटी बना दिया करेगा और बर्तन साफ कर दिया करेगा।"

"कौन है यहां, जो मेरा काम कर सकता है ?"

"एक है। कहो तो उससे पूछूं ?"

"ईमानदार नौकर चाहिए। रंगा बाबू के बहुत से रुपए यहां पड़े रहते हैं। फिर वह स्वयं भी साफ-सुथरा होना चाहिए। सबसे बड़ी बात है कि मेरा खाना बनाना उसको आएगा क्या ?"

"मैं उसको जानती हूं। ईमानदार है, साफ-सुथरा है। रोटी बनाना सिखा देना, सीख लेगा।"

"वेतन क्या लेगा।"

"रोटी कपड़ा तो लेगा ही और जो कुछ तुम अपनी इच्छानुसार दोगे।"

"अच्छा, उसको लाकर दिखाना। वेतन इतना दूंगा कि उसको देहात में और कहीं से इतना नहीं मिल सकेगा।"

"कब लाऊं ?"

"जिस समय तुमको अवकाश हो और वह आना चाहे।"

"मुझको तो अभी अवकाश है। कहो तो ले आऊं ?"

"हां, ले आओ। कितनी देर में लाओगी ?"

"अभी। वह नौकर तुम्हारे सामने बैठा है।"

"तुम.? दुर्गा ! तुम मेरी नौकरी करोगी ?"

"हां क्या हानि है ? मैं वेतन बहुत कम लूंगी।

मोहनसिंह ने गम्भीर होकर कहा, "नहीं ! मैं तुमको नौकर नहीं रख सकता ।"

"क्यों ?"

"तुम तो नौकर नहीं, मालकिन बनने के योग्य हो । मालकिन तुम बन नहीं सकतीं । तुम किसी अन्य की मालकिन बनने जा रही हो । अब तुम जाओ । यहां बहुत देर तक बैठे रहने से गांव वाले तुम्हारी चिन्ता करेंगे ।"

यह सब व्यर्थ है । मैं मालकिन बनने के योग्य नहीं हूं । जिसकी मालकिन बनने के लिए तुम कह रहे हो, वह मुझसे अब शादी नहीं करेगा । उस दिन सुब्बाराव ने मुझे बिना विवाह के घर रखने का यत्न किया था । इस पर मैंने उसको वह सुनाई कि वह मुझको अपना मुख नहीं दिखा सकता । पड़ोस में एक मोपला ज़मींदार का बेटा सौदागरी करता है । वह हमारे गांव में बसाती की वस्तुएँ बेचने आया करता है । एक दिन वह कह रहा था कि मैं उसके साथ चली चलूं तो वह मुझको बहुत ही सुखपूर्वक रखेगा । मैं नहीं जाना चाहती थी । कुमारस्वामी कहता था कि या तो मैं सुब्बाराव के घर चली जाऊँ, नहीं तो मैं उस मोपला सौदागर के घर चली जाऊँ । उनका विचार है कि मेरे साथ कोई हिन्दू विवाह नहीं करेगा ।"

"तो तुम क्या कहती हो ?"

"मैं कहती हूँ कि यदि तुम मुझको नौकर रख लो तो तुम्हारे डर से मेरा कोई अपमान नहीं करेगा ।"

"मैं तो यह समझता हूँ कि मेरे पास नौकरी करने से तुम्हारा और अधिक अपमान होगा ।"

"नहीं । मैं तो नौकरी करूँगी न और तुम अपने नौकर की गुंडों से रक्षा नहीं करोगे क्या ? सब लोग यही समझेंगे कि मैं तुम्हारी पत्नी बन गई हूं । यह इतने अपमान की बात नहीं जितनी इस गांव में वेश्या बन जाना ।"

"तुम वेश्या क्यों बनोगी ?"

"तुम भी जंगली आदमी हो । मेरी बात समझते ही नहीं । कुमारस्वामी मुझको कुछ दिन बाद घर से निकाल देगा । वे एक युवा अविवाहित लड़की को घर में नहीं रखना चाहते । उनको भय है कि मैं खराब हो जाऊँगी । सुब्बाराव मुझे बिना विवाह के रखना चाहता है और जब मुझसे ऊब जाएगा तो मुझको वेश्यावृत्ति करने पर विवश कर देगा । गांव के लोग तो मुझे उस मोपला सौदागर के हाथ में भी दे देना चाहेंगे ।

मैं इनमें से किसी बात को भी पसन्द नहीं करती। बताओ, इन सबसे तुम्हारी नौकरी कैसे खराब है और सत्य ही बदनामी का काम करने से झूठ में बदनाम होना खराब है क्या ?"

"तो मैं जंगली हूं ? देखो, मैं तुम्हें समझाता हूं। तुम आओगी नौकरी करने और फिर बनना चाहोगी मेरी बीवी। तब मैं क्या करूँगा ? नौकर रखकर बदनाम तो हो ही जाऊँगा और तुम्हें बीवी बनाऊँगा तो पतित ही हो जाऊँगा।"

"मैं तुम जैसे आदमी की बीवी नहीं बनूंगी। मैं तो तुम्हारे पास इस कारण आना चाहती हूं कि तुम अच्छे और सबल आदमी हो और गांव के गुंडों से मेरी रक्षा कर सकोगे। फिर कभी तो मैं विवाह करूँगी ही। तब तुम मुझको छुट्टी दे देना।"

"पर तुम विवाह कब करोगी ?"

"जब कोई मेरे से विवाह करने आएगा।"

"और कोई नहीं आया तो ?"

"तो मैं विवाह नहीं करूँगी। जीवन भर कुंवारी रहूंगी। रोटी-कपड़ा तो तुम दोगे ही। फिर किस बात की चिन्ता है ?"

मोहनसिंह को समझ आया कि दुर्गा को अब गांव वाले तंग करने लगे हैं और कुमारस्वामी उसकी रक्षा करने में अपने को असमर्थ पाता है। इस पर भी कुमारस्वामी और रंगा बाबू के नाराज़ हो जाने का भय था और इसी कारण वह दुर्गा को नौकरी नहीं देना चाहता था। इतना विचार कर उसने दुर्गा से कहा, "देखो दुर्गा ! तुम एक बहुत भारी ज़िम्मेदारी मेरे सिर पर लादना चाहती हो। इस कारण मुझको विचार करने का समय दो। दो-तीन दिन में मैं तुमको बता सकूंगा कि मैं तुमको नौकर रख सकूंगा अथवा नहीं।"

"इसमें सोचने की क्या बात है ? मैं कुमारस्वामी के घर की नौकरी छोड़ तुम्हारे घर नौकरी करने आती हूं। लोग कुछ दिनों तक निन्दा करेंगे। फिर वे भूल जाएँगे। इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ?"

"मैं एक बार कुमारस्वामी से मिलकर पता कर लूं ?"

"कब पता करोगे ?"

"दो दिन में।"

: १० :

दुर्गा चली गई तो मोहनसिंह इस समस्या पर विचार करने लगा।

दुर्गा ने उसे कुछ कहा था, जिस पर उसको विश्वास नहीं होता था। दुर्गा ने कहा था कि सुब्बाराव उसको बिना विवाह के घर बैठाना चाहता है। वह सुब्बाराव को ऐसा आदमी नहीं समझता था और वह इस विषय में जांच करना चाहता था। दूसरी बात दुर्गा ने यह कही थी कि कुमार-स्वामी उसको शीघ्र ही घर से निकाल देगा, क्योंकि वह एक अविवाहित युवा लड़की को घर नहीं रख सकता। यह बात भी जानने योग्य थी। इसके अतिरिक्त गांव के कुछ लोग उसको वेश्या बनाने के लिए उत्सुक थे। इसकी तो गांव वाले निन्दा नहीं करेंगे, परन्तु उससे विवाह करने के लिए कोई तैयार नहीं। ये सब बातें और इनका कारण भी वह जानना चाहता था। इसके साथ ही वह समझता था कि यदि वह उसको अपने घर रखेगा तो कदाचित् उसका ही उससे सम्बन्ध बन जाए। क्या अपनी पहली पत्नी के जीवित रहते यह उसके प्रति अन्याय नहीं?

अगले दिन उसने सुब्बाराव को, जब वह खेत में काम करने वालों के साथ आया, एक ओर ले जाकर पूछा, "सुब्बाराव! तुम दुर्गा से विवाह कब करोगे?"

"मैं उससे विवाह नहीं करूंगा।"

"क्यों?"

"उसका विवाह एक मोपला सौदागर से होगा।"

"एक मुसलमान के साथ क्यों?"

"इसलिए कि वह वर्णसंकर है। एक ऐसे बाप की बेटी है, जिसके साथ उसकी मां का विवाह नहीं हुआ था।"

"पर तुमने तो कहा था कि उससे विवाह करोगे।"

"मैं बिना विवाह के उसको अपनी पत्नी बनाना चाहता था। इसके लिए अब भी तैयार हूं।"

"मान लो वह तुम्हारे अतिरिक्त किसी और आदमी के साथ जाकर रहने लगे तो गांव वाले उसको बुरा-भला तो नहीं कहेंगे?"

"यदि वह कोई ब्राह्मण हुआ तो गांव वाले उस ब्राह्मण की निन्दा करेंगे।"

उस ब्राह्मण की तुम निन्दा कर लेना। पर तुम दुर्गा की तो निन्दा नहीं करोगे न?"

"लोग उस ब्राह्मण की इतनी निन्दा करेंगे कि वह दुर्गा को छोड़ देगा। पश्चात् वह वेश्यावृत्ति करने लगेगी।"

"यदि वह आदमी उसको न छोड़े तो क्या करोगे?"

"तो हम उसको छोड़ देंगे।"

"तुम्हारे छोड़ देने से क्या होगा ?"

"वह इस गांव में रह नहीं सकेगा।"

"गांव से कैसे निकालोगे ?"

"मार-मार कर।"

मोहनसिंह समझ गया कि दुर्गा क्यों उसके पास आकर रहना चाहती है। वह जानती है कि वह उसकी गांव वालों के विरुद्ध रक्षा कर सकेगा। उसी मध्याह्न पश्चात् वह रंगा बाबू की ससुराल जा पहुंचा। कुमारस्वामी घर पर ही था। उसने यहां पर बात दूसरे ही ढंग से की। उसने कहा, "कुमारस्वामी ! दुर्गा तुम्हारे यहां से नौकरी छोड़ रही है क्या ?"

"क्यों ? क्या बात हुई है ?"

"वह नौकरी ढूंढ़ती फिरती है।"

"सच ? किसके पास गई थी ?"

"मेरे पास आई थी। मुझको एक ऐसे नौकर की आवश्यकता है, जो मेरे घर की सफाई इत्यादि कर सके। उसको यह बात कहीं से पता चल गई तो वह मेरे पास नौकरी करने आ गई। मैंने उसको कहा है कि मैं तुमसे पूछकर ही उसको नौकर रख सकता हूं।"

"पर तुम्हारे पास वह नौकरी कैसे कर सकती है ? तुम्हारी पत्नी क्या आने वाली है यहां ?"

"वह अभी नहीं आएगी। उसको यहां का जलवायु अनुकूल नहीं बैठेगा।"

"तो एक युवा लड़की को नौकर रखने का अर्थ लोग यह लेंगे कि तुम उसे अपनी पत्नी बना रहे हो।"

"यह अर्थ कैसे निकल गया ? मैंने तो यह नहीं कहा कि मैं उसको सुब्बाराव की भांति अपने घर ले जाकर रखूंगा।"

"तो यह बात उसने तुमको बताई है ?"

"उसने नहीं बताई। यह तो सुब्बाराव स्वयं कह रहा था। उसने मुझको कहा है कि वह उसके साथ विवाह नहीं कर सकता। हां, यदि वह उसके घर में ऐसे ही चलकर रहे, तो ले चलेगा।"

देखो मोहनसिंह ! हमारी समाज की रिवाज ऐसी ही है। वह बिना बाप की बेटी है। उसका ब्राह्मण समाज में विवाह नहीं हो सकता। ब्राह्मणों को छोड़कर वह किसी के भी घर जाकर रहे तो हमें आपत्ति नहीं होगी। हां, यह बात है कि यदि वह तुम्हारे घर में गई तो रंगा बाबू के भाई-बन्धु, तुम्हारे पहिले ही विरुद्ध हैं, गांव में भारी हल्ला उठाएंगे और कोई बलवा हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।"

मोहनसिंह को पूर्ण, परिस्थिति समझ में आ गई। वह वापिस खेतों में आया तो उसने अपने मज़दूरों से बातचीत करनी चाही। खेतों में काम करने वालों का एक मेट कृष्ण नाम का नायर था। मोहनसिंह ने उसको बुलाकर पूछा, "कृष्ण ! दुर्गा को जानते हो ?"

"कौन दुर्गा ? वही तो नहीं, जो कुमारस्वामी के घर रहती है ?"

"हां, वही।"

"उसकी क्या बात है बाबू ?"

"सुना है कि उसका विवाह एक मुसलमान सौदागर से किया जा रहा है।"

"सुना तो मैंने भी है। परन्तु यहां के ब्राह्मणों की बात आप नहीं जानते। वे न तो उस लड़की से स्वयं विवाह करेंगे और न ही उसका विवाह किसी ब्राह्मण से होने देंगे। परिणाम यह होगा कि या तो वह वेश्या बनेगी अथवा किसी मुसलमान के घर चली जाएगी। इससे तो अच्छा यही है कि ये आप ही उसका विवाह किसी मुसलमान से करदें।"

"और किसी नायर से क्यों नहीं ?"

"ये ब्राह्मण नहीं मानेंगे। यदि किसी अब्राह्मण से उसने विवाह कर भी लिया तो सारे गांव वाले उसके विरुद्ध हो जाएंगे और उस आदमी को गांव से निकालकर ही दम लेंगे।"

"यदि कोई अब्राह्मण उसको अपने पास रख ले तो क्या तुम भी उसके विरुद्ध हो जाओगे ?"

"हमको क्या आवश्यकता है कि उसका विरोध करें ?"

"अच्छा ऐसा करो। तुम यहां के सब ब्राह्मणों से पूछकर बताओ कि वे क्या करेंगे। मेरी सम्मति यह है कि इस लकड़ी को मुसलमान होने से बचाया जाए। यदि कोई उससे विवाह करने वाला मिल गया, तो मैं उसके विवाह में सहायता दूंगा।"

"इस पर भी मैं समझता हूँ कि यहां का कोई अब्राह्मण उससे विवाह करने के लिए तैयार नहीं होगा।"

' मैं यह नहीं कह रहा कि यहां का कोई अब्राह्मण तैयार हो जाएगा। मेरा मतलब यह है कि तुम सब अब्राह्मण मिलकर उसकी रक्षा करोगे या नहीं ?"

"बाबू ! यदि तुम तैयार हो जाओ तो सारे अब्राह्मण तुम्हारे साथ हो जाएंगे।"

कृष्ण नायर ने अपने साथियों से बात की और उन्होंने अपने साथियों से। परिणाम यह हुआ कि बात गांव भर में फैल गई। यह बात कुमार-

स्वामी के पास भी पहुंची। उसको बताने वाले ने बताया कि मोहनसिंह कहता था कि यदि दुर्गा का विवाह किसी मुसलमान से किया गया तो वह उसकी रक्षा करेगा और उसका विवाह किसी अब्राह्मण से कर देगा। कहीं ब्राह्मणों ने दुर्गा तथा उससे विवाह करने वालों का विरोध किया तो वह अपने देश के आदमी बुलाकर भी उसकी रक्षा करेगा।

कुमारस्वामी ने यह बात सुनी तो बहुत चिन्ता अनुभव करने लगा। इस सबका परिणाम यह हुआ कि दुर्गा के विवाह की बात मोपला सौदागर से रुक गई।

: ११ :

मोहनसिंह के मन में यह प्रश्न उठा कि यदि दुर्गा उसके पास सहायता के लिए आए तो वह उसको इन्कार करे अथवा न ? उसके मन में यह बात अभी आ नहीं सकी कि एक हिन्दू लड़की किसी मुसलमान से विवाह करने पर विवश कर दी जाए। इस कारण ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर दुर्गा की सहायता करने से पीछे नहीं हटेगा, ऐसी धारणा कर लेने पर उसने मन में यह निश्चय कर लिया कि यदि वह उसके पास नौकरी के लिए आई तो वह उसे नौकर भी रख लेगा। इसके बाद जो भी परिस्थिति होगी, उस पर उसने विचार किया था। वह समझता था कि सब लोग उसको कहेंगे कि उसने लड़की से अनुचित सम्बन्ध बना लिया है। इस कारण भारी झगड़ा होगा और कदाचित् कुमारस्वामी और रंगा बाबू भी इस बात को पसन्द न करें। वह तो यहां तक विचार करता था कि उसको काम छोड़कर यहां से चला जाना भी पड़ गया, तो भी वह शोक नहीं करेगा।

एक प्रश्न उसके मन में अभी भी उठ रहा था कि क्या यह संभव है कि उसका दुर्गा से पति-पत्नी का सम्बन्ध बन जाए ? क्या यह वांछनीय है ? क्या ऐसा सम्बन्ध बन जाने से वह सदा के लिए केवली से पृथक् नहीं हो जाएगा ? इन प्रश्नों के मन में उठने पर वह कांप उठता था। इस पर भी एक बात वह निश्चय कर चुका था कि वह दुर्गा को मुसलमान नहीं होने देगा और उसके लिए हर प्रकार के कष्ट सहन करेगा।

मोहनसिंह दुर्गा के आने की प्रतीक्षा करता रहा, परन्तु वह नहीं आई। इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गए और उसका उसे कोई समाचार नहीं मिला। इस समय उसने अपने लकड़ी के मकान को बड़ा कर लिया। उसने प्लेटफार्म को और बढ़ा लिया और दोनों कमरों के आगे

एक बरामदा बनवा लिया। प्लेटफार्म के नीचे रसोई पक्की करवा ली। वह मन में विचार कर रहा था कि अगली फसल के समेटने के साथ वह अपनी पत्नी और बच्चों को वहां ले आएगा और उनके साथ सुखपूर्वक रहेगा।

यह ठीक था कि तम्बाकू की खेती की आय पर्याप्त होती थी। साथ ही गन्ने के खेतों में भी आय कम नहीं होती थी। इस बात को वह जब सोचता था तो उसको घर छोड़कर यहां परदेस में आने पर शोक होने लगता था। वह समझता था कि वह व्यर्थ ही पिता से झगड़ा कर यहां आया है। इस प्रकार के विचार मन में आने पर तो वह घर लौट जाने की बात विचार करने लगता था। इसमें एक भारी बाधा थी। उसके कारण ही रंगा बाबू ने उन खेतों में एक भारी रकम लगा दी थी और ऐसे समय खेतों को छोड़कर चले जाना, उसको रंगा बाबू के साथ धोखा देना प्रतीत होता था।

एक दिन उससे नहीं रहा गया और उसने सुब्बाराव से दुर्गा के विषय में पूछ ही लिया। उसने पूछा, "सुब्बाराव ! दुर्गा का क्या हुआ ?"

"होगा क्या ? वह मुसलमान के घर जाना नहीं चाहती। मेरे पास आकर रहना नहीं चाहती और उसका किसी ब्राह्मण अथवा अब्राह्मण से विवाह होगा नहीं।"

"तो फिर ?"

"मुझको तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उसका सम्बन्ध कुमारस्वामी के बड़े लड़के से हो जाएगा। कुमारस्वामी भी इसको समझ रहा है, परन्तु क्या करे। वह एक बहुत ही हठी लड़की है।"

मोहनसिंह इसका अर्थ यह समझा था कि दुर्गा का भविष्य अन्धकारमय है। परन्तु वह कर ही क्या सकता था ! उसने मन में निर्णय किया हुआ था कि वह स्वयं उसकी बातों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। हां, यदि वह उससे सहायता मांगने आई तो वह उसकी सहायता अवश्य करेगा।

दूसरे वर्ष की फसल तैयार होकर पेटियों में बन्द हो रही थी और सब गांव वाले इस वर्ष पहिले से भी अधिक आय होती देख चकित हो रहे थे। इन दिनों में एक दिन काम करते रात बहुत देर हो गई। अंधेरी रात थी और हाथ पसारा नहीं सूझता था। मोहनसिंह काम बन्द कराकर जब अपनी कुटिया लौटा तो उसका पांव बरामदे में किसी चीज़ से अटक गया। उसने टार्च जलाकर उस वस्तु पर रोशनी फेंकी तो देखा कि एक स्त्री मुख और सिर पर चादर लपेटे हुए दीवार की ओर मुख किए हुए बैठी है।

मोहनसिंह ने पूछा, "कौन है ?"

बिजली की टार्च का प्रकाश देख उस स्त्री ने अपने सिर और मुख पर से चादर हटाकर मोहनसिंह के मुख पर देखा। यह दुर्गा थी। मोहनसिंह उसको इस प्रकार वहां बैठे देख आश्चर्य से पूछने लगा, "तुम इस समय यहां क्या कर रही हो ?"

"भीतर चलकर बताऊंगी।"

मोहनसिंह किसी विशेष घटना की आशंका कर अपना कर्त्तव्य निश्चय करने के लिए विचार करने लगा। इस समय दुर्गा ने खड़े होकर कहा, "मैं इस समय यहां आने पर विवश हो गई हूं।"

मोहनसिंह ने अपना कर्त्तव्य निश्चय कर कहा, "आओ, भीतर आ जाओ।"

उसने दरवाजा खोला और दुर्गा को भीतर कर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। लैम्प जलाकर उसने दुर्गा का पीला मुख देखा तो कहा, "बैठ जाओ।"

दुर्गा बैठ गईतो मोहनसिंह ने सामने बैठते हुए पूछा, "अच्छा बताओ, आज यहाँ क्यों आई हो ?"

"मैं अपनी इच्छा से नहीं आई। मैं घर से निकाल दी गई हूँ।"

"क्यों ?"

"पिछली बार जब मैं तुमसे मिलकर गई थी तो कह गई कि दो दिन बाद आकर पूछ जाऊंगी कि तुम नौकर रखोगे या नहीं। मेरे आने से पूर्व ही कुमारस्वामी ने मुझे बुलाकर कहा कि मैं उनके घर में जब तक चाहूं रह सकती हूं और वह मुझको घर से निकालेगा नहीं। इस कारण मेरे यहाँ आने की आवश्यकता नहीं रही। इतना ही नहीं बल्कि मालकिन ने मुझको यह भी कहा था कि मैं तुम्हारी नौकरी न करूं, इससे ब्राह्मण जाति का बहुत अपमान होगा। मैंने उनसे पूछा कि यदि मैं किसी मुसलमान से विवाह दी गई तो इससे क्या अपमान नहीं होगा ? इस पर उसने कहा कि मुसलमान से तो उसके धर्म के अनुसार विवाह हो जाएगा। हिन्दू धर्म के अनुसार मेरा विवाह हो नहीं सकता। इस कारण मैं किसी भी हिन्दू के घर बिना विवाह के ही जा सकती हूँ। मालकिन का विचार था कि यह तो बहुत ही बुरी बात होगी। मुझको उसकी यह बात तो समझ नहीं आई और न ही मैंने पसन्द की। मैंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं मुसलमान से विवाह नहीं करूँगी। यदि मुझको ऐसा करने के लिए विवश किया गया तो मैं भागकर तुम्हारे पास आ जाऊँगी। इस पर मालकिन ने यह आश्वासन दिया कि मेरा विवाह मेरी इच्छा के बिना किसी

से नहींकरेंगी और मैं उनके घर पर ही रहूँ।

"इस प्रकार बात टल गई। इधर लगभग एक मास से कुमारस्वामी का बड़ा लड़का छुट्टियों में घर आया हुआ है और मुझको पतित करने का यत्न कर रहा है। मैं उससे बचने का यत्न करती रहती हूँ। आज सायंकाल वह मुझसे बलात्कार करना चाहता था। मुझको धोखे से अपने कमरे में बुलाकर दरवाज़ा बन्द करने लगा तो मैं समझ गई और उसको दरवाज़ा बन्द करने के रोकने से लिए अपनी बाँह बीच में दे बैठी और मेरी बाँह की यह अवस्था हुई है।"

इतना कह दुर्गा ने अपनी बाँह नंगी कर दिखा दी। वह सूजी हुई थी और बहुत ही बुरी तरह से छिल गई थी।

उसने बाँह दिखाते हुए कहा, "दरवाज़ा बन्द न कर सकने के कारण उसने मेरे बाल पकड़कर खींचने आरम्भ कर दिए। इससे दर्द के कारण मेरी चीख निकल गई और घर भर के लोग वहाँ एकत्रित हो गए। बात स्पष्ट थी। मेरा इसमें कोई दोष नहीं था। वे मुझको वहीं छोड़ लड़केको पृथक् कमरे में ले गए और एक घंटा भर उससे पूछताछ कर, और बिना मुझसे किसी प्रकार की जाँच किए मुझको तुरन्त घर छोड़ देने के लिए उन्होंने आज्ञा दे दी। मैं इस प्रकार वहाँ से निकलना नहीं चाहती थी। इस कारण वहाँ पर बैठ गई और कहने लगी कि मेरा इसमें कोई दोष नहीं। दोष तो छोटे बाबू का है। घर से निकालना है तो उनको निकालना चाहिए। पहिले तो वे मुझको डाँटते-फटकारते रहे, पीछे उन्होंने मुझे धक्के मार-मारकर घर से निकाल दिया। मैंने विचार किया है कि तुम तो मेरी सहायता करोगे ही और उनकी भाँति धक्के मार-मारकर नहीं निकालोगे।

"यहाँ आए मुझको दो घंटे से अधिक हो गए हैं। मेरा विचार था कि वहाँ सबके सामने जाने से वहाँ ही तुमसे पृथक् में बात करूँगी।"

मोहनसिंह ने इस समय तक अपना मन स्थिर कर, अपने व्यवहार का निश्चय कर लिया था। उसने कहा, "दुर्गा ! सामने रसोईघर में चली जाओ और वहाँ तैल रखा है। उसको घाव पर लगाओ और कपड़ा गरम कर सूजन पर सेंक करो। जाओ।"

मोहनसिंह ने रसोईघर की चाबी उसको दे दी और साथ ही दियासलाई की डिबिया देकर कहा, "लैम्प वहाँ रखा है, जला लेना।"

दुर्गा उठी और चाबी तथा माचिस की डिबिया लेकर रसोई में चली गई। मोहनसिंह ने अभी खाना नहीं खाया था। इस कारण वह भी वहाँ जाकर खाना गरम करने का विचार रखता था, परन्तु यह विचार कर

कि जब दुर्गा वहाँ से सेंककर लौट आएगी तो जाकर भोजन कर लेगा, वह बैठा रहा। उसका विचार था कि दुर्गा को पाँच-दस मिनट से अधिक नहीं लगेंगे। परन्तु जब आधे घंटे तक वह नहीं आईतो यह देखने के लिए कि वह वहाँ क्या कर रही है, वह रसोईघर में जा पहुँचा। उसको देख विस्मय हुआ कि वह उसके लिए दाल गरम कर, रोटियाँ गरम कर रही है। इस पर मोहनसिंह ने विस्मय में पूछा, "यह क्या कर रही हो दुर्गा ?"

"आपका खाना गरम कर रही हूँ।"

"क्यों ?"

"तो आप खाएँगे नहीं, क्या ?"

"पर तुम क्यों कर रही हो ?"

"आपने मुझको नौकर रख लिया है न ?"

"तो मेरी नौकरी करने आई हो ?"

"अपने विचार से तो यही करने आई हूँ।"

"अच्छी बात है। वह देखो थाली रखी है। उसमें रखकर ले आओ।"

मोहनसिंह ने समझ लिया कि इस परदेश में संघर्ष आरम्भ हो गया है। वह मन में निश्चय कर चुका था कि इस संघर्ष में यदि उसको वापिस अपने गाँव भी जाना पड़ा तो उसे कोई शोक नहीं होना चाहिए।

जब खाने का सामान ऊपर कमरे में आ गया तो दुर्गा ने एक थाली में मोहनसिंह के सामने रख दिया। इस समय मोहनसिंह को एक बात स्मरण हो आई। दुर्गा ने बताया कि झगड़ा सायंकाल हुआ था और झगड़े का अन्त हुआ है, उसको घर से निकालकर। इससे उसे समझ आया कि दुर्गा ने भी खाना नहीं खाया होगा। इस कारण उसने दुर्गा को कहा, "जाओ एक थाली और ले आओ।"

वह थाली लाई तो मोहनसिंह ने कहा, "अपने लिए इसमें से निकाल लो।"

"पहिले आप खा लें।"

"खा लूंगा, परन्तु तुम अपने लिए इसमें से निकाल लो।"

उसने दूसरी थाली में एक रोटी और थोड़ी सी दाल रख ली। मोहनसिंह के कहने पर उसने कटोरी में से थोड़ा सा मक्खन भी ले लिया। अब मोहनसिंह खाने लगा। चार रोटियाँ और कटोरा भरा दाल का तथा आधा पाव मक्खन खाकर दुर्गा को कहने लगा, "जाओ, अब तुम खा लो।"

दुर्गा एक ओर वहाँ ही बैठ गई और खाने लगी। रोटी दुबारा गरम करने से बहुत कुरकुरी हो गई थी और दुर्गा उसको बहुत चबा-चबाकर

खा रही थी। चावल खाने वाला प्राणी कुरकुरी रोटी खाने में स्पर अनुभव कर रहा था।

इस समय कुमारस्वामी और सुब्बाराव वहाँ आ गए, दुर्गा बिना झिझके खाती रही। उसके मुख पर से सन्तोष और निर्भीकता प्रकट हो रही थी। मोहनसिंह ने उठकर उनका स्वागत किया और उनको बैठाकर पूछने लगा कि वे किस कारण से आए हैं।

"तो यह यहाँ आ गई हैं?" कुमारस्वामी ने दुर्गा को देखते हुए कहा।

"हाँ, इसने मेरी नौकरी कर ली है।"

"क्या वेतन निश्चय हुआ है?" सुब्बाराव ने मुस्कराते हुए पूछा।

"रोटी-कपड़ा और पांच रुपया महीना।"

"और कुछ नहीं?"

"और क्या? क्या इतना वेतन पर्याप्त यहीं?"

सुब्बाराव ने होंठों को घुमाकर कहा, "एक युवा लड़की के लिए पांच रुपया पर्याप्त नहीं।"

"तो मुझसे लड़ने आए हो?" मोहनसिंह ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा।

"नहीं।" कुमारस्वामी ने बातचीत में ही काटकर कहा, "इसको यहाँ रखने से भारी झगड़ा होने का डर है।"

"मैं जानता हूँ और मैंने इसका प्रबन्ध कर लिया है।"

"क्या प्रबन्ध कर लिया है?"

"यह अभी नहीं बताना चाहता। कोई झगड़ा करना चाहता है तो आ जाए। उसको स्वयं ही पता चल जाएगा।"

कुमारस्वामी ने बात समाप्त करने के लिए कहा, "तुम्हारे साथ झगड़ा इस फार्म को भी हानि पहुँचा सकता है। यह फार्म रंगा बाबू का है। इस कारण हम अपने दामाद की हानि का विचार कर ही यहाँ तुम्हें समझाने आए हैं।"

"तो ऐसा करो कि रंगा बाबू को एक तार दे दो, जिससे वे यहाँ आ जाएँ और अपना फार्म समेट लें। पश्चात् मैं यहाँ से चला जाऊँगा।"

इस समय तक दुर्गा खाना खा चुकी थी। वह उठ खड़ी हुई और अपने तथा मोहनसिंह के बर्तन समेटने लगी। सुब्बाराव ने उसको जाते देख पूछा, "दुर्गा! तुम मेरे साथ चलोगी या नहीं?"

"नहीं।" दुर्गा ने गर्दन सीधी कर कहा। "तुम्हारे साथ क्यों जाऊँ?"

"मैं तुमको अपनी बीवी बनाकर रखूंगा।"

"हट। अपना रास्ता देखो। मैं यहाँ नौकरी करने आई हूँ और जब तक बाबू जी निकालेंगे नहीं, नहीं जाऊँगी।"

कुमारस्वामी ने सुब्बाराव को आंख से संकेत कर चलने के लिए कहा और दोनों चल पड़े। जब वे चले गए तो दुर्गा ने कहा, "मुझसे तो एक रोटी भी नहीं खाई गई, आप चार खा गए हैं।"

"मैं तुमसेबहुत बड़ा भी तो हूँ।"

"तो और पका दूं ?"

"नहीं। कोई आवश्यकता नहीं।"

"सवेरे किस समय उठते हो ?"

"सूर्य निकलने से एक घंटा पहिले।"

"सवेरे चाय पीते हो या कॉफी ?"

"कुछ नहीं।"

"यह तो ठीक नहीं। इतना परिश्रम करते हो, दुर्बल हो जाओगे।"

"दो वर्ष में अभी तक तो हुआ नहीं। अब तुम नज़र लगा दो पता नहीं।"

"मैं नज़र क्यों लगाऊँगी ?"

"तो मैं दुर्बल नहीं होऊँगा।"

अगले दिन मोहनसिंह को कृष्ण नायर ने बताया कि दुर्गा और उसके विषय में गाँव भर में चर्चा चल रही है। सब लोग यही कह रहे हैं कि तुमने एक ब्राह्मण कन्या को पतित किया है।

मोहनसिंह ने कहा, "कृष्ण! दुर्गा को कुमारस्वामी ने रात घर से निकाल दिया था और वह मेरे पास आ गई थी। वह नहीं जानती थी कि कहाँ जाए। अ भी वह मेरे यहाँ नौकरानी के रूप में है। नौकरानी के यह अर्थ कैसे हो गए कि मैंने उसे पतित किया है ?"

"सुब्बाराव कह रहा था कि उन्होंने रंगा बाबू को लिख दिया है। रंगा बाबू आकर आपको निकाल देंगे।"

"मुझको इस बात की चिन्ता नहीं। मुझको भय है तो इस बात का कि कहीं ये लोग मुझसे फौजदारी न कर बैठें। ऐसा हुआ तो मैं आठ-दस को मार ही डालूंगा।"

"बाबू! नहीं। ऐसा करने की किसी में हिम्मत नहीं। हम जितने भी लोग खेत में काम करने वाले हैं, सब आपकी रक्षा करेंगे। हमने भी आपस में बात की है। हमारा यह मत है कि रंगा बाबूआएँगे तो हम कह देंगे कि वे आपको न निकालें। यदि उन्होंने निकाला तो हम सब भी काम छोड़ देंगे।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि आप जैसा मालिक यहाँ कोई नहीं दिखाई देता। आपने किससे विवाह किया है, आपकी अपनी बात है। इसका खेत में काम से क्या सम्बन्ध ?"

मोहनसिंह धैर्य से और सतर्क रहकर रंगा बाबू की प्रतीक्षा करता रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि रंगा बाबू का अपने भाइयों से लम्बा पत्र-व्यवहार चल रहा है। किस-किस ने क्या लिखा है, मोहनसिंह को जानने की चिन्ता नहीं थी। वह गम्भीर हो अपने काम में लगा रहा।

एक दिन उसको रंगा बाबू की चिट्ठी मिली। मोहन अब रंगा बाबू की चिट्ठी सुब्बाराव से पढ़ाने के स्थान दुर्गा के पास ले गया। दुर्गा ने चिट्ठी पढ़कर उसका मतलब बता दिया। उसने कहा, "लिखा है कि मैं अगले रविवार को वहाँ पहुंच रहा हूँ।"

मोहनसिंह समझ गया कि दुर्गा के विषय में बातचीत होगी। इससे उसने कहा, "दुर्गा! तुम्हारे विषय में बातचीत होगी।"

"क्या बातचीत होगी ?"

"यह तो सुब्बाराव ही बता सकेगा।"

"मैं उस दुष्ट से बात तक नहीं करना चाहती।"

"बात तो रंगा बाबू ही करेंगे।"

"क्या कह सकते हैं वे ?"

"मैं समझता हूँ कि वे उसको तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए तैयार करेंगे।"

"पर अब तो बात पुरानी हो गई है। विवाह का तो प्रश्न ही नहीं खड़ा होता।"

"क्यों ?"

"वह म्लेच्छ है।"

"और मैं देवता हूँ।"

"पर आपसे विवाह तो नहीं हो रहा है ?"

"मेरे साथ तो यह होगा कि दिल्ली का टिकट कट जाएगा।"

"अर्थात् यह फार्म बन्द हो जाएगा।"

"हाँ, यह भी हो सकता है।"

"तब क्या होगा ?"

"मैं अपने घर लौट जाऊँगा।"

"और मैं ?"

"तुम भी मेरे साथ चल सकती हो। मैं तुम्हारा विवाह वहाँ किसी

अच्छे व्यक्ति से कर दूंगा।"

"पर मैं तो विवाह करना नहीं चाहती। ज़बरदस्ती कर दोगे क्या?"

"मैं कुमारस्वामी का लड़का तो हूँ नहीं, जो तुमसे बरजोरी करूँगा।"

"तो ठीक है। मैं तुम्हारे साथ पंजाब चलूंगी और वहाँ भी तुम्हारी नौकरी करूँगी।"

: १२ :

रंगा बाबू आए और दुर्गा को मोहनसिंह के बगल में रहते देख विस्मय में खड़े रह गए। मोहनसिंह उस समय खेत में काम कर रहा था। रंगा बाबू ने उससे पूछा, तुम यहाँ क्या कर रही हो?"

"मोहन बाबू का कमरा साफ कर रही हूँ।"

"क्यों।"

"उसकी नौकरी करती हूँ।"

"यही तो पूछ रहा हूँ कि उसकी नौकरी क्यों करती हो?"

"उसको नौकर की आवश्यकता थी और मुझको नौकरी की।"

"तुमने कुमारस्वामी की नौकरी छोड़ दी है क्या?"

"छोड़ी नहीं, उन्होंने निकाल दिया था।"

"क्यों निकाला था?"

"यह तो उन्हें ही मालूम होगा।"

"तुमने ज़रूर कोई खराबी की होगी।"

"अपनी जानकारी में तो कुछ नहीं किया।"

"पर यहां रहने से तुम्हारी बदनामी हो रही होगी?"

"मुझको उन झूठों की बात की चिन्ता नहीं।"

"पर मुझको तो है।"

"तो फिर आप चिन्ता कर सकते हैं। परन्तु मैं पूछती हूँ कि आपकी चिन्ता करने से क्या होगा? आप कुछ कर तो सकते नहीं। क्या आप झूठ और सत्य का निर्णय करेंगे?"

"मै निर्णय करने की आवश्यकता नहीं समझता। बदनामी करने वाले झूठ-सच नहीं विचारा करते। उनको तो निंदा करनी है, सो करते हैं।"

"तो फिर मैं क्या करूं? नौकरी न करूं तो गुज़ारा कैसे होगा?"

"तुम विवाह कर लो।"

"किससे विवाह करूं?"

"सुब्बाराव से।"

"मैं उसको अपने योग्य नहीं समझती।"

"क्या दोष है उसमें ?"

"एक तो वह पचास वर्ष का बूढ़ा है। दूसरा वह मुझको छिनार मानता है, तीसरा वह भूखा-नंगा है।"

"तो तुमको उससे अच्छा आदमी मिल रहा है ?"

"नहीं मिलेगा तो विवाह नहीं करूंगी।"

"तो विना विवाह के रहोगी ? रह सकोगी क्या ?"

"क्यों नहीं रह सकूंगी ? कुमारस्वामी की बहिन कैसे रह रही है ?"

"वह तो विधवा है। तुम विधवा तो नहीं।"

"मैं समझूंगी कि मैं भी विधवा हो गई थी।"

"कब से ?"

"जब से मां ने जन्म दिया था।"

रंगा बाबू दुर्गा को इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर करते देख चकित रह गया। उसने कहा, "अच्छा, जाओ। मोहनसिंह को बुला लाओ। कहो कि रंगा बाबू आए हैं।"

दुर्गा मोहनसिंह का कमरा बुहार रही थी, उसने बुहारी एक ओर रख दी और मोहनसिंह को बुलाने के लिए खेतों को चल दी।

मोहनसिंह आया तो रंगा बाबू को पत्ते सुखाने की शैड में ले गया। दोनों वहां कुसियों पर बैठ गए। बैठकर रंगा बाबू ने मोहनसिंह से दुर्गा के विषय में पूछा। मोहनसिंह ने कहा, "बाबू ! वह मेरी नौकरानी है। वह काम ठीक प्रकार से कर रही है, और मुझको उससे कोई भी शिकायत नहीं। इस कारण मैं उसको नौकरी से निकालूंगा नहीं। यदि आपको उससे कुछ भी सहानुभूति है और आप उसका किसी प्रकार का अनिष्ट मेरी नौकरी करने में समझते हैं, तो आप उसको समझाइए। वह जाएगी तो मैं उसको रोकूंगा नहीं।"

"पर वह अभी वेसमझ है। उसको अपने भले-बुरे का ज्ञान नहीं है। हम जो पढ़े-लिखे समझदार लोग हैं, उसके भले-बुरे को समझते हैं। उसको कष्ट से बचाने का यत्न कर रहे हैं।"

"तो करिए। मैं आपको इससे रोक नहीं सकता।"

"तुम उसको नौकरी से निकाल दो।

"वैसे ही जैसे कुमारस्वामी ने निकाल दिया था ?"

"उसने कोई खराबी की होगी, जिसकारण उन्होंने निकाला होगा।"

"इसका मुझको ज्ञान नहीं। मुझको यह पता तो है कि एक रात लगभग दस बजे वह मेरे पास रोती हुई आई थी और कहती थी कि कुमारस्वामी ने उसको धक्के मार-मारकर निकाल दिया है। तब से वह मेरे घर में काम कर रही है। उसने अभी तक कोई खराबी नहीं की। जब कुछ गड़बड़ करेगी तो मैं भी निकाल दूंगा।"

"देखो मोहनसिंह! मेरे लिए बहुत कठिनाई हो रही है। एक ओर कुमारस्वामी और दूसरी ओर मेरे भाई मुझको कह रहे हैं कि गांव के लोग इतने रुष्ट हैं कि किसी भी दिन शैड को आग लगा देंगे। पम्प को तोड़-फोड़ देंगे और तुमको अथवा दुर्गा को जीता ही इस मकान में जला देंगे।"

"यह तो बहुत बुरी बात होगी बाबू साहब! तो ऐसा करिए, आप आज ही चार्ज ले लीजिए और मेरा हिसाब कर मुझको विदा कर दीजिए।"

"तुम इस लड़की को निकालोगे नहीं?"

"निकालने में कोई कारण नहीं। मैं समझता हूं कि गांव वाले उस बेचारी पर अन्याय कर रहे हैं। मैं इस अन्याय में सम्मिलित होना नहीं चाहता।"

"अच्छी बात है। यदि तुम उससे विवाह कर लो, तब भी तो कुछ बात है।"

"यह क्यों? मेरा विवाह हो चुका है। मेरी पत्नी जीवित है और उससे मेरे दो बच्चे हैं। उनको कहां फेंक दूं?"

"तो दो बीवियां रख लो न।"

"मेरा मन नहीं मानता। साथ ही उसको मेरे पास रहते हुए तीन मास से ऊपर हो चुके हैं और उसने एक दिन भी तो इस बात की इच्छा प्रकट नहीं की। फिर आपके कहने से विवाह जैसी बात नहीं कर सकता। मेरी प्रार्थना है कि मुझको आज ही छुट्टी दे दीजिए। मैं पंजाब चला जाऊंगा।"

"ठीक है, तैयारी कर लो। दूसरे वर्ष की फसल तो बिक ही चुकी है। मैं हिसाब कर दूंगा। मैं अब यह झगड़ा समाप्त करना चाहता हूं।"

इस समय दोपहर का समय हो गया था। रंगा बाबू ने कहा, "मैं भोजन कर अभी आता हूं और तुम चलने की तैयारी करो। तुम्हारी जगह पर सुब्बाराव काम करेगा।"

मोहनसिंह यह बात सुनकर उठ खड़ा हुआ और पूछने लगा, "आप कब तक लौटेंगे? मैं तो एक घंटे में तैयार हो जाऊंगा।"

"हां, तब तक मैं आ जाऊंगा।

मोहनसिंह शैड से बाहर निकल आया। उसके पीछे-पीछे रंगा बाबू भी चला आया। रंगा बाबू अपने भाइयों के मकान की ओर गया तो मोहनसिंह ने खेतों से सब मज़दूरों को बुला लिया और उनको उस दिन तक का वेतन दे दिया। पश्चात् सबको बता दिया कि वह पंजाब जा रहा है। उसने यह भी कहा, "मैं यह वेतन इसलिए नहीं दे रहा कि आपको नौकरी छोड़ देनी चाहिए। परन्तु इसलिए कि अपने समय का मैं हिसाब कर जाऊं और आगे जो भी यहां का मैनेजर आएगा, उससे ले लेना।"

"तो बाबू ने निकाल दिया है आपको?" कृष्ण नायर ने पूछा।

"हां, इस कारण कि मैं दुर्गा को नौकरी से निकालना नहीं चाहता।"

"पर यह तो अन्याय होगा।"

"इसका निर्णय करने वाला मैं नहीं हूं।"

"तो हम बाबू से मिलकर बात करेंगे।"

"हां, कर लो। परन्तु मुझको इसमें कोई तत्त्व प्रतीत नहीं होता।"

मोहनसिंह अपने घर की ओर आया तो उसने देखा कि दुर्गा घर के बरामदे में खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है। उसने आते ही कहा, "मुझको लक्ष्मीदेवी जी ने बुलाया है।"

"तो जाओ। जल्दी आना। मैं सायंकाल चार बजे की बस से कोचीन जाने वाला हूं।"

"क्यों?"

"मेरी नौकरी यहां समाप्त हो गई है।"

दुर्गा एक क्षण तक भौंचक्की ही देखती रही। पश्चात् कहने लगी, "अच्छी बात है। मेरी प्रतीक्षा करना। मुझको छोड़ भाग नहीं जाना।"

मोहनसिंह विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। दुर्गा ने समय व्यर्थ गंवाना उचित नहीं समझा। वह लम्बे-लम्बे पग उठाती हुई रंगा बाबू के भाइयों के घर की ओर चल दी।

मोहनसिंह ने बैठकर हिसाब बना डाला। यूं तो हिसाब के विषय में वह सदा सतर्क रहता था और एक दिन का हिसाब दूसरे दिन पर नहीं छोड़ता था। आज का खर्चा पांच-छः मिनट में लिखकर उसने किताब बन्द कर दी। पश्चात् उसने अपना बिस्तर बांध लिया।

: १३ :

रंगा बाबू आया तो मोहनसिंह तैयार खड़ा था। उसने रंगा बाबू

को भीतर ले जाकर हिसाब-किताब समझाने का यत्न किया परन्तु रंगा बाबू ने कहा, "अभी सुब्बाराव आ रहा है। हिसाब वह लेगा। तुम मुझको चलकर पम्प इत्यादि सामान दिखा दो।

दोनों खेतों की ओर चल पड़े। मोहनसिंह ने उन खेतों को दिखा दिया, जिनको वह अगली फसल के लिए तैयार कर रहा था। तत्पश्चात् वह रंगा को लेकर पम्प पर चला गया। वहां जाकर उसने इंजन को चालू कर दिखा दिया। पश्चात् वह उसको शैड में ले आया। वहां की वस्तुओं को दिखाकर वह आरा मशीन, जो हाथ से काम करती थी, दिखाने ले गया। इस मशीन पर तम्बाकू बन्द करने के लिए पेटियां बनती थीं।

जब तक यह सब सामान दिखाकर वह रंगा बाबू को वापिस अपने मकान पर लेकर आया, वहां लक्ष्मी और दुर्गा खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। सुब्बाराव हिसाब का रजिस्टर देख रहा था।

मोहनसिंह ने लक्ष्मी को हाथ जोड़कर नमस्कार कह दी। इस पर लक्ष्मी ने कहा, "मोहनसिंह! दुर्गा हमारे साथ कोचीन जा रही है। इस कारण मैं समझती हूं कि अब तुमको काम छोड़ने की आवश्यकता नहीं।"

"माताजी!" मोहनसिंह ने कहा, "मैंने काम नहीं छोड़ा। सरकार ने मुझको निकाल दिया है। अब मैं यहां रहना नहीं चाहता।"

"क्यों?"

"अब मन नहीं करता।"

"देखो, मैं तुमको कहती हूं कि अब तुम्हारे जाने का कोई कारण नहीं रहा।"

"अब मैं अकारण ही जा रहा हूं।"

"क्या मतलब?"

"मेरा चित्त अब यहां काम करने को नहीं कर रहा है। मैं आज चार बजे की बस से जा रहा हूं।

"बस में जाने की आवश्यकता नहीं। हम सायंकाल छः बजे यहां से चलेंगे। तुम हमारे साथ चल सकते हो। इस पर भी मेरा कहना है कि जब दुर्गा ने हमारे यहां नौकरी कर ली है तो तुमको यहां से जाने के लिए हम नहीं कहते।"

"माताजी! वह बात तो म भली-भांति समझता हूं। इस पर भी अब यहां काम करने को चित्त नहीं करता। मेरा हिसाब कर दिया जाए।"

"अच्छा, एक काम करो। दो मास की छुट्टी पर जा सकते हो। घर वालों से मिल आना। हो सके तो अपने बच्चों को साथ ले आना।"

"यहां से तो चल ही दूंगा। रहा दो मास के लिए अथवा सदा के लिए

यह कोचीन चलकर निर्णय कर लेंगे।"

"तो ठीक है। तुम हमारे साथ मोटर में चलो। दुर्गा भी चल रही है। जब तक इसका किसी अच्छी जगह पर विवाह नहीं हो जाता, वह हमारे साथ रहेगी।"

मोहनसिंह चुप रहा। वह इस नई बात पर, कि दो मास की छुट्टी पर चला जाए, विचार कर रहा था। अभी वह इस पर कुछ निर्णय नहीं कर सका था। सुब्बाराव ने फार्म का चार्ज उससे ले लिया।

इस समय दुर्गा ने भी अपना बिस्तर बांध लिया। अपने पहिनने के कपड़ों के अतिरिक्त मोहनसिंह ने और दुर्गा ने कुछ नहीं लिया था।

जब मोहनसिंह जाने लगा तो खेतों के मज़दूर एकत्रित हो गए और रंगा बाबू से कहने लगे, "बाबू! हम अब इन खेतों पर काम नहीं करेंगे। कल से हम कहीं और काम ढूंढ लेंगे।"

रंगा बाबू ने कहा, "तुमको घबराना नहीं चाहिए। मोहनसिंह दो महीने की छुट्टी पर जा रहा है और यहां फिर आएगा।"

सायंकाल मोटर पर सवार होकर ये लोग कोचीन को चल दिए। कोचीन में पहुंचकर मोहनसिंह ने अपना निर्णय बता दिया। उसने कहा, "सरकार! मैं कल ही जा रहा हूं। घर जाकर लिखूंगा कि मैं लौट रहा हूं अथवा नहीं। यदि नहीं भी लौटना हुआ तो पत्र अवश्य लिखूंगा।"

रंगा बाबू ने मोहन को उसका हिसाब दिखाया और कहा कि उसका सारा रुपया बैंक में उसके नाम जमा है, जब भी वह चाहे निकलवा सकता है। मोहनसिंह ने कहा, "अभी मैं दस हज़ार ले जा रहा हूं। शेष यदि न आना हुआ तो बैंक द्वारा वहीं मंगवा लूंगा।"

इस पर रंगा बाबू ने कहा, "मैं तो तुमको यही राय दूंगा कि तुम चले आना। दो-चार वर्ष और काम करोगे तो निस्सन्देह धनवान बन जाओगे।"

जाने के पूर्व मोहनसिंह दुर्गा से मिला। दुर्गा ने कहा, "मैं यहां एक ही शर्त पर आई हूं कि मुझे विवाह के लिए विवश नहीं किया जाएगा।"

"यह क्यों?"

"इसलिए कि मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं मरणपर्यन्त विवाह नहीं करूंगी।"

"यह तो ठीक बात नहीं। विवाह तो तुमको रंगा बाबू की राय से करना चाहिए।"

"रंगा बाबू के घर में दो लड़के हैं। वे न तो मुझसे विवाह करेंगे और न ही रंगा बाबू मुझसे उनका विवाह करना पसन्द करेंगे। इसके

अतिरिक्त किसकी गरण्टी वे कर सकते हैं ?"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम अविवाहित रहना चाहती हो ?"

"मेरे लिए यह अति सुगम और सरल है।

"अच्छी बात है। मैं कदाचित् यहां लौटकर नहीं आऊंगा।"

"तो मुझको कैसे पता चलेगा ?"

"मैं आऊंगा तो पहले इस कोठी में ही आऊंगा।"

"एक काम करो। मेरे पास आपके वेतन में दिए रुपए लगभग पचास हैं। मुझको कुछ और रुपये चाहिएं। अगर आप एक सौ रुपया दे जाएं तो मैं आपका बहुत एहसान मानूंगी।"

"किसलिए चाहिएँ रुपये ?"

"मैं स्वयं नहीं जानती। इस पर भी मेरा मन कहता है कि मैं आपसे मांगूंगी तो आप दे देंगे।"

"अच्छा ? यह तुमको किसने कहा है ?"

"आपके सौजन्य ने। मेरी आत्मा कहती है कि आप मुझको न नहीं करेंगे।"

मोहनसिंह इस लड़की के इस विश्वास पर कि वह उसकी बात को न नहीं करेगा, सुन चकित रह गया। उसने भी अपने मन को टटोला और अपने रुपयों में से एक सौ रुपए का एक नोट निकालकर उसके हाथ पर रख दिया। दुर्गा का मुख खिल उठा। उसने वे रुपए लेते हुए कहा, "मैं आपकी इस सहानुभूति के लिए आपकी जन्म भर कृतज्ञ रहूंगी।"

मोहनसिंह का विचार था कि वह मार्ग में बम्बई और नासिक इत्यादि स्थान देखता हुआ जाएगा। इस कारण उसने कोचीन से चलने से पहिले एक पत्र अपने पिता को लिख दिया। साथ ही रजिस्ट्री द्वारा दस हजार रुपए का एक ड्राफ्ट भेज दिया। उसके पास अभी चार हजार रुपया और था। यह उन रुपयों में से था जो वह अपने पिता के लाया था और जो धर्मसिंह उनके पास अमानत रख गया था।

चतुर्थ परिच्छेद

: १ :

जिस दिन मंगली के भाग्य का गांव वालों ने निर्णय किया उसी दिन मास्टर जगतराम के भाग्य का सुन्दरसिंह के घर में निर्णय हो गया।

मास्टर नदी तट पर से पूजा इत्यादि कर लौटा तो महिन्दर अभी भी उसके बँधे बिस्तर के पास बैठी थी। मास्टर कमरे में आया तो महिन्दर उठकर खड़ी हो गई। मास्टर ने उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा तो महिन्दर ने कह दिया, "मैं भी आपके साथ चलूंगी।"

"क्यों?"

"मैं आपकी पत्नी हूं इसलिए।"

"परन्तु मेरा तुमसे यह वचन था कि बिना तुम्हारे पिता की स्वीकृति के मेरा तुम्हारे साथ विवाह नहीं होगा।"

"इस पर भी हम पति-पत्नी तो हैं ही। वचन केवल यह था कि हमारा यौन-सम्बन्ध बिना विवाह के नहीं होगा और विवाह बिना पिता की स्वीकृति के नहीं होगा। परन्तु मैं आपसे विवाह करने नहीं जा रही। मैं आपके समीप रहना चाहती हूं और ऐसा रहने की आपने स्वीकृति दे दी है।"

"तो इसका यह अर्थ हुआ कि मैं तुमको साथ ले चलूं और जो कुछ सालिगराम पंचायत में कह गया है, उसको सिद्ध कर दूं?"

"महिन्दर! जानती हो इसका परिणाम क्या होगा? तुम्हारे पिता और भाई-भावज की भारी निन्दा होगी और कदाचित् चौधरी आत्महत्या न कर लें।"

"तो फिर आप मत जाइए।"

"मैं न जाऊँ? चौधरी ने तो कहा है कि वे अब मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे और मुझको गांव अब शीघ्रातिशीघ्र छोड़ देना चाहिए।"

"तो ठीक है। आप पुरुष हैं। आप अपनी रक्षा स्वयं कीजिए। आप नहीं जानते हैं कि मेरी क्या दशा होगी। आपके चले जाने पर सब समझेंगे कि मास्टर दोषी था, इस कारण भाग गया है। आपको दोषी कहा जाना निःसन्देह मेरी मृत्यु का कारण बन जाएगा।

"देखिए जी! यहां इस गांव में भले आदमी पहिले ही बहुत कम हैं। उनमें से आप भी चले गए तो उनकी शक्ति घटेगी ही। इससे चाचा का पक्ष और भी दुर्बल हो जाएगा।"

"ठीक है, पर मैं क्या कर सकता हूं।"

"आप स्वीकृति दें कि चाचा के कहने पर आप यहां रहना स्वीकार कर लेंगे तो मैं यत्न करूँ?"

"अच्छा करो।"

मास्टर को समझ आ गया था कि गांव के कुछ गुंडों के डराने पर भाग जाना ठीक नहीं।

महिन्दर कौर उठकर चौधरी के कमरे में चली गई। चौधरी अभी भी लेटा हुआ अपनी नवीन परिस्थिति पर विचार कर रहा था। कमरे में अँधेरा हो रहा था। दीपक जलाया ही नहीं गया था। आज घर में भोजन नहीं बना था और सब लोग बिना भोजन किए अपने-अपने विचारों में लीन चुपचाप अपने-अपने कमरों में पड़े थे।

महिन्दर कौर चौधरी के कमरे में गई तो उसने दीपक जला दिया। सुन्दरसिंह ने उसको देख पूछा, "महिन्दर बेटी! क्या बात है।"

"चाचा! दीपक जलाया है। अँधेरे में तो दिमाग भी काम नहीं करता।"

"अच्छा तो अब तुम्हारा मस्तिष्क काम करने लगा है?"

"मैं आपसे कुछ कहने आई हूं।"

"कहो।"

"मास्टर जी गांव से नहीं जाएँगे।"

"क्यों?"

"मैंने उनको मना कर दिया है।

"और वे मान गए हैं क्या?"

"हां, यदि आप उनको रहने की स्वीकृति दें तो।"

"मैं क्यों कहूं?"

"मेरे लिए ही कह दीजिए। मैं चाहती हूं कि वे यहां रहें।"

"तुम, क्यों चाहती हो?" चौधरी सतर्क हो उठकर बैठ गया।

"मैं उनको बहुत चाहती हूं। वे बहुत अच्छे आदमी हैं।"

"क्या मतलब?"

"गांव में भले लोग जितने अधिक होंगे, उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा। कौन कह सकता है कि क्या मुसीबत आ पड़े। यहां गुंडों का राज्य होने वाला है। उस राज्य में भले लोगों को अपना अस्तित्व रखने के लिए अधिक-से-अधिक संख्या में संगठित होकर रहना ही एक उपाय है।"

"महिन्दर! मास्टर का जीवन यहां भय-रहित नहीं। मैं उसको यहां रहने के लिए कहकर उसकी हत्या का भागी नहीं बनना चाहता।"

"चाचा! हम जीएँगे तो इकट्ठे और मरेंगे तो इकट्ठे। चाचा! नहीं, उनको मत भेजो। मेरा जीवन दुर्भर हो जाएगा।"

"तुम्हारा जीवन दुर्भर हो जाएगा? महिन्दर! क्या सम्बन्ध है तुम्हारा मास्टर जी से?"

"चाचा! तुम सुनना चाहते हो कि क्या सम्बन्ध है, तो सुनो। मैं भगवान को साक्षी रखकर कहती हूं कि मेरा और मास्टर जी का केवल

वही सम्बन्ध है, जो सगाई हुए लड़के-लड़की का होता है।"

"सगाई ? कब हुई थी तुम्हारी उससे सगाई ?"

"मेरी ओर से तो आज सात वर्ष हो गए हैं। जब मास्टर जी पहले दिन यहां भोजन करने आए थे, मैंने उनको वर लिया था, उनकी ओर से तो केवल कुछ महीने ही हुए हैं।"

चौधरी खाट से उठ खड़ा हुआ और इस नवीन समस्या को समझने के लिए अपने कमरे में इधर-उधर टहलने लगा। महिन्दर अभी खाट के समीप खड़ी उत्सुकता से अपने पिता की आज्ञा सुनने की प्रतीक्षा कर रही थी।

एकाएक चौधरी खड़ा हो गया। कमरे के दरवाज़े में से बाहर को झांककर उसने सोहन को पुकारा। सोहन चाचा की आवाज़ सुन भागा हुआ वहां आ पहुंचा। वास्तव में घर के सब प्राणी किसी भयंकर दुर्घटना होने की आशंका में सतर्क बैठे थे। सोहन आया तो उसके पीछे परमेश्वरी और केवली भी आ गईं। तदनन्तर मीरा और अन्य बच्चे भी आ गए।

"चौधरी ने कहा, "सुनो, महिन्दर क्या कहती है। कहती है कि इसकी मास्टर जी से सगाई हो चुकी है।"

सोहनलाल कितनी ही देर तक भौंचक्का हो पिता और बहिन का मुख देखता हुआ खड़ा रह गया। परमेश्वरी और केवली कुछ काल तक विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखती रहीं। सबसे पहिले केवली को बात समझ में आई। उसने कहा, "चाचा ! सगाई हुई है तो क्या हुआ ? सगाई के अर्थ विवाह नहीं होते। क्यों महिन्दर ! सगाई हुई है अथवा विवाह भी कर लिया है ?"

"नहीं भाभी ! अभी तो सगाई ही हुई है।"

"तो विवाह कब होगा ?"

"जब चाचा करेंगे, तब।"

"सच कहती हो ?"

"भगवान की सौगन्ध खाकर कहती हूं कि हमने अभी सगाई ही की है और विवाह के लिए चाचा की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"यदि चाचा स्वीकृति न दें तो क्या करोगी ?"

"कुछ नहीं, करना क्या है ! विवाह के लिए अगले जन्म की प्रतीक्षा करूंगी।"

"तो चाचा !" केवली ने अपने स्वसुर को कहा, "तुम यदि यह पसन्द नहीं करते तो विवाह की स्वीकृति मत देना।"

"यह ठीक है, परन्तु इसका एक परिणाम यह होगा कि मास्टर

परिवार का एक अंग बनकर अब गाँव में रहेगा और हम उसकी रक्षा करने पर वाध्य होंगे।"

"तो क्या हानि है! जहाँ हम अपनी रक्षा करने पर वाध्य हैं तो वहाँ मास्टर भी होगा। मास्टर एक आदमी है। लाला सालिगराम से तो दुर्वल नहीं है।

"ओह, हाँ। तुम लड़ने की वात कहती हो। मुझको इसकी चिन्ता नहीं। मैं तो मान-प्रतिष्ठा की रक्षा की वात कहता हूं। लोग मास्टर पर संदेह करते हैं कि उसका महिन्दर के साथ अनुचित सम्बन्ध है। इस वात की घोषणा हो जाने पर भी वह यहाँ टिका रहेगा, हमारी वदनामी होती रहेगी।"

"नहीं चाचा!" सोहनलाल ने कहा, "यह वात तो मास्टर के जाने पर भी होगी। उसके चले जाने का अर्थ तो यही निकलेगा कि दाल में कुछ काला था। जब तक महिन्दर और मास्टर सगाई की सीमा के अन्दर हैं, तब तक तो उसके यहाँ रहने से हमारा मान बढ़ेगा, कम नहीं होगा।"

"तो मास्टर को वुलाओ। हम इस विषय में निर्णय करके ही सोएँगे।"

सोहनलाल जगतराम को बुला लाया। मास्टर समझता था कि उसने महिन्दर से इस प्रकार का नेह लगाकर इस परिवार से विश्वास घात किया है। अतएव वह एक अपराधी की भाँति उनके सामने आ खड़ा हुआ। इस पर भी वह अपने, महिन्दर के प्रति और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व का संतुलन रखना चाहता था। इसकी कठिनाई को वह समझता था, परन्तु वह समझता था कि महिन्दर से उसका वर्तमान सम्बन्ध किसी प्रकार से पाप का नहीं है।

वह जब आया तो वात सुन्दरसिंह ने आरम्भ की। उसने पूछा, "मास्टर! यह महिन्दर क्या कह रही है?"

"जो कह रही है, वह ठीक ही है, जिस सीमा तक हम गए हैं, वह धर्म और मानवता के विचार से उचित ही है। हमने कुछ भी अनुचित वात नहीं की।"

"मास्टर! मानवता की वात मैं नहीं जानता। मैं तो यह कहता हूं कि जो कुछ आज सालिगराम कह रहा था, वह तुम सत्य करने जा रहे हो।"

"चौधरी जी! सालिगराम उन भावनाओं को समझ ही नहीं सकता जो महिन्दर के मन में तरंगित हो रही हैं। वह वन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद!"

"मैं बताता हूं। परस्पर प्रेम और सहानुभूति मनुष्य को सर्वोच्च

अनुभूतियों में से है। इनसे प्रेरित होना किसी भी प्रकार से पाप अथवा अनुचित नहीं। जो बात सालिगराम और कदाचित् आप लोग भी समझ नहीं सकते, वह है प्रेम तथा यौन-क्रिया का परस्पर का सम्बन्ध। प्रेम मन की भावना है। यौन-क्रिया केवल शारीरिक कृत्य है। ये दोनों इकट्ठे भी रह सकते हैं और पृथक्-पृथक् भी। हमारी अवस्था में अभी तक इन दोनों का लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं है।"

"चाचा!" परमेश्वरी ने कह दिया, "यह तो आप भी जानते हैं और हम भी भलीभाँति जानते हैं कि मास्टर जी यदि हमारे परिवार में दामाद के रूप में ले लिए जाएँ, तो कोई बुरी बात नहीं। आपत्ति तो बाहर वालों को है। क्या ऐसी पारिवारिक बातों में बाहरी लोगों की राय मान, हम अपना कर्त्तव्य निश्चय करेंगे? एक उचित बात को यदि लोग पसन्द नहीं करते, तो क्या हम उनके इस अन्यायचरण को सहन करते रहेंगे?"

"परमेश्वरी! तुम कहती तो ठीक हो, परन्तु क्या हममें समाज की इस उच्छृंखलता का विरोध करने की शक्ति है। देख लो, इस सबका क्या परिणाम होगा।"

"चाचा!" केवला ने कहा, "यदि हम यहाँ नहीं रह सकते तो गांव छोड़कर चले जाएँगे।"

"यदि इतना कुछ करना था तो मंगली को ही क्यों जवाब दिया था? महिन्दर ने तो कहा था कि उसको भी संरक्षण दिया जाए।"

"उसको कहीं समीप ही रहने की स्वीकृति देनी चाहिए थी।"

"चाचा! मैं तो सालिगराम को मज़ा चखाऊँगा। मास्टर यहाँ रहे। उसके विवाह की बात पीछे विचार कर ली जाएगी। मैं देखूंगा कि कैसे यह सालिगराम और रत्नसिंह हमको अपने ढंग से जीवन चलाने से रोकते हैं। आखिर हमने भी तो माँ का दूध पीया है। हम हिजड़े नहीं।"

बात तय हो गई। सुन्दरसिंह ने कह दिया, "नरेन्द्र और भूपतिसिंह कहते थे कि हमको अपनी पृथक् पंचायत बना लेनी चाहिए।"

सोहनलाल का कहना था, "कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

"गाँव का चौधरीपन मैं छोड़ ही रहा हूं।"

इस विचार-विनिमय के पश्चात् चौधरी आराम से सो सका। उसने अपने मन में एक निर्णय कर लिया था कि अब वह गाँव नहीं छोड़ेगा। यहां रहना है तो गुंडों से अपने को बचाने के लिए भले लोगों का एक संगठन बनाना पड़ेगा। यह निश्चय करने पर उसे मास्टर का गाँव में रहना एक लाभप्रद बात लगने लगी। मंगली की रक्षा भी एक शुभ कार्य

प्रतीत होने लगा।

चौधरी ने विचार कर लिया था कि अगले दिन प्रातःकाल वह स्वयं जाकर मंगली को बुला लाएगा और उसको अपने घर के पिछवाड़े की एक कोठरी में ठहरा देगा।

दिन निकला तो वह शौचादि से निवृत्त हो नदी तट पर पूजा पाठादि के लिए चला गया। पश्चात् जब वह घर को लौट रहा था तो कुछ लोग भागते हुए उसके पास आए और घबराए हुए उससे कहने लगे, "चौधरी! मंगली...।"

"क्या हुआ है मंगली को?" चौधरी ने पूछा।

"फांसी पर लटका दी गई है।"

"कहां?"

"पांधा के मकान के बाहर। नीम के पेड़ से।"

सुन्दरसिंह एकदम से खड़ा हो गया। पश्चात् बोला, "भाई! पुलिस में रिपोर्ट करो। मैं तो गांव का चौधरीपन कल से छोड़ बैठा हूं। अब मैं, बिल्कुल आप जैसा ही, एक गांव का रहने वाला हूं।"

"चौधरी! कहते क्या हो? तुम तो हमारे चौधरी हो ही। हमें विश्वास है कि वह रत्नसिंह का काम है। यदि इसका कुछ इलाज नहीं होगा तो हमारा यहां रहना दुर्भर हो जाएगा।"

"ठीक है। यह तो हम पीछे विचार करेंगे। पहिले तो पुलिस में रिपोर्ट लिखवानी चाहिए।"

चौधरी घर पहुंचा तो सोहनलाल और मास्टर बाहर खड़े हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सोहनलाल ने कहा, "चौधरी! यह तो अनर्थ हो गया है।"

'हां, अपराध करने वाले को दंड तो मिलना ही चाहिए।"

कुछ लोग पुलिस चौकी भागकर गए और कुछ लोग तथा सोहनलाल, चौधरी और मास्टर, पांधा के मकान पर जा पहुंचे। वहां पहिले ही सारा गांव एकत्रित था। सब लोग इस घटना पर चिन्ता और भय अनुभव कर रहे थे।

चौधरी वहां पहुंचा तो एक ने पूछा, "चौधरी! इसको पेड़ पर से उतार दें?"

"नहीं, पुलिस को आने दो।"

"चौधरी! इस प्रकार के अनर्थ को रोकने का कोई उपाय नहीं है क्या?"

"मैंने कल यत्न किया था, परंतु गांव के लोगों ने सहयोग नहीं दिया।

केवल इतना ही नहीं, परन्तु मेरी पगड़ी उछालने वाले की जयजयकार करते हुए सब लोग चले आए। मैंने कल से आपके गांव का चौधरीपन छोड़ दिया है।"

"यह कैसे हो सकता है चौधरी !" एक अन्य आदमी ने कहा, "तुमको चौधरी बनाया था गांव की पंचायत ने। अब बिना पंचायत की स्वीकृति के तुम कैसे यह काम छोड़ सकते हो ?"

"देखो लाला ! पंचायत मुझको जो वेतन देती है, वह अपने पास रख ले। मन का सौदा था, आप मेरा कहना मानते थे और मैं आपकी सेवा करता था। आपने कहना मानना छोड़ दिया तो मैंने अपने को पीछे कर लिया। न तो आप पर मेरा अहसान है, न ही आप मुझ पर कोई मेहरबानी कर रहे थे।"

एक और इस समय बोल उठा, "चौधरी ! गुंडेपन से डर कर उस समय कोई बोल नहीं सका।"

"तो अपने डर का परिणाम देख तो लो। अब वहां पुलिस बैठेगी और गांव वालों से पूरी-हलवा-मांडा मांगेगी। साथ ही इस बेचारी की हत्या व्यर्थ में हुई। एक बात और होगी। यदि अपराधी पकड़ा न गया और दण्ड न मिला तो गांव के भले लोग तंग होंगे।"

एक ने कह दिया, "मंगली तो बदकार औरत थी।"

"पर उसकी हत्या इसलिए नहीं की गई कि वह बदकार थी। जब बदकारी करती थी तो उसकी ओर कोई उंगली भी नहीं कर सका था। कदाचित् बदकारी करना स्वीकार करती तो अब भी यह परिणाम न होता। हत्या इस कारण हुई है कि उसने जग्गू के अपराध को कचहरी में प्रकट कर दिया था।"

इस समय पुलिस आ पहुंची। इस गांव में एक छोटी-सी चौकी थी, जिसमें पांच सिपाही और एक हैड कॉन्स्टेबल रहता था। वे सब ही घटना-स्थल पर पहुंच गए। पेड़ के सामने खाट डलवा उस पर बैठ हैड कॉन्स्टेबल ने रिपोर्ट लिखनी आरम्भ कर दी। इस सब समय मंगली का शरीर सामने के पेड़ से लटका रहा। इस शव को देख-देखकर गांव वालों ने रत्नसिंह और सालिगराम के विरुद्ध जी भर कर बयान दिए।"

हैड कॉन्स्टेबल ने दो कॉन्स्टेबलों को भेजकर रत्नसिंह और सालिगराम को बुला भेजा। वे घर पर नहीं मिले। यह भी लिख लिया गया। पीछे मंगली का शव उतारा गया और गाँव के लोग और कुछ लड़के उसकी अर्थी बनाकर, उसे नदी तट पर ले गए और उसका दाह-संस्कार कर दिया।

पुलिस ने अपनी रिपोर्ट ढिलवां थाने में दी और वहां से रत्नसिंह और सालिगराम के वारण्ट आ गए। ये दोनों अभी भी लापता थे।

सुन्दरसिंह ने मंगली के मरने के तीसरे दिन पुनः एक पंचायत बुलाई और उस पंचायत में कह दिया कि वह अब उनका चौधरी नहीं है। लोगों ने बहुत हाय-तोबा मचाई, परन्तु सुन्दरसिंह नहीं माना। गांव के लोग चाहते थे कि वह चौधरी बना रहे, परन्तु सालिगराम और रत्नसिंह के हिमायती इस पंचायत में भी सुन्दरसिंह से अशिष्टता का व्यवहार करते रहे। वास्तव में वे चाहते थे कि गांव का चौधरी तो सुन्दरसिंह ही बना रहे, परन्तु वह उनकी उंगलियों पर नाचे।

रत्नसिंह का बड़ा सहायक पीरू था। उसने चौधरी के पद-त्याग की बात सुन कहा, "चौधरी! इस पदवी को क्यों छोड़ते हो?"

"आपका मुझ पर विश्वास नहीं रहा, इस कारण।"

"हमने अविश्वास का प्रस्ताव तो पास नहीं किया। तुम इस पदवी को छोड़ गांव वालों का अपमान कर रहे हो। इसका अर्थ तो यह निकला कि तुम गांव वालों का निर्णय नहीं मान रहे।"

"तुम ठीक कहते हो भाई! पर गांव वालों को जब अपने मान की ही परवाह नहीं की तो फिर मैं उसकी रक्षा कैसे कर सकता हूं? गांव के चौधरी की एक गुण्डे ने पगड़ी उछाल दी, और गांव के प्रायः लोग उसकी जयजयकार करते हुए चले गए, तो फिर गांव की इज्जत कहां रही? पीरू! गांव का अपमान मैंने नहीं परन्तु सालिगराम और गांव वालों ने स्वयं किया है।"

"यदि अब गांव वाले तुम्हारी बात मान जाएं तो तुम गांव वालों की बात मानोगे या नहीं?"

"मेरी बात क्या मानेंगे गांव वाले? जिसकी रक्षा मैं करना चाहता था, वह तो मार डाली गई है। अब आप क्या मानेंगे? मंगली की हत्या का पाप पूर्ण गांव पर है और उसका प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ेगा।"

"एक वेश्या की हत्या पाप नहीं है।"

"यही तो मुझमें और तुम लोगों में अन्तर है। जिसने हत्या की है, उसने तो अपराध किया ही है, सरकार उसको ढूंढकर दण्ड देगी। परन्तु हमने, जो उसको अच्छा जीवन व्यतीत करने का अवसर नहीं दिया, पाप किया है। इसका दण्ड सरकार के पास नहीं। भगवान यह हमको देगा।"

"पर उसकी हत्या किसने की है?"

"मैं क्या जानूं? यह मालूम करना तो पुलिस का काम है। वह मालूम करेगी। जहां तक मेरा सम्बंध है, मैं अब चौधरी नहीं रहूंगा।"

"पर हम लोग तो तुमको ही अपना चौधरी मानेंगे। हम चाहेंगे कि तुम गांव वालों की इच्छा से गांव के हित में चौधरी बने रहो।"

चौधरी ने अपनी बात कह दी और पंचायत से उठकर घर को चल दिया। अगले दिन उसके घर पर गांव के पच्चीस वृद्ध जन एकत्रित हुए। सबने यह निश्चय किया कि रत्नसिंह और सालिगराम को दण्ड दिलवा कर रहेंगे। मास्टर के कहने पर गांव के चार-पांच व्यक्ति डिप्टी कमिश्नर बहादुर से मिलने गए। उन्होंने उस सारी परिस्थिति का वर्णन किया, जो हत्या से पूर्व गांव की थी। इस पर गांव में पुलिस चौकी बढ़ा दी गई। साथ ही रत्नसिंह की खोज होने लगी।

मजिस्ट्रेट ने यह आज्ञा जारी कर दी कि अमुक दिन यदि रत्नसिंह और सालिगराम उपस्थित न हुए, तो दोनों की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जाएगी। इस आज्ञा के निकलने पर, दोनों अदालत में हाज़िर हो गए। पुलिस ने दोनों को बहुत पीटा। सालिगराम बक गया और उसने बयान दे दिए कि हत्या पीरू ने की है। पीरू रत्नसिंह के खेतों में काम करता है। पुलिस ने पीरू को पकड़ा तो उसने यह बयान दिया कि उस रात वह, रत्नसिंह और सालिगराम मंगली के घर, दरवाज़ा तोड़कर गए थे। तीनों ने उससे बलात्कार किया। पश्चात् वह वहां से चला आया। उसे पता नहीं कि हत्या किसने की है।

गांव वालों की गवाही हुई। उससे तो इस हत्या की पृष्ठभूमि बनी थी। इस पर रत्नसिंह और सालिगराम का गांव से लापता रहना इस बात के लिए प्रमाण बन गए कि हत्या इन तीनों में से ही किसी ने की है। तीनों को सैशन सुपुर्द कर दिया गया।

: २ :

सुन्दरसिंह तथा भूपति के प्रयत्न से गांव में एक पृथक बिरादरी बन गई। इसमें लगभग पच्चीस छोटे-बड़े जमींदार सम्मिलित हो गए। इनके खेतों में काम करने वाले कामे भी इनके साथ थे। इस बिरादरी का प्रधान तो भूपति माना गया, परन्तु सुन्दरसिंह इस बिरादरी का मुख्य आश्रय था। वह उनको बताता रहता था कि गांव में किस प्रकार उन्नति करनी चाहिए।"

जगतराम का स्कूल फिर खोल दिया गया। अब यह स्कूल इस नई बिरादरी के अधीन कर दिया गया। पढ़ाने वाले तो वही थे—मास्टर जगतराम, महिन्दर कौर और केवली। साथ ही गांव का एक विद्यार्थी,

जो पड़ोस के गांव से मिडल पास कर आया था, पढ़ाई का काम करने लगा। पढ़ने वालों की भी संख्या अधिक हो गई।

स्कूल एक कमेटी के अधीन हो जाने से, सरकार ने इसकोदो हज़ार रुपया वार्षिकसहायता देनी स्वीकार कर ली। इससे एक वेतनिकमास्टर भी रख लिया गया। वह स्कूल में पढ़ाने के साथ साथ स्कूल का हिसाब-किताब भी रखने लगा।

इस प्रकार भूपति को बिरादरी की गांव में नेकनामी होते देख गांव के विरोधी गुट ने इनका और स्कूल का विरोध करना शुरू कर दिया। रत्नसिंह का एक पड़ोसी हरपालसिंह इस गुट का नेता बन गया। उसने नए आए मास्टर कुन्दनलाल को अपने अनुकूल कर लिया। मास्टर को पांधा सन्तराम के घर पर, जो इन दिनों खाली था, ठहराया गया था। इसको एक सुअवसर जान हरपालसिंह मास्टर सुन्दरलाल से मिलने जा पहुंचा। उसे खिला-पिलाकर तथा बहुत सी बातें बताकर इस बात का विश्वास करा दिया गया कि जगतराम और महिन्दर कौर का घनिष्ट सम्बंध है और चौधरी अपनी लड़की द्वारा स्कूलका बहुतसा रुपया हज़म करता रहता है।

मास्टर को यह विश्वास दिलाकर हरपालसिंह गांव से कुछ लोगों को लेकर डिप्टी कमिश्नर के पास जगतराम और चौधरी की शिकायत कर आया। इस पर डिप्टी कमिश्नर ने शिक्षा-विभाग कोजांच करने को लिख दिया। सरकारी शिक्षा-विभाग ने अपना इंस्पेक्टर जांच के लिए भेज दिया।

शिक्षा-विभाग का इंस्पेक्टर जब कंडेवाल पहुंचा तो वह चौधरी के घर पर ही ठहरा। वहां उसकी भली-भांति आवभगत की गई। अगले दिन भोजन के पश्चात् चौधरी उसको स्कूल दिखाने ले गया। इंस्पेक्टर ने मास्टर जगतराम से बातचीत की, स्कूल का इतिहासजानाऔर स्कूल की इमारत के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् वह स्कूल के अध्यापकों से मिला। जब वह कुन्दनलाल से मिला तो कुन्दनलाल ने उसको एक पत्र, जिस पर 'कॉन्फिडेंशल' लिखा था, देते हुए कहा, "मैं अपना यह लिखित बयान देना चाहता हूं।" यह पत्र हरपालसिंह ने मास्टर से पिछली रात ही लिखवा छोड़ा था।

जब पूर्ण स्कूल की जांच हो गई तो इन्स्पेक्टर ने पृथक् में वह पत्र पढ़ा। पत्र में लिखा था, "मैं इस पत्र को खुले में नहीं दे सकता। कारण यह है कि इस गांव में सत्य कहने वाले आदमी को जीवन का भय रहता है।

"यह स्कूल बदमाशी का अड्डा है। दोनों अध्यापिकाएं मास्टर राम की रखेल हैं और चौधरी इन औरतों द्वारा स्कूल का रुपया गबन करता रहता है। जब से मैं यहां आया हूं, यह यत्न किया गया है कि मैं किसी बहाने से रुपया निकालकर इनको दे दूं। मैंने अभी तक इस बात का विरोध किया है।"

"परन्तु वह स्कूल प्राइवेट है, देहातियों की कमेटी के अधीन है। इस कारण यदि कुछ दिन तक मैंने और विरोध किया तो निश्चय ही नौकरी से निकाल दिया जाऊंगा।

"मेरा निवेदन है कि सरकार ग्राण्ट दे रही है तो स्कूल को सर्वथा अपने अधीन कर ले। अभी तक तो मैं इस चोरी का विरोध करता रहा हूं, परन्तु मेरे निकाल दिए जाने के बाद यह सम्भव नहीं रहेगा।"

इंस्पेक्टर को यह बात मन लगी और उसने अपनी रिपोर्ट के साथ यह राय दे दी कि स्कूल शिक्षा-विभाग अपने हाथ में ले ले। साथ ही प्रमाण के लिए उसने कुन्दनलाल की चिट्ठी नत्थी कर दी।

पंजाब सरकार ने रिपोर्ट का अध्ययन किया और यह निर्णय किया कि स्कूल की ग्राण्ट बढ़ा दी जाए और इसे सीधा सरकारी शिक्षा-विभाग के अधीन कर दिया जाए।

इस विषय की एक चिट्ठी स्कूल की कमेटी को आ गई। स्कूल की कमेटी को यह लिखा गया कि स्कूल का सारा खर्च सरकार स्वयं कर, इसको अपने अधीन करना चाहती है। स्कूल कमेटी ने यह सरकारी पत्र बिरादरी के सम्मुख रख दिया, और बिरादरी ने इस विषय की जांच के लिए अपना एक डैपुटेशन सरकारी शिक्षा-विभाग के पास जालन्धर भेजने का निर्णय कर लिया।

डैपुटेशन जालन्धर गया और अधिकारियों से मिलकर लौट आया। शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने उसको मास्टर कुन्दनलाल की चिट्ठी दिखा दी थी और कहा कि इंस्पेक्टर ने इसका समर्थन किया है। साथ ही उसने यह कहा, "सरकार का यह मत है कि इस स्कूल को अपने अधीन कर लिया जाए अन्यथा ग्राण्ट बन्द कर दी जाए।"

सुन्दरसिंह ने जब अपनी लड़की और पतोहू के ऊपर आरोप सुने तो चटपटा कर रह गया। डैपुटेशन के सभी सदस्य क्रोध से भरे हुए थे। गांव की बिरादरी के सामने डैपुटेशन ने अपनी रिपोर्ट उपस्थित की तो यह निर्णय किया गया कि सरकारी ग्राण्ट न ली जाए। मास्टर 'कुन्दनलाल' को छुट्टी दे दी गई। उसने यह कहने का प्रयत्न किया कि उसका कोई कसूर नहीं, परन्तु सब लोग जानते थे कि यह असत्य है। इस पर भी

भूपति ने, जो अब बिरादरी का प्रधान था, उसको एक मास का वेतन देकर कह दिया, "हम आपके ऊपर कोई आरोप नहीं लगा रहे। चूंकि हमें सरकारी ग्राण्ट नहीं मिल रही, इस कारण हम एक वैतनिक मास्टर नहीं रख सकते।"

शिक्षा-विभाग को लिख दिया गया, कि उनकी ग्राण्ट वे नहीं ले रहे। दो हज़ार में से एक हज़ार पहिले ही लिया जा चुका था। बिरादरी ने यह रुपया वापस कर दिया।

इसके साथ ही यह निश्चय किया गया कि स्कूल की शिक्षा गांव की आवश्यकता के अनुसार ठीक कर ली जाए।

: ३ :

इसके पश्चात् स्कूल की शिक्षा की रूपरेखा ही बदल दी गई। अब मास्टर जगतराम ने स्कूल का पाठ्यक्रम बढ़ा दिया। पहिले से तीसरी श्रेणी तक तो भाषा और गणित पर बल दिया जाने लगा। पश्चात् चौथी और पांचवी श्रेणी में 'किंडरगार्टन' की शिक्षा आरम्भ कर दी। पांच श्रेणियों की शिक्षा के साथ अब तीन वर्ष की शिक्षा और बढ़ा दी गई। पढ़ाई के साथ साथ दस्तकारी सिखाने का प्रबन्ध कर दिया गया। इन दस्तकारियों में बाग लगाने, खाद तैयार करने, राजगिरी और कपड़ा बुनने के कामों को महत्त्व दिया गया। लड़कियों के लिए मोजा, स्वीटर बुनने, सीना-पिरोना और रोटी इत्यादि कामों के सिखाने का प्रबन्ध कर दिया गया।

इस प्रकार स्कूल की उन्नति होने लगी। पहिले लड़के पांचवीं श्रेणी तक पढ़कर पड़ोस के गांव में मिडल तक पढ़ाई करने जाते थे। अब पड़ोस के लड़के कंडेवाल में इन कामों को सीखने आने लगे।

स्कूल की उन्नति देखकर विरोधी पक्ष के लोग और भी जलने लगे। इस समय तक सालिगराम और रत्नसिंह के मुकदमे का फैसला हो गया था। सैशन कोर्ट ने पीरू को मृत्युदण्ड दिया और सालिगराम तथा रत्न-सिंह को सात-सात वर्ष का कठोर दण्ड। इस फैसले की अपील हाईकोर्ट में कर दी गई।

गांव में हरपालसिंह, जो रत्नसिंह का मित्र था और सुन्दरसिंह के विरोधी पक्ष का नेता था, रत्नसिंह के मुकदमे की पैरवी का प्रबन्ध कर रहा था। रत्नसिंह की भूमि तो लाला कर्मचन्द के पास गिरवी रख दी गई थी। अब हरपालसिंह के सिर पर भी कर्ज़ा चढ़ने लगा था। इससे तो

हरपालसिंह और भी परेशान हो गया। वह और उसके साथी अब मिल-कर सुन्दरसिंह तथा भूपति के विरुद्ध षडयन्त्र करने लगे।

इन दिनों मास्टर ने गांव की अवस्था सुधारने के लिए एक और योजना बना डाली। उसकी यह योजना थी कि गांव में पक्की नालियां बना दी जाएँ, जिससे गन्दा पानी बहकर गांव के बाहरएक गढे में पहुंच जाए और गांव के मार्गों को गन्दा न करे। इसकेलिए मास्टर ने स्कूल के लड़कों और गांव के अन्य लोगों की सेवाएँ लीं। चन्दे की रकम से उसने ईंटें और सीमेंट खरीद लिया और गांव के लोगों की सहायता से नालियां बनवानी आरम्भ कर दीं। दुर्भाग्य से हरपालसिंह का घर गांव के नीचे के भाग में था। अतएव जब नालियां बनने लगीं तो वह लाठी तानकर खड़ा हो गया और नालियां बनाने में बाधा डालने लगा।

इस पर मास्टर ने उससे झगड़ा न करने के विचार से अपनी योजना में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया और नाली एक अन्य मार्ग से निकालकर गांव के बाहर गढे में ले जाने का प्रबन्ध कर दिया। इसके लिए मिट्टी डालकर कुछ स्थानों को ऊंचा करना पड़ा।

इस प्रकार की योजनाओं का परिणाम यह हो रहा था कि भूपति का मान गांव में बहुत बढ़ने लगा। इस सब परिस्थिति पर विचार करने के लिए हरपालसिंह ने अपने सहायकों की बैठक अपने घर बुला ली।

बीस के लगभग लट्ठ, गँवार वहां एकत्रित होकर सुन्दरसिंह और भूपति को गालियां देते रहे। इस पर भी वे किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके। वास्तव में उनमें से कोई भी नहीं जानता था कि दूसरे पक्ष वालों की बढ़ती हुई ख्याति को कैसे रोका जाए।

उस रात, सब आदमी चले गए तो हरपालसिंह की पत्नी, जो पिछले कमरे में बैठी इस बैठक की सारी बातें सुनती रही थी, अपने पति से पूछने लगी, "क्या मतलब था इन सब लोगों का इस प्रकार हल्ला-गुल्ला करने का?"

"बात यह है कि सुन्दरसिंह और मास्टर जगतराम गांव के आचार-विचार को बदलकर यहां पर नगरों की सी बातें करना चाहते हैं। गांव के लोग यह पसन्द नहीं करते। इस कारण ये उनको गालियां देते हैं।"

"क्या बात नगरों की चलाना चाहते हैं?"

"यहां नालियां बनवा रहे हैं। फिर सुना है कि गांव के बीच एक ऊँचा चबूतरा बनवाएँगे। उस पर बगीचा लगेगा। एक पुस्तकालय भी खोल दिया है। इसी प्रकार की बातों में गांव वालों को लगाकर उनकी रुचि खेती-बाड़ी से हटाकर उनको ऐशो-आराम की ओर लगा रहे हैं।"

"तो वे एक बात क्यों नहीं करते कि वे न तो अपने बच्चों को स्कूल में पढ़ाने भेजें और न ही उस बगीचे की सैर करने। नालियां तो इधर से बन ही नहीं रहीं। झगड़ा करने ही की क्या आवश्यकता है?"

"हम यह बात यहां नहीं चलने देंगे।"

"पर इन लोगों को क्या कि सुन्दरसिंह के अथवा भूपति के घर के आगे पक्की नाली बन गई है और उसका गन्दा पानी अब मकान के बाहर खड़ा रहने के स्थान, बहकर दूर चला जाता है। आप लोग यदि यह पसन्द करते हैं कि गन्दा पानी आपके मकानों के बाहर खड़ा रहे तो रहने दें, कौन मना करता है आपको?"

हरपालसिंह के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। इस कारण उसने कह दिया, "तुम पुरुषों की बातें क्या जान सकती हो? जाओ, अब सो जाओ।"

बात यहां ही समाप्त नहीं हुई। चूंकि इस चौकड़ी में किसी प्रकार की योजना नहीं बन सकी थी, परन्तु वहां उपस्थित जनों के मन में क्रोध और भूपति के प्रति घृणा उत्पन्न हो चुकी थी इस कारण एक किसनू ने अपने साथ दो-चार आदमी लेकर रात के समय भूपति और सुन्दरसिंह के घरों के बाहर नालियां खोद डालीं। सवेरे जब ये लोग उठे तो इन्होंने देखा कि इन दोनों के घरों से निकला गन्दा पानी बहुत से आसपास के घरों के आगे एकत्रित हो गया है।"

भूपति और सुन्दरसिंह यह करने वालों का अभी पता ही लगा रहे थे कि अगली रात गांव में और स्थानों पर भी नाली तोड़-फोड़ दी गई। नालियों की ईंटें चोरी हो गई और सारा गांव पहिले से भी अधिक गंदा दिखाई देने लगा।

जो काम दो महीने में बीसियों व्यक्तियों के परिश्रम से और काफी व्यय कर किया गया था, वह तीन-चार दिन के भीतर ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया।

बिरादरी के लोगों को इससे क्रोध चढ़ आया और इनकी एक विशेष बैठक हुई, जिसमें इस चोरी और गुंडागर्दी पर विचार किया गया। मास्टर जगतराम ने बहुत ही कठिनाई से लोगों को शान्त किया और उनको कहा कि एक कमेटी इस बात की जाँच और इसका इलाज करने के लिए बना दी जाए। इस कमेटी में उसने जानबूझकर सुन्दरसिंह को नहीं रखा। उसने प्रस्ताव किया कि इसमें तीन आदमी हों। एक भूपति, दूसरा नरेन्द्र और तीसरा नाम उसने अपना दे दिया। इस कमेटी को, इस प्रकार की खराबी को दूर करने का उपाय ढूंढ उसको प्रयोग में लाने की

स्वीकृति दे दी गई।

अगले दिन मास्टर ने स्कूल के छोटे बच्चों को बहाने से घर भेजकर यह पता कराने की चेष्टा की कि नालियों की ईंटें किस-किस के घर में रखी हैं। मास्टर ने लड़कों को बता दिया कि वे लोगों को शक न होने दें कि वे उनके घरों में ईंटें देखने आए हैं। उसी दिन उसे यह पता चल गया कि बहुत सारी ईंटें हरपालसिंह के घर में पड़ी हैं और वह उनसे अपने घर के सेहन में पक्का फर्श बनवा रहा है।

इस बात को भूपति को बता दिया और इसके प्रतिकार का उपाय भी मास्टर ने बता दिया। भूपति और नरेन्द्र ने इस उपाय को ठीक समझा और इस पर कार्य करने के लिए योजना बना डाली।

जाड़े का मौसम था और लोग प्राय- घरों को वन्द कर भीतर सोते थे। यही कारण था कि हरपालसिंह के लोगों को नालियाँ तोड़ने में सफलता मिली थी। एक दिन प्रात:काल ही लोगों ने देखा कि हरपाल-सिंह के घर को आग लग गई है। हरपालसिंह के घर पर भूसे की छत थी। इस कारण आग लगते ही चारों ओर फैल गई। जब गाँव में इस आग के लग जाने का हल्ला हुआ तो गाँव के लोग वहाँ एकत्रित हो गए और आग बुझाने का यत्न करने लगे। इस समय हरपालसिंह अधजले घर से निकलकर शोर मचाने लगा कि उसकी पत्नी घर के अन्दर ही है। वह लोगों को, जो पानी डाल-डालकर आग बुझाने का यत्न कर रहे थे, कहने लगा कि मकान की पिछली ओर पहिले आग बुझाएँ। मास्टर जगतराम भी वहीं खड़ा था और आग बुझाने का यत्न कर रहा था। उसने जब यह सुना तो उसे बहुत शौक हुआ और वह जलते मकान में घुस गया और अचेत हरपालसिंह की पत्नी को निकाल लाने में सफल हो गया।

जिस-जिसने मास्टर के इस काम को देखा, मास्टर की बहुत प्रशंसा की। हरपाल की बीवी को पांधा संतराम के घर भेज दिया गया और गाँव के हकीम को बुलाकर उसकी चिकित्सा की जाने लगी।

आग बुझा दी गई, परन्तु घर जलकर भस्म हो गया और हरपाल बेघर हो गया। उसको भी पांधा सन्तराम के घर पनाह मिली।

हरपालसिंह के घर को आग लग जाने से दोनों पक्षों के लोगों में बहुत चिन्ता का वातावरण उत्पन्न हो गया। हरपाल के पक्ष के लोग यह समझते थे कि यह भूपति के साथियों का काम है और उन्होंने नालियाँ उखाड़ने का बदला लिया है। भूपति की बिरादरी के लोग यह समझने लगे कि यह किसी तीसरे पक्ष का काम है। इस कारण वे और भी चिन्तित हो गए। इससे गाँव वाले यह आशंका करने लगे कि किसी भी दिन

किसी के घर आग लग सकती है।

भूपति की बिरादरी के लोगों ने, गांव की ओर, विशेष रूप से अपने बिरादरी वालों के मकानों की रक्षा के लिए, रात को पहरे का प्रबन्ध कर लिया।

सुन्दरसिंह को विश्वास हो गया था कि हरपालसिंह के मकान को आग लगाने का काम भूपति की बिरादरी के किसी आदमी ने ही किया है। उसने बिरादरी के कई लोगों से जानने का यत्न किया कि यह किस-का काम है, परन्तु उसे कुछ पता नहीं चला। आखिर उसने मास्टर को बुलाकर पूछ लिया, "मास्टर! तुम्हारी कमेटी जो गाँव की नालियों की तोड़-फोड़ रोकने के लिए बनी थी, तुम लोगों ने अब तक क्या किया है?"

"चाचा! कमेटी ने कुछ तो उपाय किया ही है। उसका फल क्या होगा, देखने की बात है।"

"यह हरपाल के घर को आग लगाने से तुम समझते हो कि नालियों की तोड़-फोड़ का बदला निकल गया है?"

"चाचा! किसने कहा है तुमसे यह? किसने आग लगाई है?"

सुन्दरसिंह एक क्षण के लिए तो यह इन्कार सुनकर चुप रह गया। फिर कुछ सोचकर उसने कहा, "मास्टर! यह बात तो किसी ने नहीं बताई, परन्तु मेरा मन कहता है कि यह किसी हमारे आदमी का ही काम है। देखो, दो दिन हुए स्कूल के लड़के यह खबर लाए थे कि हरपाल के घर नालियों की ईंटें पड़ी हैं और कल उसके घर को आग लग गई। ये दोनों बातें, क्या परस्पर सम्बन्ध नहीं रखतीं?"

"जब तक कोई पक्का प्रमाण न मिल जाए, इस प्रकार की बात मुख से निकालना ठीक है क्या?"

"तो तुम मानते हो कि जिसने आग लगाई है, उसके विरुद्ध प्रमाण कोई नहीं है?"

मास्टर ने हँसकर कहा, "चाचा! इससे कौन इन्कार कर सकता है कि आग लगी है और कदाचित् किसी ने लगाई ही है। इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि आग हमारे किसी आदमी ने लगाई है और फिर हमको इस बात की चिन्ता करनी चाहिए। हाँ, एक बात मुझको समझ में आ रही है कि इस आग लगाने के बाद गाँव में झगड़ा बन्द हो जाएगा। हरपाल इत्यादि को भी यह पता चल गया है कि कोई दूसरा भी डंक मार सकता है।"

"मैं इस प्रकार के बदले की भावना ठीक नहीं समझता।"

"पर आप यह कैसे कहते हैं कि हरपाल के मकान को आग लगाने

में किसी ने बदले की भावना से काम लिया है ?"

"किसी को हानि पहुंचानी बदले के अतिरिक्त भी किसी उद्देश्य से हो सकती है क्या ?"

"हाँ, उसको सुधारने के विचार से। देखो चाचा ! कोई चोरी करता है। सरकार उसको पकड़कर जेल में डाल देती है। क्या यह बदले की भावना से किया जाता है ?"

"पर वह तो सरकार है। उसको अधिकार है कि उसको दण्ड दे।"

"साथ ही यह भी विदित होना चाहिए कि सरकार अन्धी और लँगड़ी होती है। वह बहुत से अपराधियों को तो पकड़ ही नहीं सकती। इस कारण जनता का भी अधिकार हो जाता है कि वह, जहाँ अपराध सरकार की दृष्टि में ओझल रहे, वहां अपराधी को सुधारने के विचार से कुछ करे।"

: ४ :

आग लगने के अगले दिन पांधा सन्तराम के मकान में हरपाल की चण्डाल चौकड़ी एकत्रित हो गयी, और वह इस नई परिस्थिति पर विचार कर रही थी। हरपाल कह रहा था कि "मेरा तो सब कुछ नष्ट हो गया है। मेरी पत्नी गर्भ-अवस्था में है। यदि उसका अनिष्ट हो जाता तो भारी पाप हो जाता। इस कारण इन बातों का पता करना चाहिए।"

इस पर किसनू ने कहा, "सरकार ! हुक्म हो तो मास्टर के स्कूल को आग लगा दी जाए।"

"पर मास्टर ने क्या खराबी की है ?"

"वह ही तो खराबी की जड़ है। जब से वह यहां आया है, तब से ही यहां झगड़े आरम्भ हुए हैं।"

हरपाल इस विषय में विचार कर ही रहा था कि उसकी पत्नी पिछले कमरे में से बाहर निकल आई। उसने किसनू को डांटकर कहा, "अबे ओ किसनू के बच्चे ! भाग जा यहां से। नहीं तो पुलिस को बुलाकर पकड़वा दूंगी।"

किसनू और उसके साथी हरपाल की स्त्री को इस प्रकार उनकी बातों में वहां दखल देने आ गई देख, चुप कर गए। हरपाल ने कह दिया, "भाई ! अब तुम सब जाओ। फिर कभी बात करेंगे।"

चंडाल चौकड़ी उठकर चली गई। जब सब चले गए तो हरपाल की पत्नी ने कहा, "आप इन लोगों के साथ सम्बन्ध रखेंगे तो आप मेरा बुरा चीतेंगे। ये सब मूर्ख हैं। और मान लो कल को कोई पकड़ा गया तो

वह भी सालिगराम की भांति पुलिस की मार से डरकर बक जाएगा और आपको फँसा देगा।"

"पर मास्टर को मज़ा कैसे चखाया जाए?"

"उसके स्कूल को आग लगाने से उसकी क्या हानि होगी?"

हरपालसिंह यही तो विचार कर रहा था, जब किसनू ने स्कूल को आग लगाने के लिए कहा था। उसने कहा, "किसनू तो मूर्ख है। मैं तो मास्टर को मरवा डालना चाहता हूं।"

"जिससे किसनू पकड़ा जाय तो वह तुमको फँसा दे। देखो जी! इस बात में क्या होगा? फिर मैं पूछती हूं कि मास्टर ने तो मेरी जान बचाई है। क्या यह उसकी इस मेहरबानी का फल देना चाहते हो?"

"हैरानी की बात तो यह है कि जब गांव के सब आदमी भीतर जाने से डरते थे, वह निधड़क मकान में घुस गया था, और जलती आग में घुसकर तुमको उठा लाया था। है यह बड़ा दुष्ट। एक ओर बुराई करता है, और फिर दूसरी ओर भलाई करने में भी पीछे नहीं रहता।"

"क्या बुराई की है उसने?"

"उसने गांव की एक भली औरत को खराब किया है।"

"क्या प्रमाण है आपके पास? उसके घर के लोग क्या यह देखते नहीं? इस पर भी मैं पूछती हूं कि हमको इससे क्या। मुझको तो उसके गांव में होने से लाभ ही हुआ है।"

"पर इस मकान के जल जाने के बाद घर में चूड़ियां पहिन बैठे रहने से काम नहीं चलेगा।"

"चूड़ियां पहिनने की क्या आवश्यकता है। कल से खेत में काम करिए और घर बनाने के लिए रुपया इकट्ठा करिए। बेकसूर लोगों से झगड़ा खड़ा करना बहादुरी कैसे हो गई?"

"बेकसूर कौन है?"

"मास्टर, जिसके पीछे तुम सब लोग अकारण पड़े हो। क्या किया है उसने?"

"भूपति की बिरादरी का वह सलाहकार है और मेरे घर को आग उस बिरादरी के लोगों ने ही लगाई है।"

"पर आपने उस बिरादरी की नालियां तुड़वाकर ईंटें अपने घर में क्यों एकत्रित कर ली थीं?"

"अगर नालियां मैंने तुड़वाई हैं तो पुलिस मुझको पकड़ क्यों नहीं लेती?"

"पुलिस वैसे ही आपको नहीं पकड़ती, जैसे हमारे घर को आग

लगाने वाले को नहीं पकड़ पाती।"।

"तो नालियों का बदला मकान को आग लगाने में है ?"

"देखो जी ! यदि उसने बदला लेना होता तो मुझको अपनी जान खतरे में डालकर बचाता नहीं। मैं समझती हूं कि कुछ गड़बड़ हो रही है। आप अपनी भूल को समझ जावें तो फिर उनकी बात पर विचार किया जा सकता है। आप जग्गू के बाप के मुकदमे पर इतना रुपया क्यों खर्च कर रहे हैं ? रत्नसिंह और पीरू ने मंगली की हत्या की है, तो उनको इसका फल भोगना चाहिए। अब आपने गांव में बनी नालियां तोड़ दी हैं यो उसका फल आपको मिल गया है। अब यदि कुछ और करोगे तो उसका फल तो इससे भी भयंकर हो सकता है।

"इसलिए मैं तो यह चाहती हूं कि यह झगड़ा बन्द कर दो और यहां इकट्ठा होना भी ठीक नहीं।"

"पर किसनू तो स्कूल जला देगा। वह मुझको आज सवेरे से ही कह रहा है।"

"आप उसको मना कर दीजिए। भला स्कूल जलाने से किसकी हानि होगी ? मास्टर और चौधरी का तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, गांव के बच्चे पढ़ने से वंचित रह जाएँगे।"

"मेरे मकान जलाने का बदला तो निकल जाएगा।"

"आपके कहने का यह अर्थ हुआ कि स्कूल जला देने से हमारा मकान खड़ा हो जाएगा।"

"तो चुप रहने से मकान खड़ा होगा क्या ?"

"हां। शान्ति से रहने पर और परिश्रम करने पर मकान खड़ा हो सकता है।"

हरपाल बहुत ही परेशानी में पड़ गया। उसका मन तो यह कहता था कि गांव की नई बिरादरी ने ही उसके मकान को आग लगाई है। इससे ही वह इस परिणाम पर पहुंचा था कि यदि दूसरे पक्ष वाले चाहें तो वे भी हानि पहुंचा सकते हैं। चूंकि उस पक्ष में लोग अधिक धनी, चतुर और संगठित हैं, इस कारण वे अधिक हानि पहुंचा सकते हैं। उसके अपने पक्ष में प्रायः गँवार, मूर्ख और गरीब आदमी थे। वह भलीभांति समझ गया था कि उस संघर्ष में उसको हानि ही होगी। इससे अपनी पत्नी के समझाने पर वह शान्त हो गया।

दूसरी ओर सुन्दरसिंह हरपाल के मकान को आग लग जाने पर और उसमें उसकी गर्भवती स्त्री के जल जाने की संभावना का विचार कर कांप उठा था। मास्टर से तो वह खुलकर बात नहीं कर सका था।

और जो कुछ मास्टर ने उससे कहा था, उससे उसको सन्तोष नहीं हुआ था। इस कारण उसने भूपति को बुलाकर पूछा, "भूपति ! मुझको उसकी बात से सन्तोष नहीं हुआ। मैंने बीस वर्ष तक चौधरीपन किया है और मैं लड़ने वाले पक्षों में समझौता कराता रहा हूं। जब कभी भी मैंने देखा कि अपराधी नहीं मानता तो सदा कुछ ले-देकर फैसला करता रहा हूं। कल हमने एक नई परिपाटी को जन्म दिया है। वह मुझको ठीक नहीं लगी।"

"चौधरी !" भूपति ने अपने मन की बात कह दी। मैं नहीं जानता कि आग किसने लगाई है। हमारी कमेटी ने इस आग को लगाने का निश्चय नहीं किया था। इस पर भी मैं कभी भी तुम्हारी नीति को पसन्द नहीं करता था। इसी से गुंडों का साहस बढ़ा है।"

"मास्टर ने और हमने परिश्रम से पैदा किए धन को लगाकर गांव की भलाई के लिए नालियां बनवाई थीं। हमको पक्की रिपोर्ट मिल गई थी कि नालियों की ईंटें हरपाल के घर पहुंची थीं। इस बात का विश्वास हो जाने पर भी हम हरपाल को इस चोरी का दण्ड नहीं दिलवा सकते थे। अब हरपाल को पता चल गया होगा कि उसको दण्ड देनेवाली गांव में एक और शक्ति भी है। मैं समझता हूं कि इससे हम गांव में सुधार का काम शान्ति से कर सकेंगे।"

"पर यदि आग लगाने वाला पकड़ा गया तो ?"

"तो हम उसका बचाने का यत्न करेंगे।"

"पर वह है कौन ?"

"मैं नहीं जानता।"

"मुझको संदेह है कि वह मास्टर है।"

"यदि उसने आग लगाई है तो उसने हरपाल की पत्नी को बचाने के लिए अपना जीवन खतरे में क्यों डाला ?"

"इसी से तो मुझको संदेह हो रहा है कि यह आग उसने ही लगाई थी। जब उसको पता चला कि हरपाल को हानि उसके अनुमान से अधिक होने जा रही है, तो उसने यह प्रायश्चित्त किया है।"

"तब तो वह बहुत ही अच्छा आदमी है। चौधरी ! यदि मास्टर पकड़ा गया तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति लगा दूंगा और उसको बचाने का यत्न करूंगा।"

"तो तुम इसको अच्छा काम समझते हो ?"

"जिस किसी ने भी किया है, ठीक ही किया है। पिछले दस दिन से हम गांव में पहरा बैठाकर नालियों के तोड़े जाने को रोकना चाहते थे,

परन्तु सफल नहीं हुए थे। सुरक्षा करने से ग्राक्रमरण करने वाले को हानि नहीं पहुंचती। इससे वह यह समझने लगता है कि वह इतना शक्तिशाली हो गया है कि उसकी ग्रोर कोई उँगली भी नहीं उठा सकता। इस कारण ग्राततार्इ के मस्तिष्क का खुमार उतारने के लिए सुरक्षा के साथ-साथ ग्रन्याय करने वाले के विरुद्ध भी ग्राक्रमरण करना ठीक रहता है।"

"हरपाल की पत्नी यदि जलकर मर जाती तो घोर पाप लगता।"

"मैं इसको ऐसा नहीं मानता। जब हरपाल की पत्नी हरपाल के दुष्कर्मों को रोकती नहीं तो फिर उसके कामों से पृथक् कैसे हो सकती हैं? देखो चौधरी! यदि संसार में दुष्टता के साथ समझौता करते रहेंगे तो भलाई का कुछ भी मूल्य नहीं रह जाएगा। मैं तो यह समझता हूं कि हमारा उद्देश्य ठीक था।

"हमारे गांव में बुरे कामों की एक शृंखला सी चल पड़ी है। सरकार की सत्ता उस शृंखला को तोड़ नहीं सकी। यत्न तो सरकार ने किया है, परन्तु यह यत्न सफल नहीं हो सका। पांधा संतराम दण्डित हुग्रा, जग्गू कैद हुग्रा, रत्नसिंह ग्रौर सालिगराम फँस गए, इस पर भी ग्रपराधों की शृंखला न टूटी। कारण यह कि सरकार की दण्ड नीति के साथ-साथ गांव की जनता का सहयोग ठीक नहीं हुग्रा। हमारा सहयोग तो गांव के गुंडों के विचार बदलने की दिशा में होना चाहिए था। पांधा सन्तराम, जग्गू, सालिगराम ग्रादि यह समझते रहे कि वे सच-झूठ बोलकर गांव वालों को विपक्षियों के विरुद्ध कर सकेंगे। परन्तु ग्रब स्थिति यह है कि उनको पता चल गया है कि सरकार के साथ-साथ गांव वाले भी उनके विरुद्ध हो गए हैं ग्रौर उनमें भी ऐसे मनचले हैं, जो जान हथेली पर रखकर घूमते हैं। चौधरी! विश्वास रखो, ग्रब गुंडपना ग्रधिक देर तक नहीं चल सकेगा।"

रात के समय सुन्दरसिंह ने ग्रपना संशय घर के लोगों के सामने वर्णन कर दिया। सोहनलाल, परमेश्वरी, केवली, महिन्दर ग्रौर मास्टर जगतराम, सब एकत्रित थे, जब सुन्दरसिंह ने कहा, "बहुत ही विचित्र बात है कि भूपति भी नहीं जानता कि ग्राग किसने लगाई है।"

"तो चाचा!" परमेश्वरी ने कहा, "इसमें सरकार भी बेचारी यत्न करती रही है, परन्तु ग्रपराधों को रोकने में सफल नहीं हुई। ग्रब यह परीक्षरण एक ग्रादमी ने उसी ही दिशा में किया है। देखें, इसका क्या फल निकलता है? ग्राशा तो यह है कि फल ग्रच्छा ही होगा।"

वे ग्रभी इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि घर के बाहर बहुत से लोगों के एकत्रित हो चौधरी को पुकारने की ग्रावाज़ ग्राई। सब उठकर

बाहर चले आए। बाहर बहुत से आदमी खड़े थे। चौधरी बाहर आया तो गांव की चौकी का सिपाही और गांव के कुछ लोग किसनू को पकड़ उसके हाथ-पांव बांधे खड़े हुए दिखाई दिये। चौधरी ने पूछा, "क्या हुआ है भाई?"

भूपति के एक कामे ने कहा, "चौधरी! हमारी 'ड्यूटी' स्कूल के पहरे पर लगी हुई थी। यह किसनू स्कूल के पीछे से जाता हुआ स्कूल पर एक पलीता फेंकता हुआ देखा गया। हमने इसको पकड़ लिया। इसी समय यह संतरी साहब भी वहां आ पहुंचे। अब हम इसको पकड़कर चौकी ले जा रहे हैं।"

: ५ :

किसनू के पकड़े जाने से गांव में शान्ति हो गई। हरपाल के साथी डरने लगे थे कि कहीं किसनू बक गया तो सबको पकड़वा देगा। वे जितना कुछ हो गया था, उस पर ही सन्तोष करने लगे थे। हरपाल भी अपनी गर्भवती पत्नी की प्रेरणा से अपने साथियों को किसी प्रकार का बदला लेने से मना करता रहा। हरपाल के मन में यह भय समा गया था कि यदि वह पकड़ा गया तो उसकी पत्नी ऐसी अवस्था में निस्सहाय हो जाएगी।

इस पर भी जब किसनू के बयान हुए तो सब चकित रह गए। किसनू ने अपने बयानों में कहा कि हरपालसिंह के घर आग उसने ही लगाई थी और वह स्कूल को भी आग लगाने जा रहा था। इस बयान से, सबसे अधिक विस्मय हरपाल के आदमियों को हुआ था। परन्तु पुलिस ने मुकदमा अदालत में पेश कर दिया था। किसनू के विरुद्ध इंडियन पीनल कोड की दफा चार सौ छत्तीस के अनुसार मुकदमा बना दिया गया और उसको एक वर्ष का कठोर दण्ड मिल गया।

हरपालसिंह की आय का बहुत सा रुपया रत्नसिंह के मुकदमे में व्यय हो गया था। इस कारण वह किसनू के मुकदमे में कुछ भी सहायता नहीं कर सका। रत्नसिंह इत्यादि का मुकदमा अब हाई कोर्ट में चला गया था और वहां पर बहस होने वाली थी। हाई कोर्ट की उस दिन की पेशी के लिए एक हज़ार रुपया खर्च हो चुका था।

इन दिनों हरपालसिंह के घर लड़का हुआ और उसकी स्त्री अपना घर बनवाने के लिए बहुत चिन्तित थी। बच्चा दो महीने का हो रहा था और वर्षा ऋतु आ गई थी। पांधा सन्तराम का मकान पांच वर्ष से बिना मरम्मत के पड़ा हुआ था। इस कारण वह स्थान स्थान से चू रहा था।

एक दिन हरपाल लाहौर गया हुआ था। रत्नसिंह इत्यादि के मुकदमे

का फैसला सुनाया जाना था। यूं तो उसको सायंकाल आठ बजे की गाड़ी से आ जाना था परन्तु गाड़ी वर्षा के कारण लेट हो गई थी और फिर ढिलवां तक आने में और भी देरी लग गई।

उस दिन वर्षा बहुत ज़ोर से हो रही थी और पांधा सन्तराम का मकान चारों ओर से चू रहा था। कोई भी कमरा ऐसा नहीं था, जो वर्षा के जल से तरवतर न हो रहा हो। रात के दस बज रहे थे। वर्षा मूसलाधार हो रही थी और हरपाल की पत्नी अपने बच्चे को कपड़े में लपेटे हुए, कमरे के एक कोने में खाट पर बैठी थी। वह परेशान हो रही थी कि क्या करे। उसकी खाट के नीचे पानी एकत्रित होना आरम्भ हो गया था।

वह घर छोड़कर किसी अन्य के घर में जाना चाहती थी। रत्नसिंह की पत्नी भी लाहौर मुकदमे की सुनवाई के लिए गई हुई थी और उसके घर में भी कोई नहीं था। वह घर को ताला लगाकर गई थी। गांव में किसके घर जाए, वह निर्णय नहीं कर सकी थी। पहिले तो उसने यह विचार किया कि अपने पति के आते ही, जिसके घर में वह कहेगा, वह चली जाएगी, परन्तु गाड़ी का समय बीते हुए बहुत देर हो चुकी थी और वह अभी तक नहीं आया था। उसके विचार से आधी रात व्यतीत हो चुकी थी और वर्षा से उसका कमरा, जो अन्य कमरों में से सबसे अच्छा था, पानी से भर चुका था। वह और सहन नहीं कर सकी। उसने बच्चे को कपड़े में लपेटा और अपने ऊपर कम्बल ओढ़ घर से निकल आई।

उसके मन में आया कि भूपति के घर चली जाए। इस पर उसको समझ में आया कि किसी के घर जाना ही है तो चौधरी के घर ही क्यों न चली जाए। कम-से-कम वहां औरतें हैं और बच्चे भी हैं। घर से निकल वह एक क्षण तक विचार कर चौधरी के घर चली गई।

रात के ग्यारह बज चुके थे, जब उसने चौधरी के घर का दरवाज़ा खटखटाया। मास्टर अपने कमरे में बैठा अध्ययन कर रहा था और महिन्दर मीरा को सिलाई का एक नमूना सिखा रही थी। केवली अपने कमरे में बैठी हुई गुरु ग्रन्थ साहब पढ़ रही थी। इस समय दरवाज़ा खटखटाने का शब्द हुआ। चौधरी का कमरा दरवाज़े के पास था। इस कारण उसने उठकर दरवाज़ा खोला और इस स्त्री को कम्बल ओढ़े खड़ा देख पूछने लगा, "क्या चाहती हो?"

सरवन कौर, यह हरपाल की पत्नी का नाम था, धीरे से बोली, "चाचा! भीतर तो आने दो। बच्चा भीग रहा है।"

इस समय कम्बल के बीच में से बच्चा रो पड़ा। बच्चे की आवाज़ सुन चौधरी पीछे हट गया। और महिन्दर को आवाज़ देने लगा,

"महिन्दर बेटी ! महिन्दर !! इधर आना।"

इस समय तक सरवन कौर मकान के भीतर हो चुकी थी। उसने भीगा कम्बल उतार दिया और बच्चे को छाती से लगाकर गरम करने लगी।

महिन्दर आई तो पहिचान नहीं सकी कि कौन आया है। सरवन कौर का विवाह हुए अभी थोड़ा ही काल हुआ था। साथ ही महिन्दर कौर विधवा होने के कारण विवाह-शादी में प्रायः नहीं जाया करती थी। इस कारण वह सरवन कौर को पहिचानती नहीं थी। इस पर भी उसने गीला कम्बल उसके हाथ से पकड़ लिया और कहा, "आओ बहिन ! भीतर आ जाओ। यहां तो सर्दी है।"

वह सरवन कौर को अपने कमरे में ले गई। जब वह उसे ले जा रही थी तो चौधरी ने कहा, "बेटा ! पूछकर बताना यह क्या चाहती है ?"

सरवन कौर जब महिन्दर कौर के कमरे में गई तो मीरा, जो उसको भलीभांति पहिचानती थी, उसको देख अवाक् खड़ी रह गई। मीरा ने सरवन कौर को अपनी खाट पर बैठाया और बच्चे को अपनी गोदी में लेकर उसको चुप करने का यत्न कर पूछने लगी, "इतनी बारिश में इसको लेकर क्यों आई हो, भाभी ?" मीरा ने कहा।

"मैं समझती हूं कि तुम महिन्दर कौर हो।" सरवन कौर ने महिन्दर कौर की ओर देखकर पूछा "हां बहिन ! मैं ही महिन्दर हूं। मुझसे काम है तुम्हारा ?"

"किसी से समझ लो। हमारा घर बुरी तरह चू रहा है। यह दो महीने का बच्चा सर्दी से ठिठुरने लगा तो इसको लेकर यहां भाग आई हूं। इसका पिता घर पर नहीं है। कल तक आ जाएगा और फिर जहां वह मुझको ले जाएगा, चली जाऊंगी।"

"ठीक है तुम रहो। यहां अपने कमरे में तुम्हारे लिए एक और खाट डलवा देती हूं। भोजन किया है या नहीं ?"

"नहीं। चू रहे मकान में भोजन बनाने के लिए स्थान ही कहां था?"

"तो ठहरो। मीरा ! जाओ तुम छोटी भाभी को बुला लाओ। वह इनके पास बैठेगी तो मैं दो रोटी सेंक दूंगी।"

"पर इस समय कितने बज गए होंगे ?"

"मीरा ! जाओ मास्टर जी से समय पूछ आओ। बहिन ! तुम आराम से बैठो।"

सरवन कौर ने बच्चे को अब अपनी गोदी में लेकर दूध पिलाना आरम्भ कर दिया। मीरा को गया देख सरवन कौर ने महिन्दर कौर से पूछा, "मुझको जानती हो तुम ?"

"नहीं। मैंने नहीं पहिचाना। कहां है घर तुम्हारा ?"

"तीन महीने हुए यहां गांव में आग लग गई थी और एक मकान जलकर स्वाहा हो गया था। उस घर वाले पांधा के मकान में चले गए थे। पांधा का घर बुरी तरह चू रहा है।"

"ओह! तो तुम भाभी सरवन कौर हो! बहुत अच्छा किया है जो यहां चली आई हो। भैया कहां गए हैं ?"

"वे लाहौर गए हैं। आज मगली का मुकदमा है न। हाई कोर्ट ने फैसला सुनाना था।"

"ठीक। तो वे नहीं आए। कोई बात नहीं। गाड़ी छूट गई होगी। कल दोपहर की गाड़ी से आ जाएंगे।"

इस समय केवली आई तो महिन्दर ने कहा, "भाभी! सरवन कौर आई हैं। पांधा का मकान चू रहा था और बच्चे को कष्ट हो रहा था। इस कारण यहां चली आई हैं।"

केवली ने बैठते हुए कहा, "हरपाल भैया कहां हैं ?"

सरवन कौर ने बताया तो वह भौंचक्की हो देखती रह गई। कुछ विचार कर उसने पूछा, "बहिन! कहो तो चाचा को तुम्हारे आने की बात कह दूं ?"

"क्यों न कहो ?"

"मैं समझी थी कि तुम मर्दों से चोरी आई हो।"

"बताकर तो नहीं आई। वे घर पर हैं ही नहीं। पर मैं यहां आना चोरी रखना नहीं चाहती।"

"तब तो ठीक है। तुम बैठो। मैं चाचा को बता दूं।"

केवली बाहर सुन्दरसिंह के कमरे में चली गई। उसने जब सरवन कौर का परिचय दिया तो वह भी एक क्षण तक विस्मय में बैठा रह गया। फिर तुरन्त ही अपने को संभालकर उसने कहा, "देखो, उसके बच्चे को कोई कष्ट न हो।"

महिन्दर कौर रोटी और दाल गरम कर लाई। सरवन कौर ने खाई और फिर बच्चे को दूध पिलाकर महिन्दर कौर के कमरे में ही सो गई।

दिन चढ़ने पर वह उठी। उसने देखा कि बारिश अभी थमी नहीं। इससे उसने महिन्दर कौर को कहा, "ज़रा किसी आदमी को भेजकर पता कर दो कि इसके पिता आए हैं अथवा नहीं ? यदि आ गए हैं तो पता दे दो कि मैं यहां हूं।"

महिन्दर ने चाचा को, जो अभी शिवमन्दिर में जल चढ़ाकर आया था, बताया कि हरपालसिंह का पता करना चाहिए।

सुन्दरसिंह को भेज दिया। हरपाल रात को बारह बजे के लगभग गांव में पहुंचा था। वह रत्नसिंह की पत्नी को अपने घर छोड़कर पांधा के कर आया तो मकान को खुला देख चकित रह गया। उसने रोशनी कर सारा मकान ढूंढा और अपनी पत्नी तथा बच्चे को कहीं भी न देख बहुत परेशान हुआ। यह तो वह समझ गया था कि उसकी पत्नी किसी परिचित के घर चली गई होगी, परन्तु किसके घर गई होगी, वह यह समझ न सका। उसने एक-दो मित्रों के घर जाकर पता कियापरन्तु कुछ पता न चला। विवश वह रत्नसिंह के घर जाकर सो रहा।

प्रातःकाल वह विचार ही कर रहा था कि कहां उसको ढूंढे, कि लहनू उसको ढूंढता हुआ रत्नसिंह के घर आ पहुंचा। हरपाल बाहर आया तो लहनू ने कहा, "बाबू! चौधरी ने कहा है कि तुम्हारी पत्नी और बच्चा उसके घर हैं।"

"चौधरी के घर पर?"

"हां।"

हरपाल कितनी ही देर तक भौंचक्का हो लहनू का मुख देखता रह गया। लहनू ने आगे कह दिया, "रात के ग्यारह बजेबीबीबच्चेको कंबल में लपेटे हुए वहां आईं और कह रही थीं कि पांधा के घर में तो खड़े रहने को भी स्थान नहीं रहा था।"

हरपाल के होश ठिकाने हुए तो वह अपनी स्त्री के इस व्यवहार पर जल-भुन गया। पर अब हो ही क्या सकता था? उसके मन में आया कि अपनी पत्नी को बालों से पकड़कर घसीट लाएऔरखूबपीटे। इस विचार के आते ही उसने सोचा कि उसे लाएगा कहां? पांधा के घर की अवस्था तो वह देख ही चुका था। वहां तो सचमुच ही खड़े होने का स्थान नहीं था। इस विचार के आने पर वह शान्त हो गया और आंखें नीची किए हुए, कम्बल लपेट चौधरी के घर को चल पड़ा।

चौधरी घर पहुंचा तो दोनों बहुओं ने पायलागं कही। वे सब महिन्दर कौर के कमरे में सरवन कौर के साथ बैठी कलेवा कर रही थीं। सुन्दरसिंह ने आते ही कहा, "क्यों बेटा सरवन! रात को कोई कष्ट तो नहीं हुआ?"

"चाचा! बहुत कष्ट दिया है मैंने आपको?"

"क्यों? कैसा कष्ट बेटा! तुम हमारे गांव की पतोहू हो। तुम जहां भी जाओ, गांव में कोई भी घर तुम्हारे लिए बन्द नहीं हो सकता।"

"परन्तु आपके साथ तो बात दूसरी थी न। उन्होंने आपका भारी

विरोध किया था।"

"हम सब जानते हैं कि हरपालसिंह और उसके साथियों ने हमारे साथ क्या किया है ? जो अहित गांव वालों का उसने किया है, वह भी हम जानते हैं। परन्तु बेटा ! तुमने और बच्चे ने तो कोई अपराध नहीं किया। फिर तुम गांव की बहू हो।"

"उनको भी कह देना कि झगड़े की बात पृथक् है। वह जब आवश्यकता पड़ेगी तो पुरुष लोग कर लेंगे। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि आवश्यकता पड़ने पर हम एक दूसरे की सहायता न करें। मैंने हरपाल को यहां बुलाया है। मेरा कहा मानो, अब, जब तक तुम्हारा अपना घर बन नहीं जाता, तुम दोनों यहां ही रह जाओ। रामसिंह के मकान में एक कमरा तुमको खाली करवा दूंगा।

सरवन चुप रही। वह तो वर्षा का समय निकालने आई थी और यहां के लोग उसको यहां ही रह जाने को कहने लगे थे।

हरपाल आया तो चौधरी ने उसको बैठाकर कहा, "कहां गए थे ? तुम्हारे पीछे बच्चे को भारी कष्ट रहा है।"

"क्या हुआ है चाचा ?"

"देख नहीं रहे वर्षा को ? कितने ज़ोर से हो रही है ? और पांधा का मकान तो बिल्कुल ढोडा हो रहा है।"

"रात भर मुझको बहुत चिन्ता लगी रही।"

"रात किस समय आए थे ?"

"बारह बजे के लगभग। लाहौर गया था। पीरू की फांसी का हुक्म बहाल रहा। रत्नसिंह और सालिगराम को पांच साल की कैद हुई है।"

"यह तो बहुत ही बुरा हुआ है। हरपाल ! हमारा यह आशय नहीं था। इसीलिए तो पंचायत बुलाई थी। जब पंचायत ने निर्णय किया था कि मंगली गांव छोड़ चली जाए, तो उसको जाने का अवसर देना चाहिए था।"

"पर चाचा ! एक बात तुम नहीं जानते। वास्तव में यह बात कोई नहीं जानता। रत्नसिंह और पीरू ने कुछ अन्य लोगों के साथ मंगली से ज़बरदस्ती बदफेली की थी। वे उसको पांच रुपये देना चाहते थे और कह रहे थे कि यदि वह इस प्रकार रहना चाहे तो रह सकती है। मंगली ने पांच रुपये का नोट उनके मुख पर दे मारा था और विह्वल हो रोती रही थी। पश्चात् सब लोग चले आए और मंगली ने स्वयं ही फांसी लगा ली थी।"

"यह तो और भी बुरा हुआ। इन लोगों ने उसको मारा नहीं, परंतु

उसको आत्म-हत्या करने पर विवश कर दिया था।"

"अपने किए का फल वे पा गए।"

"परन्तु मैं तुमसे यह आशा नहीं करता था। यह गांव की नालियां तुड़वाना तो अपनी ही नाक कटवाने के समान है।"

"पर चाचा! तुमने भी तो कम नहीं किया। मेरा मकान ही जला डाला।"

"आग लगने के बारे में हमें कुछ पता नहीं। मैंने अपने सब आदमियों से पूछा था। कोई नहीं जानता था कि आग किसने लगाई है। इसके विपरीत किशनू ने तो अदालत में बयान दे दिए हैं कि तुम्हारे मकान को आग उसने लगाई है। इससे हमारे लोगों का यह अनुमान है कि किसनू का आशय तो केवल हमें बदनाम करना था। जब वह पकड़ा गया तो बक गया।"

"मुझको बिल्कुल विश्वास नहीं है उसके बयानों पर।"

"कुछ भी हो। अब तुम बताओ कि क्या करना चाहते हो? रत्नसिंह के घर में रहना चाहते हो?"

"वहां हमारे लिए जगह ही कहां है? उनकी सारी भूमि तो गिरवी रखी है और कर्ज़ा इतना है कि अब बेचे बिना काम नहीं चलेगा। लाला कर्मचन्द कह रहा था कि भूमि नीलाम भी हुई तो भी कर्ज़ा नहीं चुकेगा। इस कारण मकान भी नीलाम करना पड़ेगा।"

"मेरी हालत यह है कि कर्ज़ा मेरे सिर पर भी बहुत है। मकान रहा नहीं। फसल तो है परन्तु उससे क्या-क्या करूंगा, जानता नहीं।"

"देखो हरपाल! मैं तुमको एक उपाय बताता हूं। तुम मकान बनने तक यहीं रहो। मैं तुम्हारा मकान बनवा देता हूं। जो खर्चा होगा, वह तुम जब तुम्हारे पास होगा दे देना।"

"मतलब यह कि मकान बनवाने के लिए तुम उधार दोगे?"

"यही समझ लो।"

"सूद क्या लोगे?"

"हरपाल! मैं सूदखोर नहीं हूं। मैं तुम्हारी सहायता के लिए यह रुपया दे रहा हूं। मैं तो यह भी विचार कर रहा था कि यदि तुम फसल बेचने का प्रबन्ध मेरे हाथ में दे दो तो मैं तुम्हारा कर्ज़ा भी चुका दूंगा। इससे तुम सूद देने से बच जाओगे।"

"तो खाना-पीना कहां से होगा?"

"तुम मेरे घर रहोगे तो क्या खाना-पीना कहीं बाहर से आएगा? यह नहीं हरपाल! मेरे घर पर रहने का अर्थ है, घर का प्राणी बनकर

रहना।"

"चाचा! एक बात मुझको समझ नहीं आ रही। तुम यह सबक्यों करोगे? तुमको बहुत घाटा रहेगा।"

"नहीं हरपाल! मुझको घाटा नहीं होगा। मेरा अनुमान है कि तुम्हारे खेतों की फसल इस वर्ष इतनी होगी कि कर्मचन्द का रुपया अदा हो जाएगा। रहा मकान का खर्चा, वह तुम अगली फसल में से दे देना।"

हरपालसिंह सुन्दरसिंह का मुख देखता रह गया। अन्त में उसने कहा, "चाचा! मैंने तुम्हारे साथ कोई मित्रता का व्यवहार नहीं किया। इससे तुमसे किसी प्रकार की सहायता लेने में मुझे संकोच होता है।"

"तुम कुछ मूर्ख हो हरपाल! तुमने मित्रता नहीं की, क्या मैं यह नहीं जानता। इस पर भी मैं तुमको सहायता देकर खड़ा करना चाहता हूं। कर्मचन्द तो सूद से तुम्हारी हड्डियां तक चूस जाएगा। तुमने झगड़ा करना है तो फिर शक्ति इकट्ठी होने पर कर लेना। इस समय तो तुम शक्तिहीन हो गए हो। तुमसे शत्रुता करने में भी मज़ा नहीं रहा।"

हरपाल विचारमग्न चुप हो गया। वह समझ नहीं सका कि क्या करे। अन्त में सुन्दरसिंह ने कहा, "उठो, जाओ, स्नानादि से निपट लो। पीछे कलेवा करना।"

मास्टर जगतराम बाहर यह देखने निकला कि वर्षा थम गई है या नहीं। वह बारिश के कारण स्कूल को बन्द करने की सोच रहा था। बैठक में आया तो हरपाल को बैठा देख उसके पास चला आया और नमस्ते कर पूछने लगा, सुनाइए हरपालसिंह जी! रत्नसिंह के मुकदमे का क्या हुआ?"

हरपाल ने मास्टर की नमस्ते का उत्तर देकर कहा, "पीरू की सज़ा बहाल रही। रत्नसिंह और सालिगराम की सज़ा सात वर्ष से कम होकर पांच वर्ष की रह गई है।"

"भाई! तुमने तो उसकी बहुत सहायता की है, पर यह किसनू तो तुम्हारा आदमी था। इसने तुम्हारे मकान में आग क्यों लगा दी?"

"पता नहीं क्यों यह हुआ?"

"भाई! अब तुमको अपना भी विचार करना चाहिए। अब तो एक बच्चे के पिता बन गए हो।"

"मास्टर जी! उस दिन मेरी पत्नी को बचाने का जो काम आपने किया है, वह मैं जन्म भर नहीं भूल सकता। अब चौधरी मुझको मेरे मकान बन जाने तक अपने ही घर में रहने के लिए कह रहा है। मकान

बनाने में भी सहायता देने के लिए कह रहा है।"

"चाचा ठीक ही कह रहे हैं। मैंने सुना है कि कर्मचन्द तुमसे भारी सूद लेता है। मैं समझता हूं कि उससे जितनी जल्दी छूट सको, उतना ही अच्छा है।"

"तो तुम लोगों को मेरा यहां रहना बुरा प्रतीत नहीं होगी ?"

"हमें क्यों बुरा लगेगा ?"

"मैंने तुम्हारे साथ शत्रुता जो की थी ?"

"कब ?"

"मास्टर कुन्दनलाल को भड़काकर मैंने उससे तुम्हारे खिलाफ चिट्ठी लिखवाई थी।"

"सच ? तो मुझको पता नहीं था। इस पर भी मैं तुमको बताना चाहता हूं कि इससे मुझे कुछ भी हानि नहीं हुई। स्कूल को भी लाभ ही हुआ है। सरकारी सहायता मे हम दस्तकारी सिखाने का प्रबन्ध न कर सकते, जो हम अब कर रहे हैं।"

"मैं तो इस स्कूल से एक पैसा भी नहीं लेता। इस कारण मेरी हानि की बात तो जब भी न होती, जब यह स्कूल बन्द हो जाता। हानि होती तो गांव में बच्चों की होती।

"मुझको तुमसे कोई द्वेष नहीं। हां, कुछ बातों में विरोध अवश्य है, परन्तु वह विरोध द्वेष भाव से नहीं था। वह भी तो परोपकार के भाव से ही किया था।"

: ६ :

हरपालसिंह सुन्दरसिंह के मकान में ही ठहर गया। इस प्रकार सुन्दरसिंह का विरोध करने वालों में से यह अन्तिम व्यक्ति उसके अहसान के नीचे दब गया। कुछ अन्य लोग थे, परन्तु वे तो रत्नसिंह आदि के दुमछल्ले थे। जब दुम ही कट गई तो वे भी शान्त हो गए।

स्कूल पूरे जोर-शोर से चल रहा था। भूपति की बिरादरी पुन गांव की पंचायत में बदल गई। सबकेसब जमींदार अपनी उपज का सोलहवां भाग पंचायत को देते थे और इसकी आय से गांव की नालियां, सड़कें पक्की होने लगीं तथा उद्यान और पुस्तकालय बन गए।

स्कूल में मास्टर जगतराम केसाथ महिन्दर, केवली और चुन्नीलाल के साथ एक और मास्टर मिल गया। यह भी गांव का लड़का था, जो जालन्धर से दसवीं पास कर आया था। स्कूल में दस्तकारी का प्रबन्ध

पूर्ववत् था और प्रत्येक लड़के को यह सीखनी पड़ती थी।

हरपालसिंह सुन्दरसिंह के मकान में आठ मास तक रहा। उसके खेतों की उपज से कर्मचन्द का रुपया उतर गया। सुन्दरसिंह ने अपने पास से रुपया खर्च कर उसके मकान के लिए ईंटें पथवा दीं और सीमेंट मंगवा दिया और वर्षा समाप्त होते मकान बनवाना आरम्भ कर दिया।

इन आठ महीनों में हरपालसिंह और उसकी पत्नी की मानसिक अवस्था में भारी परिवर्तन हुआ था। जब से वे सुन्दरसिंह के घर आए थे, वे संशय-बुद्धि थे। सरवन कौर को अपने पति से अधिक विश्वास था। वह सुन्दरसिंह के घर के लोगों को अच्छे आदमी समझती थी, इस पर भी वह संशयों से बिल्कुल ऊपर नहीं थी। दोनों न्यूनाधिक मात्रा में चौधरी के उनको अपने घर में रखने के उद्देश्यों पर संशय करते थे।

पहिले ही दिन अपने कमरे में बैठे हुए दोनों अपने मन के संशयों को कहने से रुक नहीं सके। हरपालसिंह ने कहा, "सरवन! मुझको तो अपनी वर्तमान अवस्था पर विश्वास ही नहीं होता। मैं स्वप्न में भी इस बात का विचार नहीं कर सकता था कि सुन्दरसिंह मुझको अपने घर में रखेगा।"

"सबसे अधिक विस्मयजनक व्यवहार तो मास्टर जगतराम का है। मास्टर को पता चल गया है कि आपने कुन्दनलाल को भड़काकर चिट्ठी लिखवाई थी। आपने जब उसको बताया तो उसने सहज स्वभाव में कह दिया कि उसका आपसे कोई विरोध नहीं। उसका विरोध भी तो परोपकार के भाव में ही होता है।"

"मुझको तो यह सब बनावटी बात प्रतीत होती है। मैं कभी सोचता हूं कि कंडेवाल कोई तीर्थ स्थान है क्या? अथवा क्या यहां मास्टर के मां बाप की हड्डियां गढ़ी हैं जो यह बिना वेतन लिए यहां रह रहा है? इसमें अवश्य कोई रहस्य है।"

"तो आपका मतलब है कि मास्टर का यहां, किसी स्त्री से इस प्रकार का सम्बन्ध है?"

"देखो सरवन! मैं बहुत पढ़ा-लिखा आदमी नहीं हूं। इस पर भी मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को समझता हूं। कभी किसी पुरुष को किसी स्थान पर बांध कर रखने में धन, सम्पत्ति, स्त्री अथवा पदवी ही कारण होते हैं। मुझको तो इनके अतिरिक्त और कोई वस्तु दिखाई नहीं देती, जिससे कोई पुरुष किसी स्थान पर बैठा रहे।"

"धन तो मास्टर को यहां से मिल नहीं रहा। इसकी इस गांव में कोई सम्पत्ति नहीं। यहां इसको कोई पदवी भी प्राप्त नहीं। यह पढ़ा-

लिखा विद्वान और बुद्धिशील व्यक्ति है। इस पर भी अपनी जीवन की सर्वोच्च घड़ियां इस गांव में गाल रहा है। इससे तो एक ही परिणाम निकाला जा सकता है कि सुन्दरसिंह के घर की किसी स्त्री से इसका अनुचित सम्बन्ध है।"

"इस घर में दो ही स्त्रियां हैं, जिनसे किसी परपुरुष का सम्बन्ध हो सकता है। एक केवली और दूसरी महिन्दर कौर।"

"इस पर भी विस्मयजनक बात यह है कि सुन्दरसिंह जैसा अनुभवी आदमी इसको न केवल गांव में रखे हुआ है, प्रत्युत् अपने घर में ही।"

"मज़ेदार बात तो यह है कि सब गांव वालों के सामने सालिगराम ने इसकी लड़की पर लांछन लगाया तो भी इसने इसको घर से नहीं निकाला।"

"देखो सरवन ! अब हम इस घर में कुछ काल तक तो रहेंगी ही। इससे आशा है कि सब रहस्य जान जाएंगे।"

"पर मैं समझती हूं कि इससे हमको क्या लाभ होगा ? विशेष रूप में जब चौधरी हमारे साथ इतना कुछ कर रहा है।"

"इससे तो संदेह और भी अधिक हो रहा है। मुझको कुछ यह भी प्रतीत हो रहा है कि चौधरी हम पर इतना दयालु केवल इस कारण है कि हम उसकी त्रुटियों की ओर ध्यान न दें।"

"कुछ भी हो। लाभ तो हमको हो ही रहा है और यदि उसने हमारे मकान बनवाने में सहायता दी तब तो हम जन्म भर उसके एहसान के नीचे दबे रहेंगे और उसकी निन्दा नहीं करेंगे।"

"इस पर भी तनिक सतर्क रहने में क्या हानि है !"

इस प्रकार दोनों अपनी आंखें खोलकर चौधरी के घर की बातों की देखरेख करने लगे।

दस-बारह दिन तक इस घर में रहने का जो प्रथम प्रभाव सरवन कौर के मन पर हुआ, वह सुन्दरसिंह के घर के लोगों के विषय में कुछ अच्छा नहीं था। सरवन कौर देख रही थी कि महिन्दर मास्टर की सेवा-सुश्रुषा कुछ ऐसे ढंग से करती है, जैसे वह उसका पति हो। मास्टर का बिस्तर लगाना, उसके कपड़े धोना, कपड़े सीना अथवा मरम्मत करना, उसको भोजन कराना अर्थात उसकी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति महिन्दर करती थी। वह विचार करती थी कि एक युवा स्त्री क्यों एक युवा पुरुष की इस प्रकार की सेवा करती है। वह स्वयं भी तो अपने पति की इतने परिश्रम से सेवा नहीं कर पाती थी।

इस पर विस्मयजनक बात यह थी कि महिन्दर का यह व्यवहार घर

के अन्य लोगों से छुपकर नहीं होता था। सरवन कौर ने जहां तक संभव था, उनकी परस्पर बातों के विषय में जानने का यत्न किया। इन दिनों में दो-तीन बार अकस्मात् मास्टर के कमरे में जा पहुंची थी। वह इस प्रकार वहां जाने से उनके सम्बन्ध में बाहरी रूप को जानने की अभिलाषा रखती थी, परन्तु उसको उनके एक भी शब्द अथवा हाव-भाव से कुछ भी संदेहजनक अथवा अवांछनीय बात प्रतीत नहीं हुई थी।

समय व्यतीत होता गया और मास्टर जगतराम और महिन्दर कौर का परस्पर मेलजोल अति समीप का होते हुए भी आपत्तिजनक प्रतीत नहीं हुआ।

सरवन कौर को चौधरी के घर में रहने का एक लाभ भी हुआ। स्त्रियां एक क्षण भी खाली नहीं बैठती थीं। वे कुछ-न-कुछ करती रहती थीं। इस कारण इस घर के प्राणी बाल, युवा, वृद्ध साफ-सुथरे और सुघड़ बने हुए थे। पूर्ण गांव में ये लोग न केवल सबसे अधिक धनधान्य से युक्त थे, प्रत्युत् सभ्य और सुशील भी थे।

मास्टर का चौधरी के घर में स्थान, उनके चौधरी के घर में चार-पांच मास तक रह चुकने पर भी विस्मय का कारण बना रहा। हरपाल तो दिनभर अपने खेतों में काम करता था परन्तु सरवन दिनभर घर में ही रहती थी। वह घर के काम में भी हाथ बटाने लगी थी। इस पर भी वह इस रहस्य को नहीं जान सकी थी।

आखिर एक दिन तो बात स्पष्ट हो ही गई। महिन्दर कौर के विषय में सरवन कौर के मन की भावना, मन में छुपी नहीं रह सकी।

केवली के सिर दर्द हो रहा था। वह स्कूल नहीं गई थी। महिन्दर और मास्टर इकट्ठे गए थे और इकट्ठे ही लौटे थे। वे बिना किसी बात पर हंसते हुए आते दिखाई दे रहे थे। सरवन कौर मकान के बाहर खड़ी उनको देख रही थी। केवली घर से निकली तो सरवन कौर को मास्टर और महिन्दर की ओर देखते हुए खड़े देख, वह भी देखने लगी। सरवन कौर के मुख से निकल गया, "बहुत सुन्दर जोड़ी दिखाई देती है।"

"हां, परन्तु सरवन! बिना भाग्य के कुछ नहीं मिलता। मनुष्य तो इस संसार सागर पर एक तिनके के समान निस्सहाय डोलता रहता है। भाग्य-रूपी समीर ही इसको किनारे पर लगाने में सफल होती है।"

"भाग्य को किसने देखा है!" सरवन कौर ने लम्बा सांस खींचकर कहा। "हां, अपना प्रयत्न और उसका फल तो दिखाई देता है। यदि महिन्दर इस प्रकार मास्टर के साथ घूमने के स्थान उससे विवाह कर ले, तो अपनी लड़की के लिए एक बुरा उदाहरण तो न बने।"

केवली समझ गई कि सरवन कौर ने क्या समझा है। एक साधारण व्यक्ति मास्टर और महिन्दर को परस्पर विनोद करते और हंसते देख यही तो समझ सकता था। इस कारण केवली को क्रोध नहीं आया। प्रत्युत् सरवन कौर की अनभिज्ञता पर हंसने लगी। केवली को हंसते देख सरवन कौर ने उसकी ओर आश्चर्य में देख कहा, "भाभी! इसमें हंसने की क्या बात है?"

"हंसने की बात है मनुष्य के कम ज्ञान पर कल्पना के घोड़े दौड़ाना।"

"इसमें कल्पना क्या है?"

"तुमने कहा है न कि महिन्दर यदि विवाह न कर ले तो वर्तमान अवस्था से ठीक रहे। इस वर्तमान अवस्था को खराब समझना ही तो अज्ञानता की बात है। सरवन बहिन! तुमने महिन्दर में क्या खराबी देखी है?"

"इस प्रकार दोनों को खुले मैदान में हंसते हुए परस्पर बातें करते दिखाई देना तो हमारे रीति-रिवाज के अनुकूल नहीं है।"

"क्यों अनुकूल नहीं है? हंसना बुरा है क्या?"

"हंसना तो बुरा नहीं; परन्तु हंसने में कारण तो बुरा हो सकता है।"

"पर तुमने तो केवल हंसना ही देखा है न?"

इस समय मास्टर और महिन्दर वहां आ पहुंचे। केवली ने कहा, "मास्टर जी! सरवन बहिन कह रही है कि खुले स्थान पर इस प्रकार हंसना, जैसे आप हंसते आ रहे थे, भला प्रतीत नहीं होता।"

"तो क्या छिपकर हंसना ठीक है?" मास्टर ने मुस्कराते हुए पूछा।

: ७ :

सरवन इस प्रकार बात स्पष्ट होते देख संकोच अनुभव करने लगी। इस पर भी बात का प्रवाह रोका नहीं जा सका। मास्टर ने कहा, "देखो सरवन बहिन! हम इस बात पर हंसे थे। मास्टर संतासिंह की पत्नी, उसका दोपहर का भोजन लाकर आलमारी में रख गई थी। सन्तासिंह ने भोजन कर लिया प्रतीत होता है। इस पर भी स्कूल बन्द होने के समय वह अपना डिब्बा जब लेने आया तो उसको भारी देख विस्मय करने लगा। उसमें रोटी, साग, गुड़ भरा देख वह कभी अपने पेट को और कभी रोटी के डिब्बे को देख विस्मय में खड़ा रहा। महिन्दर अपनी श्रेणी से निकली तो उसको परेशान देख पूछने लगी "भापा! क्या देख रहे हो?"

वह कहने लगा, "मैंने दोपहर को भोजन किया था, परन्तु मेरे डिब्बे में तो भोजन वैसे ही रखा है। इस कारण मुझको अपने भरे पेट पर संदेह होने लगा है। मैं पेट को टटोलकर देख रहा हूं कि मैंने भोजन किया भी है अथवा नहीं।"

"तो डिब्बे में भोजन रखा है?"

"हां।"

"और आपने खाया भी है?"

"स्मरण तो आ रहा है कि खाया है और फिर पेट भी भरा हुआ है।"

"तो किसी और का भोजन कर लिया होगा?"

"यहां अलमारी में मेरा डिब्बा रखा था। मैंने आधी छुट्टी के समय उसको खोला, भोजन किया और खाली डिब्बा बन्द कर रख दिया था।"

"अच्छा भाभी से पूछना कि कहीं उसने डबल खाना तो नहीं भेजा था।"

"पर महिन्दर बहिन! इस डिब्बे में तो और गुंजायिश ही नहीं। इसमें भोजन जितना आ सकता था, उतना तो धरा हुआ है।"

"तो यह कोई भूत-प्रेत का काम प्रतीत होता है?"

"तो भूत का खाना मैंने खा लिया है अथवा वह अभी इसमें ही धरा है?"

"यह तो भाभी से जाकर पूछना कि उसने जो खाना भेजा था, वह यही है कि नहीं; यदि उसका भेजा यही है तो इसका मतलब यह हुआ कि भूत का खाना आपने खाया है।"

"कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। मेरे पेट में घुमर घूं घुमर घूं मचने लगी है।"

इस पर मैंने सन्तासिह को कह दिया, "भाई! तो तुम शीघ्र हकीम साहब के पास जाकर जुलाब की गोली ले लो, जिससे तुम्हारे पेट में से भूत शीघ्रातिशीघ्र बाहर निकाल जाए।

"जल्दी करो सन्तासिह! देरी करने से अनर्थ हो जाएगा।"

"यह सुन सन्तासिह एक हाथ पेट पर रखे हुए और दूसरे हाथ में रोटी का डिब्बा लिए, लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ गांव को चला गया। हम दोनों अभी इस बात पर विचार ही कर रहे थे कि मास्टर चुन्नीलाल आया और पूछने लगा, "महिन्दर बहिन! सन्तासिह किधर गया है?"

"क्यों? महिन्दर ने पूछा।"

"मेरी रोटी का डिब्बा उठाकर चल दिया है।"

"तो उसका डिव्वा कहां गया ?"

"उसने आज पीपल के नीचे रोटी खाई थी औरडिव्वा वहां हीछोड़ आया लगता है। वह देखो रखा है।"

"मेरा भाई रोटी देर से लाया था और मैं लड़कों को लेकर खेतों में गया हुआ था,। वह डिव्वा अल्मारी में रखा गया था। खेत से लौटकर मैंने डिव्वा वहां पड़ा देखा था। मेरा विचार था कि स्कूल के पश्चात् खा लूंगा। जब हाथ धोकर वहां डिव्वा लेने गया, तो वह वहांनहीं था। बाहर आ पीपल के नीचे सन्तासिंह का डिव्वा पड़ा देख समझ गया हूं।',

"इस पर हम खिलखिलाकर हंस पड़े। महिन्दर ने कहा, "संभव है कि वह अब तक हकीम साहब से जुलाब की गोली ले चुका हो।"

"मैंने चुन्नीलाल से कहा, "तुम उसका डिव्वा ले जाओ और हकीम साहब के यहां पहुंच जाओ।"

"पर मास्टर जी ! मुझको भूख लगी है।"

"वहां ही बैठकर खा लेना।"

"चुन्नीलाल हंसा तोहम भी हंसते हुए घर की ओर लौट आएहैं।"

इस पर सरवन ने कहा, "कुछ भी हो। इस प्रकार युवा स्त्री-पुरुष का सबके सामने हंसते हुए आना ठीक प्रतीत नहीं होता।"

"तो क्या बूढ़ों और बच्चों को इस प्रकार हंसना चाहिए ?"

मास्टर घर के बाहर रखे हुए तख्तपोश पर बैठते हुए कहने लगा, "देखो सरवन बहिन ! इधर आओ। मैं तुम्हारे मन के संशय का निवारण करता हूं।"

महिन्दर भीतर चली गई थी और सरवन कौर, केवली मास्टर के सामने जा खड़ी हुई।

मास्टर जगतराम ने कहा, "तुम यह समझती हो कि इस प्रकार हंसने और प्रसन्न होने का अधिकार केवल पति-पत्नी को ही है और वह भी चोरी चोरी। ठीक है न ?"

सरवन कौर बात को इस ओर चलते देख चकित रह गई। वहअभी भी चुपचाप खड़ी मास्टर के मुख से इस बात की विवेचना सुनने की इच्छा कर रही थी। केवली को चिन्ता लग रही थी कि कहीं मास्टर अपना रहस्य न खोल दे।

मास्टर ने दोनों को गम्भीर और विस्मय में अपनी ओर देखते पा, मुस्कराकर कहना आरम्भ किया, "मैं कितने ही दिनों से यह देख रहा हूं कि तुम हम दोनों पर देख-रेख कर रही हो। मैं इसमें तुम्हारा आशय समझ रहा हूं। तुम कोई बुरी बात भी नहीं कर रहीं। तुम्हारा व्यवहार

सर्वथा मनुष्य प्रकृति के अनुसार है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अज्ञात बातों को जानने का यत्न करता रहता है। यह कोई खराब बात नहीं। खराबी तो वहां आती है, जहां न छुपाने वाली बात को छिपाकर व्यर्थ में दूसरों के मन में जानने की उत्सुकता उत्पन्न की जाती है।

"मेरा महिन्दर से सदा सामिप्य दूसरों के मन में इसके रहस्य को जानने की अभिलाषा उत्पन्न करता रहा है। पहिले तो मैं समझता था कि तुम और तुम्हारे जैसे लोग अनाधिकार चेष्टा करते हैं, परन्तु यह समझ कि तुम्हारे जसों का यह व्यवहार मनुष्य स्वभाव के सर्वथा अनुकूल है, मैंने यह निश्चय किया है कि इसको अब रहस्य न रहने दूं।

"देखो, महिन्दर की मेरे साथ सगाई हो चुकी है, परन्तु विवाह नहीं हो सका। हम परस्पर ऐसे ही विचारते हैं, जैसे सखा-सखि और इस प्रतीक्षा में हैं कि परिस्थिति अनुकूल हो तो हम पति-पत्नी के रूप में रह सकें।"

"तो परिस्थिति अनुकूल नहीं है?" सरवन कौर ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"नहीं।"

"आप दोनों इतने समीप रहते हुए भी कोई बाधा अनुभव करते हो?"

"हां। वह बाधा है चौधरी के मान-प्रतिष्ठा की। वह बाधा है समाज में प्रचलित मर्यादा की, वह बाधा है महिन्दर की वैधव्यावस्था की, बाधा है मेरे निर्धन होने की और मुझको अपने जीवन-कार्य से अवकाश न मिल सकने की।

"सरवन! यह है परिस्थिति। पर कदाचित् तुम समझ नहीं सकोगी। इस पर भी यह है और हम प्रतीक्षा कर रहे हैं इसके अनुकूल होने की। कदाचित् यह प्रतीक्षा अगले जन्म तक चले।"

इतना कह मास्टर चुप कर गया। सरवन और केवली आश्चर्य में मास्टर का मुख देख रही थीं। मास्टर का मुख परिस्थिति स्पष्ट करने के पश्चात् संतुष्ट और शान्त था। उसको कुछ ऐसा हो रहा था कि वह खिल उठा है और उसकी आंखों से ज्योति निकल रही है।

मास्टर जगतराम जब अपने मन की बात कह चुका तो कुछ काल तक अदृश्य की ओर देख मन में मनन करता रहा। पश्चात् एकाएक उठा और अपने कमरे में चला गया।

केवली को यह समझ आया कि मास्टर ने यह रहस्य खोलकर ठीक नहीं किया, परन्तु सरवन कौर तो कुछ भी समझ नहीं सकी थी। मास्टर

के चले जाने के पश्चात् केवली उसी तख्तपोश पर बैठ गई और सरवन कौर अपने मन में उठ रहे अनेकानेक भावों को दबाने केलिए अपने कमरे में चली गई।

रात को हरपाल आया तो सरवन ने मास्टर को सारी बात सुना दी। हरपाल एक मोटी बुद्धि का आदमी था। वह इस प्रकार के बारीक मनोभावों को समझ नहीं सका। उसने तुरन्त कह दिया, "यह मास्टर अति धूर्त प्रतीत होता है। वह चौधरी और उसके घर वालों को धोखा दे रहा है। मैं समझता हूं कि चौधरी के हमारे ऊपर ऐहसानों का प्रतिकार यही है कि हम उसको समझा दें कि मास्टर एक महान धोखा दे रहा है और किसी भी समय महिन्दर के गर्भ ठहर जाएगा। उस समय भारी गड़बड़ और बदनामी होगी।"

केवली ने भी पूर्ण वार्तालाप परमेश्वरी को सुना दी। वह सरवन जैसी औरत के सामने ऐसी बात कहनी उचित नहीं समझती थी। परमेश्वरी ने बात सोहनलाल से की और सोहनलाल ने अपने पिता को बता दिया। वह इस परिवर्तित परिस्थिति में अपना कर्तव्य निश्चित करना चाहता था। उसने कहा, "चाचा! मास्टर जैसे इस प्रकार के गैर आदमी को सब कुछ बताना नहीं चाहिए।"

सुन्दरसिंह कुछ देर तक इस विषय पर विचार करता रहा। पश्चात् उसने कह दिया, "मैं समझता हूं कि किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। होगा यह कि सरवन यह बात अपने पति से कह देगी और वह जने-जने को बताता फिरेगा। यदि उसने उतनी ही बात कही, जितनी मास्टर ने बताई है, तो कुछ काल में गांव के लोग महिन्दर और मास्टर के विवाह की प्रतीक्षा करने लगेंगे। ऐसी अवस्था में हमारे लिए यह विवाह करना सुगम हो जाएगा।

"हां, यदि हरपाल ने अपने मन से कुछ जोड़-जाड़ कर बताना आरंभ किया तो हमारा कुछ काल के लिए अपमान हो सकता है। इस अवस्था में हमें कुछ कठिनाई उत्पन्न होगी। इस पर भी, जो स्थिति इस समय है, उससे बिगड़ेगी नहीं।"

महिन्दर ने भी उस रात मास्टर से इस विषय में कहा, "तो आपने मेरे सम्बन्ध की बात सरवन से कह दी है?"

"हां, यह तो स्पष्ट ही है कि वह हमारे व्यवहार में झांकने का यत्न कर रहीथी। हम छिपाने का यत्न करते, तो न जाने वह मन में क्या-क्या कल्पना करने लगती। इस कारण हमको अपने सम्बन्ध की पिटारी को सर्वथा खोलकर रख देना ठीक ही हुआ है।"

"ठीक है। देखें, इसकी क्या-क्या प्रतिक्रिया होती है! यह बात अब हमारे घर की चारदीवारी में बन्द नहीं रहेगी। मुझको तो किसी प्रकार की चिन्ता नहीं। विचार है तो चाचा और भापा का। वे गांव में होने वाली चर्चा का क्या अर्थ लगाएंगे।"

अगले दिन मध्याह्न के समय हरपाल ने चौधरी को अपने मन की बात कह दी। उसने कहा, "चाचा! यह मास्टर को घर में रखकर तुमने ठीक नहीं किया।"

"क्यों? क्या हानि हो रही है?"

"वह कहता है कि उसकी महिन्दर से सगाई हो चुकी है।"

"तो फिर क्या हुआ? वह बाल-विधवा है। यदि उसकी इच्छा विवाह करने की होगी तो हो जाएगा। अब तो विधवा-विवाह हिन्दुओं में मना नहीं।"

पर चाचा! सगाई हो जाने के पश्चात् तो औरत और मर्द में एक विशेष प्रकार की भावना उत्पन्न हो जाती है, जिसके अधीन किसी समय तो सीमोल्लंघन हो सकता है। क्या जाने वह हो भी चुका हो!"

"देखो हरपाल! दोनों में प्रेम की भावना तो आज सात वर्ष से उपस्थित है। इसका मुझे ज्ञान हुए भी काफी समय हो गया है। इस पर भी अभी तक सीमोल्लंघन नहीं हुआ। न ही इसके कोई लक्षण दिखाई दिए हैं। तुमको कोई बात पता हो तो बताओ। इस प्रकार की संभावना तो तब हो, जब मैं उनके विवाह को पसन्द न करूं। मैंने उनको कह रखा है कि जब भी वे चाहें, विवाह के लिए अपनी रुचि बताएं, मैं प्रबन्ध कर दूंगा। जब यह बात है तो चोरी-चोरी सीमोल्लंघन करने की आवश्यकता ही नहीं।"

"बहुत ही विचित्र बात है। वे विवाह कर क्यों नहीं लेते? क्या कारण है इसमें?"

"अकारण तो कोई भी बात होती नहीं। जब मास्टर ने तुम्हारी पत्नी को अपने और महिन्दर के विषय में बताया था तो उसने विवाह में ढील का कारण क्यों नहीं पूछ लिया?"

"मास्टर ने कुछ कारण बताए थे, जिनका कोई अस्तित्व नहीं।"

"तुम्हारे विचार में न? मास्टर के विचार में वे कारण बहुत भारी होंगे। तभी तो वह उसके लिए नहीं कहता।"

"आश्चर्य तो इस बात का है कि वे एक दूसरे के इतने समीप रहते हुए भी और एक दूसरे में पति-पत्नी भाव रखते हुए भी अपने को बचा-कर रखे हुए हैं। मुझको तो विश्वास नहीं होता।"

"हरपाल ! सालिगराम ने और फिर तुमने भी उन पर आरोप लगाया था और तब से मैं सतर्क हूं। इस पर भी दोनों सर्वथा स्पष्ट और सरल व्यवहार रखते हैं। तब तो ध्यान रखो, और यदि कोई अनियमित बात देखो तो बताना।"

"चौधरी ! बहुत बातें हैं जो देखी नहीं जातीं। हां, उनका अनुमान लगाया जाता है। जैसे संसार में पहिले होता रहा है, उसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों पति-पत्नी बने हुए हैं।"

"इस प्रकार के व्यवहार को चोरी रखने की आवश्यकता न होने से अनुमान माननीय नहीं हो सकता।"

: ८ :

जनसाधारण को इस प्रकार युक्ति नहीं कर सकता, जैसे सुन्दरसिंह तथा उसके परिवार के लोग कर सकते थे। अतएव जो बात हरपाल सुन्दरसिंह को समझा नहीं सका, वह गांव के लोगों को समझानी और मनानी अधिक कठिन नहीं थी। इस घटना के कुछ ही दिन पीछे मास्टर तथा महिन्दर दोनों, पूर्ण गांव में वार्तालाप का विषय बन गए।

पहिले तो जब दो व्यक्ति बातें करते और उस ओर से कोई चौधरी का आदमी आ निकलता तो वे दोनों चुप कर जाते और उसका मुख देखने लगते। परन्तु धीरे-धीरे वे मुख पर भी यह बात करने लगे। एक दिन स्कूल के लड़के, जो पढ़ाई के पश्चात् काम सीखने आते थे, मास्टर को घेरकर खड़े हो गए। एक ने पूछ लिया, "मास्टर जी ! आपका विवाह कब होगा ?"

जगतराम जानता था कि जो बात उसने चलाई है, वह चक्कर काटकर रबड़ के गेंद के समान, उसके पास वापस आ जाएगी। इससे वह ऐसी बातों की आशका कर ही रहा था। उसने लुकाव-छुपाव कभी पसंद नहीं किया था। इस कारण उसने कह दिया, "सगाई तो हो गई है, परंतु विवाह की तिथि निश्चित नहीं हुई।"

"कब तक होगी ?"

"जब भगवान को स्वीकार होगा, विवाह हो जाएगा।"

लड़के बात आगे नहीं चला सके, परन्तु यह उत्तर रबड़ के गेंद के समान पुनः गांव में भ्रमण करने लगा। गांव वालों के मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि यदि चौधरी इसको पसन्द नहीं करता तो मास्टर को घर में क्यों रखे हुए है ? इस पर भी सब अपने-अपने विचारानुसार युक्ति

करते थे। प्रायः लोग कहते थे कि महिन्दर का मास्टर से इतना प्रेम है कि वह उसको जाने नहीं देती।

इस प्रकार की अनेकानेक बातें गांव वालों के मन में उठती रहती थीं और अपनी बुद्धि अनुसार कोई समाधान न पा वे भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएं करते रहते थे।

कुछ काल के पश्चात् गांव की स्त्रियां केवली से और परमेश्वरी से भी चर्चा करने लगीं। सबसे निकट समस्या तो उस समय उपस्थित हुई, जब मीरा अपनी सहेलियों से सुन अपनी मां से पूछने आई।

महिन्दर और मीरा एक ही कमरे में सोती थीं। महिन्दर सोने से पूर्व मास्टर जी के कमरे में जाकर उनके बिस्तर आदि का प्रबन्ध देख आया करती थी और यह कार्यक्रम वर्षों से चल रहा था। मीरा अपनी मां के साथ सवेरे ही उठ पड़ती थी और वह देखती थी कि जब मास्टर नदी तट पर पूजा इत्यादि के लिए गया होता है तो, उसकी मां मास्टर का कमरा साफ करने लग जाती है। इसके अतिरिक्त वह यह भी जानती थी कि उसकी मां मास्टर जी से उसकी मामियों से अधिक मेलजोल रखती है। यह सब वह वर्षों से देखती आ रही थी और इसमें उसको कुछ भी विचित्रता प्रतीत नहीं होती थी। जब उसकी सहेलियों ने उसको बताया कि उसकी मां मास्टर जी से विवाह करने वाली है, तो वह उक्त परिस्थितियों पर विचार करने लगी।

इस समय वह चौदह वर्ष की हो चुकी थी और विवाह के साधारण अर्थ समझने लगी थी। इस कारण वह मां से आकर पूछने लगी, "अम्मा तुम विवाह करोगी?"

महिन्दर गम्भीर होकर कहने लगी, "किसने कहा है तुमसे?"

"मेरी सहेली 'विचित्तर' ने मुझको बताया है। वह कहती थी कि मेरी मां एक और पिता लाएगी।" इतना कहते-कहते मीरा का मुख लज्जा से लाल हो गया।

महिन्दर के लिए मीरा को समझाना कठिन था। इस पर भी उसने बाहर की लड़कियों से अंट-संट सुनने के स्थान, उसके लिए यही उचित समझा कि वह स्वयं ही उसको सारी बात अपने ढंग से बता दे। उसने कहा, "तुमने अपने पिता को देखा नहीं। तुम्हारा जन्म तुम्हारे पिता के देहान्त के पश्चात् हुआ था। इसको चौदह वर्ष हो गए हैं। इस पर भी तुम्हारे पिता तो वे ही हैं, जो थे। भला वे बदल सकते हैं क्या?"

"हां, मैं विवाह करना चाहती हूं, मास्टर जी से। यह मेरा दूसरा विवाह होगा। पर तुम मेरी बेटी ही रहोगी।"

"मां ! क्यों करोगी विवाह ?"

"भगवान ने कुछ ऐसा ही विधान किया प्रतीत होता है। विवाह विना परमात्मा की इच्छा से नहीं होता। इस कारण यदि वह चाहेगा तो होगा ही।"

"कैसे पता चले कि भगवान का विधान है ?"

"इस प्रकार कि जव यह वात मेरे मन में उत्पन्न हुई, तब वही वात मास्टर जी के मन में उत्पन्न हुई। साथ ही जव मैंने कहा कि चाचा से पूछ लें तो उन्होंने मना नहीं किया। चाचा को भी यह वात बुरी नहीं लगी। जव सबकी मति इस विषय में एक है, तो इसको भगवान का आदेश ही कहा जा सकता है।"

"तो फिर मेरी सहेलियां क्यों मेरी हँसी उड़ाती हैं ?"

"इसलिए कि वे मूर्ख हैं। वे इतनीपढ़ी-लिखी नहीं, जितना मास्टर जी, मैं, तुम हैं। भगवान मूर्खों के मन में अपनी वात नहीं कहता।"

"पर मां ! वे कहती थीं कि गांव में तुम्हारी और चाचा की निन्दा हो रही है।"

"अच्छा, यह वताओ। गांव में तुम्हारे मास्टर जी के बरावर कोई भी पढ़ा-लिखा आदमी है ?"

मीरा ने विचारकर कहा, "नहीं। होता तो वह भी स्कूल खोल देता।"

"देखो, मैं और भाभी केवली स्कूल में पढ़ाने जाती हैं। क्या गांव का कोई और औरत पढ़ा सकती है ?"

"दिखाई तो नहीं देती।"

"और देखो, मास्टर जी ने गांव में सड़कें वनवाई हैं, नालियां बनवाई हैं, वाग लगवाया है, पुस्तकालय खोला है, साथ ही वच्चों को दस्तकारी सिखाने का प्रवन्ध किया है। ऐसा कोई और कर सकता है ?"

मीरा विस्मय में मां का मुख देखती रह गई। उसे चुप देख महिन्दर ने आगे कहा, "तो इसका अर्थ यह हुआ कि ये गांव वाले इतनी वुद्धि नहीं रखते, जितनी मास्टर जी रखते हैं। इनको जव कोई मूर्खता की बात कही जाती है, वही मान लेते हैं और अच्छी वात की भी निन्दा करने लगते हैं।"

"तो तुम विवाह करोगी ?"

"हां।"

"कब ?"

"जब चाचा कहेंगे।"

"चाचा नहीं कहेंगे तो ?"

"तो नहीं करूँगी।"

"चाचा से पूछा है तुमने ?"

"इतना तो पता चला है कि वे मेरे विवाह के विरुद्ध नहीं हैं, परन्तु मैंने उनसे पूछा नहीं कि कब विवाह करूँ।"

"मैं पूछूँ ?"

"क्या पूछोगी ?"

"पूछूँगी कि तुम्हारा विवाह कब होगा ?"

महिन्दर हँस पड़ी। फिर कुछ विचार कर कहने लगी, "अच्छा पूछना।"

अगले दिन मीरा अपने नाना के घुटनों के पास बैठ पूछने लगी, "चाचा !"

"हां बेटी !"

"मेरी सहेली विचित्तर कहती है कि मां का विवाह होगा।"

चौधरी खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँसकर उसने कहा, "तो तुम क्या कहती हो ?"

"मैं ? मैं कुछ नहीं कहती। मैंने मां से पूछा था तो वे कहने लगीं कि भगवान की इच्छा है कि उसका मास्टर जी से विवाह होगा। पर चाचा ! तुम उसको इजाज़त नहीं देते ?"

"कौन कहता है ?"

"मैंने मां से पूछा था कि वह कब विवाह करेगी तो उसने कहा कि जब चाचा कहेंगे। चाचा कह दो न।"

"देखो मीरा ! पहिले तुम्हारा विवाह होगा पश्चात् तुम्हारी मां का होगा।"

"क्यों ? मैं तो मां से छोटी हूँ। पहिले उनका होना चाहिए।"

"ठीक है। पर मेरी यह इच्छा है। यदितुम्हारा विवाह पहिले नहीं करूँगा तो गांव वाले निन्दा करेंगे।"

"वे तो अब भी करते हैं। उन मूर्खों के कहने से क्या होता है ?"

"वे मूर्ख हैं ? कैसे कहती हो तुम ?"

"चाचा ! सालिगराम की सब गांव वाले जयजयकार करते थे और वह हत्यारा सिद्ध हो गया। एक हत्यारे की जय तो मूर्ख ही कर सकते हैं।"

चाचा मीरा की बात सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। उसको यह समझ आया कि वह यह कह रही है कि उसका नाना इन मूर्खों की

बात से डरकर महिन्दर का विवाह नहीं कर रहा। इससे वह लज्जा अनुभव करने लगा। उसने कह दिया, "देखो मीरा! मैं नित्य भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझको वुद्धि दे और साहस दे कि मैं ठीक-ठीक बात कर सकूं।"

"तो ठीक बात करने से कौन मना करता है, चाचा?"

"मेरी आत्मा दुर्बल है। वह डरती है और मैं भगवान से साहस मांगता हूँ।"

"तो वह साहस कब देगा?"

"यह तो वही जाने। जब वह मेरी भक्ति से प्रसन्न होगा, वह मेरी आत्मा में साहस भर देगा और मैं ठीक व्यवहार अपना लूंगा।"

मीरा इस बात को भलीभांति समझ नहीं सकी। वह मां का बात तो समझ गई थी परन्तु चाचा की बात की परमात्मा उसको साहस देगा, नहीं समझ सकी थी।

एक बात उसने करनी आरम्भ कर दी। वह प्रातः उठ जब उसकी मां मास्टर के कमरे में सफाई करने जाती थी, भगवान से प्रार्थना करने लगी था कि वह चाचा के मन में साहस दे कि वह ठीक बात करें।

अब वह अपने मन में बात को स्पष्ट रूप में समझने लगी थी। वह जान गई थी कि उसकी मां का विवाह मास्टर जी से होगा। इस कारण जब कोई उसकी सहेली इस विषय में उससे कुछ कहती तो वह आत्म-विश्वास में भरी हुई कह देती, "तुम सब मूर्ख हो।"

: ९ :

हरपाल का मकान बन गया और वह उसमें चला गया। चौधरी ने दो हज़ार रुपए अपने पास से खर्च कर उसका मकान बनवाया था। अपने मकान में जाने से पूर्व हरपाल ने चौधरी से हिसाब किया तो चौधरी ने सारा हिसाब बता दिया। हिसाब सुन हरपाल ने कहा, "चौधरी! तुमने मेरे हिसाब में दो हज़ार और दस रुपए खर्च किए हैं।"

"हां।"

"और मैंने नौ महीने तुम्हारे घर से रोटी खाई है। उसका क्या देना है?"

"हरपाल!" चौधरी ने कहा, "तुमने मेरा घर ढाबा समझ रखा है क्या? यहां रोटी बिकती नहीं।"

"पर चाचा, एक-दो दिन की बात होती तो कुछ न कहता।"

"एक दिन की हो अथवा सारे जीवन भर की, मैंने रोटी बेचने का धंधा कभी नहीं किया। उसका न मैं कुछ लूंगा और न ही तुमको कहना चाहिए। मेरा अपमान मत करो।"

"अच्छी बात है चाचा! तो इस दो हज़ार दस रुपयों को स्टाम्प पर लिख दूं अथवा प्रोनोट लिखवा लो।"

"क्यों?"

"याददाश्त रहेगी।"

"मुझको तो याद रहेगा। और तुम अभी कहते थे कि मेरी बात जन्म भर स्मरण रखोगे। फिर लिखने की क्या बात है!"

इस प्रकार की बात से हरपाल चकित रह गया। वह अपने घर चला गया। यद्यपि गांव में मास्टर और महिन्दर की चर्चा थी, परन्तु कोई यह नहीं कहता था कि कोई अनुचित बात हो रही है। हरपाल से लोग पूछते थे कि महिन्दर के विषय में वह क्या जानता है। इस पर वह कह दिया करता था कि चौधरी देवता है। जो कुछ वह कर रहा हैं, ठीक ही कर रहा है।

"तो फिर उन दोनों का विवाह क्यों नहीं कर देता?"

"तुमको बहुत जल्दी पड़ी है? तुम्हारे घर से खा रही है उसकी लड़की?"

"पर यह ठीक हो रहा है क्या?"

"इसमें गलत क्या है? महिन्दर विधवा अवश्य है परन्तु विधवा का दूसरा विवाह खराब नहीं।"

इस प्रकार हरपाल की बातों को सुन गाँव वाले व्यर्थ की बातों को भूल रहे थे।

इस समय मोहनसिंह की चिट्ठी आई। इस चिट्ठी को सुन्दरसिंह देख चकित रह गया। एक सफेद तथा बहुत ही बढ़िया लिफाफा था, जिस पर लाख की मुहरें लगी हुई थीं।

डाकिए ने कहा, "चाचा! यह रजिस्ट्री चिट्ठी है। इस पर दस्त-खत कर दो।"

"पर यह मेरी है क्या?"

"हाँ चाचा! तुम्हारा नाम लिखा है और भेजने वाले का नाम है मोहनसिंह।"

"मोहनसिंह? मोहनसिंह? सच कहते हो भाई!" इतना कहते-कहते सुन्दरसिंह तख्तपोश से उठ खड़ा हुआ और लगा सोहनलाल को आवाज़ें देने। सोहनलाल तो घर में था नहीं। इससे परमेश्वरी बाहर आ दर-

वाजे में खड़ी हो कहने लगी, "चाचा ! वे तो अभी खेतों से आए नहीं।"

"ओह भूल गया था बेटा ! मोहन की चिट्ठी आई है।"

इस पर कुछ शान्त हो उसने डाकिए को रसीद दे दी और लिफाफे को खोल डाला। लिफाफे में एक कागज पर गुरुमुखी में लिखा पिता के नाम पत्र था और साथ ही दस हज़ार रुपए का ड्राफ्ट था। इस ड्राफ्ट को देख सुन्दरसिंह गम्भीर हो गया। इस पर भी उसने कुछ नहीं कहा। मीरा को, जो घर से निकल आई थी, चौधरी ने स्कूल भेज केवली को बुला भेजा और स्वयं पत्र पढ़ने लगा। वह अभी पढ़ ही रहा था कि सोहनलाल आ गया। इस पर पिता ने पुत्र को कहा, "देखो सोहन ! मोहन ने यह पत्र लिखा है, ज़रा पढ़ो तो।"

सोहनलाल ने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—

"पूज्य चाचा जी ! मैं इतने काल के पश्चात् पत्र लिख रहा हूं। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। चीनी मिल के चौबीस सौ रुपए बिना पूछे ले गया था, इस कारण लिखने से डरता रहा कि आप मुझको गाली देंगे और डाँट की चिट्ठी लिखेंगे।

"चाचा ! मैंने बहुत भूल की थी। आशा है कि आप क्षमा कर दोगे। मैं जिस प्रयोजन से घर से निकला था, वह गलत सिद्ध हुआ। इस कारण घर से चले आने के लिए और भी लज्जित हूँ।

"नगर में मेरे पाँव नहीं जम सके। यदि ईमानदारी से कुछ कमाया जा सका तो वह एक गाँव में हो ही सका है। यह दस हज़ार रुपए का ड्राफ्ट सेवा में भेज रहा हूँ। यह इसी आय का एक भाग है। मैं शीघ्र ही घर लौट रहा हूँ। शेष आने पर।

"मेरा सोहन भापा और परमेश्वरी भाभी को चरण वन्दना कह देना। महिन्दर को प्यार। केवली और बच्चों से मेरी ओर से क्षमा माँगिएगा। मैंने उनको बहुत दुःख दिया है।"

सोहन ने चिट्ठी पढ़कर पिता की ओर देखा। चौधरी की आँखें आँसुओं से भर गई थीं। सोहनलाल ने बात करने के लिए कहा, "लिखा नहीं कि कब लौट रहा है ?"

"शीघ्र ही लौट रहा है। समाचार तो भेजा है। देखो पत्र कहाँ से आया है ?"

"पत्र पर तो किसी भी नगर का नाम नहीं लिखा।"

"लिफाफे पर मुहर तो होगी।"

"तो फिर मास्टर जी को बुला लो, वह देख देंगे।"

मीरा स्कूल गई और उसने जब बताया कि मोहन मामा की चिट्ठी

ग्राई है तो केवली, महिन्दर ग्रौर मास्टर जी चले ग्राए। मास्टर ने लिफाफे पर मुहर देखकर बताया कि चिट्ठी कोचीन से ग्राई है।

"वह कहाँ है ?"

"दक्षिण भारत में है। यहाँ से दो हज़ार मील दूर है।"

"मास्टर जी ! तनिक यह भी देखना कि क्या है ?"

"यह दस हज़ार रुपए का ड्राफ्ट है। यह ग्राप ग्रपने बैंक में जमा करा सकते हैं।"

"केवली ! यह तुम्हारे लिए है।"

"क्या करूँ इसको ?"

इस पर मास्टर ने कहा, "लेना-देना तो पीछे हो जाएगा। पहिले इसको बैंक में जमा करा देना चाहिए। एक कागज़ का टुकड़ा ही तो है। गल-सड़ भी सकता है।"

सोहनलाल ने फिर ग्रपनी बात बता दी, "कब ग्राएगा, कुछ लिखा नहीं उसने ?"

केवली की ग्राँखें भी ग्राँसुग्रों से भर रही थीं। इस पर भी वह प्रसन्न थी। कुछ देर वहाँ बैठ वह भीतर चली गई। महिन्दर उसके पीछे-पीछे गई तो दोनों गले मिलीं। महिन्दर ने पूछा, "बहुत प्रसन्न हो भाभी ?"

"पगली ! देख नहीं रही हो।" यह कह उसने उसे फिर गले लगा लिया।

पत्र मिलने के पश्चात् कई दिन तक मोहन की प्रतीक्षा होती रही। वह नहीं ग्राया। दिन व्यतीत हुए, महीने निकल गए ग्रौर एक वर्ष होने को ग्राया। एक दिन सुन्दरसिंह मध्याह्न के भोजन के पश्चात् घर से निकल तख्तपोश पर बैठा विश्राम कर रहा था कि इस समय एक लड़की ढिलवां से तांगा किए हुए चौधरी के घर के सामने ग्रा खड़ी हुई। समय के साथ ढिलवाँ में जहां ग्रन्य बातों में उन्नति हो रही थी, वहां सवारी का प्रबन्ध भी ग्रच्छा हो गया था। सुन्दरसिंह एक टांगे को घर के सामने ग्राकर खड़े होते देख उठकर तख्तपोश पर बैठ गया। वह देख रहा था कि उसमें से एक लड़की, जो दक्षिण वेशभूषा में थी, उतरकर एक कपड़ों की गठरी ग्रौर एक छोटा सा सन्दूक उतारकर भूमि पर रख, ग्रपने चारों ग्रोर देख रही थी। पश्चात् एक वृद्ध को तख्तपोश पर बैठे ग्रपनी ग्रोर निहारते देख, उस ग्रोर ग्राकर सामने खड़ी हो गई। उसने ग्रपने बैग में से एक कागज़ का पुर्ज़ा निकाला ग्रौर पूछने लगी, "सरदार सुन्दरसिंह का घर किधर है ?"

"यही है। किसको पूछ रही हो ?"

"बाबू मोहनसिंह घर पर हैं ?"

"तुम कौन हो ?" सुन्दरसिंह ने विस्मय में उसकी ओर देखकर पूछा।

"मेरा उनसे परिचय है और मुझको उनसे ही काम है।"

"कहां से आई हो ?"

"कोचीन से।"

"ओह ! तो मोहनसिंह कहां है ?"

"वहां से यहीं आया था।"

"कब ?"

"दस महीने से ऊपर हो गए हैं।"

सुन्दरसिंह भौचक्का होकर उसका मुख देखता रह गया। यह लड़की दुर्गा थी। वह भी इस वृद्ध के मुख पर परेशानी देख समझ नहीं सकी थी कि क्या बात है। चौधरी ने विचार किया कि कुछ गड़बड़ हो गई है। मोहनसिंह दस महीने पूर्व कोचीन से चला हुआ अभी तक यहां नहीं पहुंचा। इस समय उसको यह सूझा कि इस लड़की से ही उनको मोहनसिंह के विषय में और अधिक परिचय मिल सकता है। इस कारण उसने मास्टर को बुला भेजा और लड़की को कहा, "अब तुम आई हो तो ठहरो।"

चौधरी ने लहनू को आवाज़ देकर बुलाया और उसको कहा, "देखो इस लड़की का सामान उठा लाओ।"

साथ ही उसने मीरा को बुलाकर कहा, "देखो, यह मेहमान आए हैं। इनको मामी के पास ले जाओ और इनके स्नान-ध्यान का प्रबन्ध कर दो।"

दुर्गा ने टाँगे वाले को तीन रुपए किराया दिया और मीरा के साथ भीतर चली गई। मास्टर आया तो मोहनसिंह के विषय में बात होने लगी। केवली और महिन्दर भी स्कूल से आ गई थीं। घर के भीतर बैठ दुर्गा से बातचीत होने लगी। यह बात तो दुर्गा को विदित हो चुकी थी कि मोहनसिंह कोचीन से चला हुआ घर नहीं पहुंचा। इससे वह भी चिन्ता और शोक में डूबी हुई थी। मास्टर उससे प्रश्न पर प्रश्न पूछ रहा था और दुर्गा अपनी बात बता रही थी। उसने बताया, चार वर्ष के लगभग हुए हैं कि रंगा बाबू अपनी मोटर में सवार होकर अपने गांव में आए तो मोहनसिंह उनकी गाड़ी का ड्राईवर था। रंगा बाबू ने अपने खेतों में तम्बाकू की खेती का विचार किया तो मोहनसिंह को उन्होंने अपने खेतों का मैनेजर बना दिया।

'मैं रंगा बाबू के साले के घर नौकरी करती थी। मेरे पिता का

देहान्त हो चुका था। पहिले ही दिन मोहनसिंह को खाना खिलाते समय देखा तो मुझको वह एक भला आदमी प्रतीत हुआ। पश्चात् जब वह खेतों में काम करने आया तो मुझको रंगा बाबू के ससुराल वालों ने उसको रोटी पहुंचाने का काम सौंप दिया। उस गांव में मैं ही एक ऐसी थी जो हिन्दुस्तानी बोल और समझ सकती थी, इस कारण मैं मोहन-सिंह के सम्पर्क में आती रही।

"तम्बाकू की फसल बहुत अच्छी हुई तो मोहनसिंह को अपना काम अधिक सुचारु रूप में चलाने के लिए एक नौकर की, रोटी आदि बनाने के लिए आवश्यकता पड़ी। मैंने उसकी नौकरी कर ली। इस पर लोग मेरी निन्दा करने लगे। वैसे हमारा परस्पर सिवाए मालिक नौकर के और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था। इससे मोहनसिंह और मैं गांव वालों की निन्दा की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। यह निन्दा रंगा बाबू के कानों में पहुंची तो उन्होंने मोहनसिंह की बातों पर विश्वास न कर मुझको उसकी नौकरी से पृथक् कर दिया। वह मुझको अपने साथ कोचीन ले गए। मोहनसिंह को इसमें अपना अपमान नज़र आया। एक बात यह भी थी कि मेरी मां ब्राह्मण थी और कहा जाता है कि मेरा पिता कोई अब्राह्मण था। अर्थात् मेरी मां का सम्बन्ध किसी गैर से हो गया कहा जाता है। इस कारण अपने देश में मुझसे कोई भी ब्राह्मण विवाह करने को तैयार नहीं होता था। मेरा विवाह किसी अब्राह्मण से भी हो नहीं सका। किसी में इतना साहस दिखाई नहीं दिया कि मेरे जैसी लड़की से विवाह कर सके। परिणाम यह दिखाई देने लगा था कि या तो मैं मुसलमान हो जाती अथवा मैं वेश्या का काम करने लगती। मुझको कुछ भी पसन्द नहीं था। इस समय मोहनसिंह ने कहा कि उनके देश में इस बात की कोई परवाह नहीं करेगा और मेरा विवाह किसी अच्छे घर में हो जाएगा।

"मोहनसिंह ने रंगा बाबू के खेतों में काम छोड़ दिया और घर को चल दिया। रंगा बाबू ने मेरा विवाह किसी अब्राह्मण के घर करने का यत्न किया, परन्तु वे सफल नहीं हुए। वे भी अब विचार कर रहे थे कि मेरा विवाह अब किसी उत्तर भारत के आदमी से कर दें। जब यह बात मुझको पता चली तो मैंने विचार किया कि यदि अपने देश और जाति के बाहर ही विवाह करना है तो रंगा बाबू से अच्छा तो मोहनसिंह की राय से करूँ। इस कारण मैं यहां चली आई हूं। परन्तु वह यहां तो आया नहीं और मैं नहीं जानती कि क्या करूं। अब मैं लौटकर रंगा बाबू के घर जाना नहीं चाहती।"

मास्टर इस वृत्तान्त को सुन आश्चर्य में डूबा रह गया। सबसे विकट

समस्या थी मोहनसिंह की। उसकी कोचीन से चिट्ठी आने के पश्चात् उसका कोई समाचार नहीं मिला था। साथ ही अब दुर्गा का प्रश्न था। मास्टर बहुत काल तक इन समस्याओं पर विचार करता रहा। पश्चात् उसने कुछ विचारकर पूछा, "दुर्गा ! रंगा बाबू को हम तुम्हारे विषय में और मोहनसिंह के विषय में लिखेंगे। तुमको और हमको क्या करना चाहिए, उनका उत्तर आने पर ही विचार किया जा सकता है।"

दुर्गा को समझ आया कि कदाचित् ये लोग उसकी कथा पर विश्वास नहीं कर रहे। इस कारण उसने कहा, "यह उचित ही है। केवल एक बात मैं आपको कह देना चाहती हूं कि मैं वहां के किसी भी आदमी से विवाह नहीं करूंगी। वहां विवाह करने से तो मैं जन्म भर कुंवारी रहना पसन्द करूंगी। मैं बालिग हूं, इस समय मेरी आयु पच्चीस वर्ष के लगभग है। मैं किसी के अधीन नहीं हूं। इस कारण आप रंगा बाबू को लिख दें कि मैं वापिस वहां नहीं जाऊँगी।"

मास्टर ने दुर्गा के आने और उसकी बताई कथा के विषय में सविस्तार लिख दिया। साथ ही मोहनसिंह के अभी तक घर न पहुंचने की बात भी लिख दी। मोहनसिंह को कहां और किस प्रकार ढूंढा जाए, इस विषय में भी रंगा बाबू की सम्मति मांगी। पत्र अंग्रेज़ी में लिखा था और उसका उत्तर वापसी डाक से आया। उत्तर से पता चला कि दुर्गा का कथन सत्य ही है। रंगा बाबू उसके लौट आने के लिए किंचित् मात्र भी चिन्तित प्रतीत नहीं थे। मोहनसिंह के विषय में रंगा बाबू को बहुत चिन्ता थी। वह उसको वापिस वहां खेतों में काम करने के लिए बुला रहा था। मोहनसिंह के विषय में उसकी सम्मति बहुत ही अच्छी थी।

दुर्गा ने एक दिन चौधरी से हाथ जोड़ और आंखों में आंसू भरकर कहा, "चाचा !" अब तक वह उसको चाचा कहकर पुकारने लगी थी। मेरी विनती है कि मुझको घर से निकालिएगा नहीं। मैं घर का काम-काज कर दिया करूंगी। घर से बाहर मेरे लिए मानयुक्त जीवन व्यतीत करना अति कठिन है। मेरे लिए वेश्या का जीवन ही केवल मात्र रह जाएगा।"

सुन्दरसिंह को मंगली की कथा स्मरण हो आई। वह इस लड़की के इस प्रकार विनती करने पर कांप उठा। उसने कहा, "देखो दुर्गा ! तुम जब तक नेक औरतों की भांति रहोगी, तुम्हें घर से निकालूंगा नहीं। तुम रहो।"

पंचम परिच्छेद

: १ :

रामसिंह रफीक के मुकदमे में सफल हुआ। रफीक को रामसिंह से सुलह करनी पड़ी, परन्तु जूआखाना बन्द करना पड़ा। इस पर भी इस थोड़े से काल में रामसिंह के पास चालीस हज़ार के लगभग रुपया एकत्रित हो गया था। जब रफीक के साथ सुलह हुई तो फिर कोई काम करने का विचार पैदा हुआ। इसमें पुन: फकीरचन्द सहायक हो गया। उसने यह प्रस्ताव कर दिया कि अच्छा होटल खोल दिया जाए। रामसिंह मान गया। इस काम में भी सुशील और रामसिंह पत्तीदार हो गए। रामसिंह मैनेजर था और सुशील उसी होटल में वेश्यागार खोल बैठी। इस व्यवस्था में भी रुपया धड़ाधड़ बरसने लगा। इस होटल का काम भी पुलिस की कृपा से ही चलता था। लगभग एक वर्ष लग गया होटल को विख्यात करने में। जब यह अपने स्वादिष्ट पकवानों के लिए विख्यात होने लगा तो इसके साथ शराब का लायसेंस भी मिल गया। वेश्यागार तो आरम्भ से ही चल रहा था।

अब रामसिंह ने गुणवन्ती की कोठी में रहना छोड़ दिया। वह अब चौबीसों घंटे होटल में ही रहता था। होटल को खोले एक वर्ष से कुछ ही ऊपर हुआ था कि एक दुर्घटना घट गई और सब कुछ समाप्त हो गया।

एक सायंकाल रामसिंह होटल का प्रबन्ध देख रहा था कि दो दर्जन पुलिस वालों ने होटल को घेर लिया। रामसिंह ने पुलिस अफसर से पूछा कि क्या बात है।

रामसिंह का विचार था कि वह पुलिस के अफसरों को काफी रुपया देता है। इस कारण वह कुछ दबदबे के साथ पूछने लगा, "खां साहब! बताइए क्या चाहते हैं? कहीं ऐसा न हो कि लेने के देने पड़ जाएँ।"

पुलिस अफसर ने छूटते ही कहा, "तुम ज़ेरे हिरासत हो।"

"क्यों?"

"यह तो पीछे बताएँगे।" पुलिस अफसर ने साथ खड़े कान्स्टेबलों से कहा, "लगादो इसको हथकड़ी।" परिणाम यह हुआ कि हथकड़ी लगाने के लिए जब रामसिंह को पुलिस वाले पकड़ने लगे तो वह भाग खड़ा हुआ परन्तु तुरन्त ही पकड़ लिया गया और हथकड़ियों के साथ बेड़ियां भी डाल दी गईं। पश्चात् होटल की तलाशी ली गई और होटल के एक बन्द कमरे में से एक नाबालिग लड़की निकली जो लाहौर से अपहरण की गई

थी।

बात इस प्रकार हुई कि पुलिस के आने के लगभग एक घंटा पूर्व एक आदमी लाहौर से होटल में आया और अपने साथ वह लड़की लाया था। दोनों ने एक कमरा ले लिया। चूंकि कमरा कुछ घंटों के लिए लिया गया था, इस कारण नाम-धाम लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गई थी। वह आदमी कमरे को ताला लगाकर चाबी मैनेजर के पास रख कहीं चला गया था। रामसिंह का विचार था कि वह लड़की भी उसके साथ ही चली गई है। इस कारण जब पुलिस उसको हथकड़ी लगा रही थी, वह पुलिस वालों को गालियां दे रहा था। जब लड़की कमरे में से निकली तो रामसिंह और लड़की को हिरासत में ले लिया गया और दोनों को हवालात में ले गए।

लड़की ने बयान दिया कि रामसिंह उसको धोखा देकर लाहौर से एक भाड़े की मोटर गाड़ी में अमृतसर ले आया था। उसने अपने अपहरण करने वाले के स्थान रामसिंह का नाम ले दिया। रामसिंह पर एक नाबालिग लड़की के अपहरण और उसके साथ दुराचार का मुकदमा बन गया।

फकीरचन्द पैरवी पर लग गया। सूचना गुणवन्ती को भेजी गई, परन्तु उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार फकीरचन्द जैसे वकील की पैरवी में मुकदमा बिगड़ता गया। परिणाम यह हुआ कि रामसिंह को तीन वर्ष की कैद का दंड हो गया। रामसिंह की अपील की गई और हाई कोर्ट में जाकर उसकी सज़ा घटकर एक वर्ष रह गई।

रामसिंह का इस मुकदमे पर आठ नौ हज़ार व्यय हो गया था। परन्तु उसके पास रुपया काफी था। सब कुछ व्यय करने पर भी उसके पास पैंतीस हज़ार बच गया था।

होटल बन्द हो गया। फकीरचन्द ने फर्नीचर आदि बेचकर नौकरों को वेतन दे दिया। रामसिंह को जेल में एकान्तवास करते समय अपने जीवन पर आलोचना करने का अवसर मिला। वह विचार कर रहा था कि उसको गांव से आने पर मिला क्या? उसके पास रुपया था, रहने को बहुत बढ़िया कोठी थी और जीवन को सुखमय बनाने के सब प्रकार के साधन थे, परन्तु उसको क्लब के मित्रों और फकीरचन्द तथा उसकी पत्नी सुशील की संगत मिली। वह विचार करता था कि वह घर से निकला था अमीर होने। अमीर तो वह हो गया, परन्तु कैसे? यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में भारी हलचल मचाने लगा था। उसने ठेकेदारी की थी। उसमें भारी लाभ था, परन्तु वह लाभ कानून से वर्जित था। यही कारण था कि उसको अफसरों को रिश्वत देनी पड़ती थी। फिर उसने खोला

जूआखाना। इसमें भी केवल मात्र जूए से पर्याप्त आय नहीं थी। उसमें भी धोखा करना पड़ा था। ताश के पत्तों में हेर-फेर किए बिना यहां भी कुछ नहीं बना। अब उसने होटल का व्यवसाय किया और उसमें जो कुछ हुआ, वह भी उसके सामने प्रत्यक्ष हो गया था। उसको भारी संदेह था कि लड़की का अपहरण सुशील के किसी मित्र ने किया होगा और उसको बचाने के लिए लड़की ने रामसिंह का नाम ले दिया। वह सोचता था कि इस कमाई से लाभ ही क्या, जो आत्मा को पतित करे तथा जिसका मार्ग जेल की ओर हो।

व्यापार में लाभ हो सकता है, ऐसी उसकी धारणा थी परन्तु एक छोटा सा व्यापार वह करके देख चुका था और उसका पत्तीदार ही ब्लाटिंग पेपर की भांति उसको चूस गया था अर्थात् उसमें भी आय हो सकती थी, परन्तु बेईमानी करने पर ही। बड़े-बड़े कामों में लोग लाखों लगाते हैं परन्तु वह यह भी जान गया था कि उसके करने के लिए लाखों ही सरमाये के रूप में चाहिए। इस पर भी उसको विश्वास नहीं होता था कि उसमें लाखों कमाने वाले किसी प्रकार से भी बेईमान नहीं होंगे।

इस सब पर वह जेल में लम्बी रातें काटता हुआ विचार किया करता था। जब वह जेल भोगकर बाहर आया तो वह अब आगे जीवन चलाने के लिए गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। जेल में वह अपने पतन में गुणवन्ती के भाग्य पर भी विचार करता रहा था। इस मनन से वह इस परिणाम पर पहुंचा था कि गुणवन्ती ही उसकी इस अवस्था के लिए उत्तरदायी है। इस पर भी जेल में से बाहर आने पर उसने सबसे प्रथम गुणवन्ती से ही सुलह करने का यत्न किया।

जेल से निकल वह एक होटल में ठहर गया। वहां ठहर उसने अपना बैंक में हिसाब-किताब देखा और अपने बैंक बैलेंस पर सन्तोष अनुभव कर लिया। पश्चात् वह गुणवन्ती से मिलने गया। सबसे पहिली बात जो उसको पता चली, वह यह थी कि भगीरथ अब कोठी में ही रहता है। इससे उसको विस्मय हुआ। इस पर भी बिना पक्के आधार के उसने अपने मन से इस विचार को कि उसकी पत्नी भगीरथ के साथ क्यों रहती है, मन से निकाल दिया और गुणवन्ती से मिलने के लिए उसने सूचना उसके पास भेज दी। इस सूचना का उत्तर यह आया कि गुणवन्ती उससे मिलने की कोई आवश्यकता नहीं समझती। उसने अपना सम्बन्ध उससे तोड़ दिया है।

रामसिंह इतनी आसानी से टलने वाला नहीं था। इस कारण जो नौकर उसके पास गुणवन्ती का संदेश लेकर आया था, उसके हाथ ही

उसने कहला भेजा, "मालकिन को कह दो कि एक बार मेरी बात आकर सुन जाए अन्यथा मैं स्वयं अन्दर आजाऊंगा :"

विवश गुणवन्ती भगीरथ को साथ लेकर आई। रामसिंह बरामदे में रखी बैंत की कुर्सी पर बैठा था। जब गुणवन्ती आई तो रामसिंह ने खड़े होकर कहा, "मैं तुमसे एक अन्तिम बात करने आया हूं। सुनोगी ?"

"सुनाओ।"

"यहां सब नौकरों के सामने नहीं।"

"मैं अकेले में तुमसे मिलने में डरती हूं। तुम इन्सान नहीं हो, कोरे पशु हो गए हो।"

"तो भगीरथ को अपने साथ रख लेना। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुमसे जबरदस्ती नहीं करूंगा।"

गुणवन्ती ने कुछ समय तक विचार कर कहा, "अच्छा बात है आओ।"

आगे-आगे गुणवन्ती, पीछे रामसिंह और अन्त में भगीरथ ड्राइंग रूम में प्रविष्ट हुए। गुणवन्ती ने खड़े-खड़े ही कहा, "बताओ।"

"बैठोगी भी नहीं ?"

"क्या आवश्यकता है ! जल्दी बताओ क्या चाहते हो ?"

"मैं गांव लौटकर जा रहा हूं।"

"तो जाओ।"

"तुम मेरे साथ चलो।"

"क्यों ?"

"तुम मेरी पत्नी हो। वहां शेष जीवन शान्ति से व्यतीत करना चाहता हूं। मेरे पास अभी भी काफी रुपया है। वहां जाकर रहने से जीवन भर चलेगा।"

"मैं आपके साथ कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहती।"

"क्यों ?"

"तो आप जानते नहीं कि आप चोर, डाकू, जूएबाज, दुराचारी और क्या क्या नहीं हैं। मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं।"

"तुम क्या हो ?"

"बदनसीब। मैं अपने को चार वर्ष से विधवा समझकर रह रही हूं।"

"तुम मुझसे पुनः विवाह कर लो। नसीब चमक उठेगा।"

"नहीं-नहीं। अब यहां से चले जाओ। मुझको भय है कि पुलिस बुलानी पड़ेगी।"

"तो कोई आशा नहीं ?"

"नहीं।"

रामसिह घर से बाहर निकल आया। आज उसको अनुभव हुआ कि वह इस विशाल संसार में, जो कोटि-कोटि मनुष्यों से कुरबुल-कुरबुल कर रहा है, अकेला है।

उसको अकेले गांव में जाते हुए लज्जा प्रतीत होती थी। इस कारण उसने गांव जाने का विचार बिल्कुल छोड़ दिया। वह विचार करता था कि यदि गुणवन्ती चलने पर तैयार हो जाती तो वह कोई-न-कोई बहाना बना लेता। वहां जाकर वह शान्ति से जीवन व्यतीत करता। अब अकेला जाने में उसका मन नहीं किया।

उसने विचार किया कि वह अब कोई ऐसा काम नहीं करेगा जो किसी प्रकार से भी कानून के विपरीत हो। उसने एक साधारण सा मकान भाड़े पर लेकर रहना आरम्भ कर दिया। यह मकान दरवाज़ा लोहगढ़ के बाहर निर्धनों की बस्ती में था। मकान पक्का बना था परन्तु आसपास के मकान कच्चे थे और उनमें प्रायः टोकड़ी बुनने वाले अथवा अन्य प्रकार से मेहनत-मज़दूरी करने वाले रहते थे। प्रायः मकान एकछते थे। केवल वह मकान ही, जो रामसिह ने भाड़े पर लिया था। दुमंज़िला था। रामसिह ने मकान फर्नीचर से सजा लिया और वह अकेला ही वहां रहने लगा।

इस मकान का पता उसने अपने किसी भी परिचित को नहीं दिया था। उन सबसे, जिनका परिचय उसके ठेकेदारी के काल में हुआ था, अथवा जो उसके क्लब में जान-पहिचान में आए थे, किसी से भी अपना सम्पर्क रखना नहीं चाहता था। वह अपने जीवन का एक नया पृष्ठ खोलना चाहता था।

उसने शराब पीनी छोड़ दी थी। वह प्रातः उठ स्नानादि से निवृत्त हो, जपजी साहब का पाठ करने लगा। यह उसने अपने पिता से अपने विवाह के पूर्व सीखा था। पाठ करने के पश्चात् वह बाज़ार से दूध ले आता था। चाय बनाता और डबलरोटी सेककर मक्खन लगा, प्रातःका अल्पाहार कर लेता। पश्चात् वह घूमने चला जाता। गर्मी की ऋतु में वह किसी पार्क में पेड़ की छाया में बैठे, चलते-फिरते लोगों को देखता रहता। मध्याह्न का भोजन किसी होटल में कर लेता। पश्चात् घर आते समय वह बाज़ार से फल खरीद लाता।

मध्याह्न में आराम करता, पीछे फल खाता और फिर सायंकाल सिनेमा अथवा थिएटर देखने चला जाता। रात का खाना फिर होटल में खाकर घर आकर सो जाता।

इस प्रकार का एकसार जीवन बहुत दिन नहीं चल सका। एक दिन वह दर्जी से कपड़े, बाज़ार से फल और चाय के साथ खाने के लिए बिस्कुट

आदि तथा अन्य आवश्यक सामान टांगे में रखकर लाया। टांगा मकान से कुछ दूर ही ठहर गया था, क्योंकि गली के भीतर जाने के लिए मार्ग नहीं था। उसने टांगे वाले को भाड़ा दिया और सामान उठाने लगा। सामान कुछ अधिक था, इस कारण सब सामान उठाने में कठिनाई अनुभव कर रहा था। एक लड़की सामने खड़ी उसको सामान एक हाथ से दूसरे में करते देख रही थी। वह उसको कठिनाई में पड़े देख बोल उठी, "लाइए मैं ले चलूं।"

"कहां ?" रामसिंह ने विस्मय में पूछा।

"आपके घर।"

"कहां है मेरा घर ?"

"वह है। हम आपके पिछवाड़े वाले मकान में रहते हैं।"

रामसिंह ने सोचा कि एक आना दे देगा। उसने कुछ सामान उसको उठाने को दे दिया और कुछ स्वयं उठा लिया। घर पर आकर उसने दरवाज़ा खोला और भीतर जा उसने लड़की को सामान एक ओर कुर्सी पर रखने को कहा, जेब से एक आना निकालकर देने के लिए हाथ बढ़ाकर कहा, "यह लो।"

"इतने से काम के लिए क्या लूंगी ?"

"तो और काम करोगी ?"

वह रामसिंह का मुख विस्मय में देखने लगी। रामसिंह ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"सोहनी।"

"बाप का क्या नाम है ?"

"बाप नहीं है, मर चुका है।"

"मां है ? क्या करती है ?"

"है। मैं और मां टोकड़ियां बनाते हैं और दिन भर में सात-आठ आने की मजदूरी कर लेते हैं।"

"ओह ! अच्छा बताओ, नौकरी करोगी ?"

"क्या करना होगा ?"

"झाड़ू बुहारी, कपड़े धोना और बाज़ार से दूधआदिसामानलाना।"

"कर लूंगी। क्या दोगे ?"

"रोटी-कपड़ा और दस रुपए महीना।"

"रहूंगी मां के साथ।"

"हां हां।"

"मां से पूछ लूं।"

"जाओ पूछ आओ। आज से ही काम आरम्भ कर दो। रोटी बनाना जानती हो ?"

"मां की और अपनी रोटी तो बना लेती हूं। पर वे तो मोटी-मोटी होती हैं।"

"ठीक है। सिखा दूंगा।"

लड़की गई और मां को साथ ही लेकर आ गई। रामसिंह कपड़े अल्मारी में लटका रहा था कि मां-बेटी ने दरवाज़ा बाहर से खटखटा दिया। रामसिंह ने दरवाजा खोला तो लड़की के साथ एक को, जिसकी गालें भूखी रहने के कारण अन्दर को धँसी हुई थीं, साथ में देखकर समझ गया कि यह सोहनी की मां है। उसने कहा, "भीतर आ जाओ।"

मां ने कहा, "बाबू ! हम बहुत ही गरीब हैं। बिटिया गरीबी से तंग आ गई मालूम होती है। हम आपका बहुत ही एहसान मानेंगे।"

"अच्छा इसको यहां ही छोड़ जाओ। यदि यह चोरी नहीं करेगी तो तुम्हारे खाने-पीने की समस्या मिट जाएगी।"

"सायंकाल को छुट्टी दे दीजिएगा।"

"दिए जलने पर। सुबह सूरज निकलते ही इसको आ जाना चाहिए।"

लड़की खड़ी रह गई और मां चली गई। रामसिंह ने उसको चार आने के पैसे दिए और कहा, "बाज़ार से जाकर साबुन ले आओ और घर आकर अपने कपड़े धो डालो।"

रामसिंह ने उसको अपनी तहमत और चादर इत्यादि कपड़े दिए और उसको कहा, "जब तक तुम्हारे कपड़े सूखेंगे, इनको पहिन लेना।"

: २ :

भूख और चिन्ता से सोहनी दुबली-पतली निस्तेज और छोटी आयु की दिखाई पड़ती थी। जब वह अच्छा भरपेट खाना खाने लगी, साफ-सुथरे कपड़े पहिनने लगी और अपने तथा मां के खाने से निश्चिन्त हो गई तो वह पन्द्रह-सोलह वर्ष की कुमारी दिखाई देने लगी। उसके यौवन के साथ उसका सौन्दर्य भी निखरने लगा। रामसिंह को कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह लड़की उसके जीवन में नया अध्याय आरम्भ करेगी।

वह गुणवन्ती जैसी सुन्दर नहीं थी, इसपर भी वह गरीबी देख चुकने के कारण अति नम्र और सुशील थी। रामसिंह को होटल रखने के कारण भोजन बनाने का ज्ञान हो गया था। उसने सोहनी को सिखाया तो वह शीघ्र ही अच्छा भोजन बनाना सीख गई। इससे जहां उस लड़की को

इच्छानुसार खाने को मिलने लगा, वहां रामसिंह की होटलों में जाने की समस्या सुलझ गई।

रामसिंह ने बिजली की लोहा करने वाली मशीन ला दी और उसको कमीज़, पतलून आदि कपड़े लोहा करना सिखा दिया। कपड़ों की मरम्मत भी वह करने लगी। अभिप्राय यह कि कुछ ही महीनों में वह घर के काम काज में सुघड़ हो गई।

इस काल में रामसिंह ने देखा कि वह चोर नहीं है। इस कारण धीरे-धीरे घर की चाबियां उसके हाथ में रहने लगीं। इस समय रामसिंह को एक काम करने को मिल गया। सोहनी को रामसिंह की नौकरी किए अभी एक मास भी नहीं हुआ था कि सोहनी की मां एक पड़ोसिन को लेकर आई और उससे बोली, "सरकार! इसकी लड़की की शादी है और इसको दो सौ रुपया चाहिए। यह अपने ज़ेवर गिरवी रख देगी। आप रुपया दे दीजिए।"

"मैं भूषणों का क्या करूंगा?"

"जब रुपया लौटाएगी तो ये इसको वापिस कर दीजिएगा। यह रुपए के साथ सूद भी देगी।"

"कितना देगी?"

"वह दरवाज़े के भीतर दरबारी सर्राफ देता है। दो पैसे रुपया महीना सूद लेता है और फिर भूषणों में भी हेर-फेर कर देता है।"

रामसिंह विचार करता था कि क्या नगरों में कोई भी ऐसा काम नहीं है जिसमें बेईमानी न हो सके। वह सोचने लगा कि दो पैसे रुपया महीना तो तीन रुपए दो आने महीना सैंकड़ा का हिसाब बैठ गया। यह बहुत ज़्यादा था। उसने पूछा, "मां! कितना सूद ठीक है बताओ?"

"मालिक! एक पैसा रुपया यह दे देगी।"

"नहीं। यह भी बहुत अधिक है। मैं इससे एक अधेला रुपया महीना के हिसाब से लूंगा। दो सौ रुपये का सूद एक महीने में डेढ़ रुपया बनेगा। ठीक है। एक बात है कि यह सूद महीने के महीने दे जाया करे और रुपया एक वर्ष के अन्दर दे जाए।"

"जुग जुग जीओ मालिक! यह बेचारी आपके जन्म भर गुण गाती रहेगी।"

इस औरत को तो रुपया मिल गया परंतु यह बात फैल गई कि सरदार बहुत ही दयालु है और रुपया बहुत कम सूद पर देता है। इससे रुपया सूद पर देने का व्यवसाय चलने लगा। रामसिंह ने एक लोहे की संदूकची खरीद ली और उसमें गिरवी रखे जाने वाले भूषण इत्यादि रखने लगा।

उसने देखा कि सोहनी कुछ हिन्दी लिख लेती है और वह भूषणों पर गिरवी रखने वालों के नाम-पते लिख लिया करती थी।

कुछ ही महीनों में रामसिंह को ऐसा अनुभव होने लगा कि यह छोटा सा घर तो गुणवन्ती की बड़ी कोठी से अधिक सुखमय सिद्ध हो रहा है। आसपास के लोग उसका मान करते थे और जो उससे कर्ज़ा ले चुके थे, उसको देवता समझने लगे। जब लोग रुपया वापिस करने आते तो एक और नाटक हो जाता। प्राय: लोग हिसाब गिनना नहीं जानते थे। सोहनी उनका हिसाब बना देती थी। जो बद्री सर्राफ को सूद देने का अभ्यास रखते थे, वे बहुत कम देकर छुटकारा पाते देख रामसिंह के पांव छूने लगते थे। कभी कोई रुपया लाता और उसके पास सूद देने के लिए रकम कम पड़ जाती और सोहनी उससे झगड़ा करती कि इतना कम भी वह नहीं दे सकती तो भूषण छुड़ाने आयी ही क्यों है? रामसिंह यह सुन लेता तो सोहनी को डांट देता। वह कहता, "सोहनी! झगड़ा क्यों करती हो?"

"सरकार! सूद कम लाई है"

"कितना कम लाई है?"

"तीन रुपए आठ आने बनते हैं पर यह दो रुपए ही देना चाहती है। बद्री सर्राफ के पास चली जाती तो अच्छी तरह से सिर मुंडाकर आती।"

इस पर रामसिंह कह देता, "अच्छा जाने दो। जो देती है ले लो। यूं ही झगड़ा करना ठीक नहीं। बेचारी के पास नहीं होंगे।"

इस प्रकार बात तय हो जाती। अब उधार चुकाने वाला सत्य हृदय से आशीर्वाद देता चला जाता।

रामसिंह के मन में कई बार यह बात उठी थी कि घर के इस प्रबन्ध को स्थाई बना ले। परन्तु वह सोहनी को इस प्रकार की बात कहते संकोच अनुभव करता था। जिन बातों को वह क्लब में किसी भी स्त्री को निस्संकोच भाव से कह सकता था, यहां मुख से निकालते नहीं बनती थीं। गरीबी में भी एक तेज़ होता है जो नीच से नीच प्रकृति के आदमी के मन में भी सम्मान उत्पन्न करने में सबल होता है।

वह अभी इस विषय पर मनन ही कर रहा था कि एक दिन जब वह घर के कुछ ही अन्तर पर सड़क के किनारे जा रहा था, तो गुणवन्ती मोटर में सवार, उसके सामने से गुज़र गई। रामसिंह पैदल था और मोटर का मार्ग छोड़ सड़क के किनारे खड़ा हो गया था। रामसिंह ने गुणवन्ती को देखा था, परन्तु उसको इस घटना में कुछ विशेषता प्रतीत नहीं हुई थी। मोटर गई तो वह चल पड़ा। उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब उसने देखा कि मोटर कुछ दूर जाकर ठहर गई है और मोटर का ड्राईवर

उतरकर उसकी ओर ही आ रहा है। इससे एक क्षीण सी आशा उसके मन में जाग पड़ी। उसने समझा कि उसकी पत्नी के मन में पश्चात्ताप उठा है।

मोटर ड्राईवर उसके पास आया तो पूछने लगा, "आपका नाम रामसिंह है क्या ?"

"हां, क्यों ?"

"यह मोटर में बैठी बीबी आपको बुला रही हैं।"

रामसिंह मन में विचार करने लगा कि जाए अथवा न। उसका मन इस प्रकार बुलाए जाने पर उससे मिलने को नहीं चाहता था, परन्तु यह समझ कि वह पुरुष है, उसको पतले बर्तन में पानी की भांति उबलनहीं पड़ना चाहिए। इस कारण ड्राईवर के साथ चलकर मोटर के पास जा खड़ा हुआ।

गुणवन्ती ने दरवाज़ा खोलकर पूछा, "कहां रहते हैं आप ?"

"यहीं। इसी मुहल्ले में। एक मकान भाड़े का ले रखा है।"

"आप तो कहते थे कि आपके पास बहुत धन है ?"

"हां। गांव में रहने के लिए। नगर के खर्चे के लिए यह पर्याप्त नहीं।"

"तो कुछ धंधा नहीं किया ?"

"किया है परन्तु उससे यहां रहने के लायक ही पैदा होता है।"

"क्या काम किया है ?"

"रुपया कर्ज देता हूं।"

"ऊंह।" घृणा की मुद्रा बनाकर गुणवन्ती ने कहा।

"आपके मैले कपड़े देखकर मैंने सोचा था कि कदाचित् आपको मेरी सहायता की आवश्यकता हो।"

"नहीं। मुझको किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं है।"

"कभी हो तो आजाइएगा। मेरे नाम की "डर्बी" निकली है। अढ़ाई लाख मिला है।"

"ओह ! बधाई हो।"

"हां। मैं अब कुछ तो सहायता कर सकती हूं।"

"धन्यवाद।"

गुणवन्ती ने संकेत किया तो ड्राईवर मोटर में सवार हो गया तथा मोटर स्टार्ट कर ले गया। रामसिंह कुछ काल तक गुणवन्ती के भाग्य पर विस्मय करता रहा। फिर यह विचारकर कि गुणवन्ती ने उसको नीचा दिखाने के लिए और उसको लज्जित करने के लिए मोटर खड़ी कर उसको

लाटरी निकलने की बात बताई है। इस विचार के ग्राने पर उसके मन में गुणवन्ती के प्रति घृणा ग्रौर भी बढ़ गई। वह ग्रपने काम पर चल पड़ा। मार्ग में वह यही विचार कर रहा था कि उसको भी ग्रपने भाग्य को सुधारने का यत्न करना चाहिए। इस भाग्य को सुधारने की बात से उसके मन में विवाह का विचार उठ खड़ा हुग्रा।

वार-वार उसके मन में सोहनी से विवाह का प्रश्न उठ रहा था। ग्राज उसने इस विषय में सोहनी की मां से वातचीत करने का निश्चय कर लिया।

उसको वाज़ार से कुछ फल खरीदने थे ग्रौर दर्जी से कपड़े लेने थे। वह ग्रपने काम से निपटकर घर लौटा तो सोहनी ने उसके हाथ में एक कपड़े का वंडल दे दिया। उसने सोहनी का मुख देखा तो सोहनी मुस्कराकर कहने लगी, "यह ग्रापकी पत्नी दे गई है।"

रामसिंह को गुणवन्ती का स्मरण हो ग्राया। वह समझा कि डर्वी मिलने की खुशी में वह कुछ दे गई है। वह मन में विचार करता था कि वह उसका पता कैसे पा गई है। इस पर भी वह कुछ समझ नहीं सका। उसने वंडल खोल दिया। उसमें कुछ मिठाई थी। सूट के लिए कपड़ा था ग्रौर साथ ही एक पत्र था। पत्र ग्रंग्रेज़ी में था, इस कारण वह पढ़ नहीं सका। जब वह कुछ समझ नहीं सका तो उसने सोहनी से पूछा, "कौन लाया था इसको?"

"एक ग्रौरत थी। सरकार! वहुत सुन्दर थी।"

"कैसे कपड़े पहिने थी?"

"साड़ी थी, बूट था। सिर के वाल कटे हुए थे। दुवली-पतली सी वहुत ही भली मालूम देती थी। कहती थी कि सरदार रामसिंह के लिए है। मैंने पूछा कि ग्रापका नाम क्या है तो कुछ विचार कर बोली, "कह देना ग्रापकी वीवी थी।"

"मेरी वीवी थी?"

"हां सरदार!"

"उमर क्या मालूम होती थी?"

"मैं क्या जानूं? इतना कह सकती हूं कि उसके वाल वहुत ही काले ग्रौर चमकदार थे। गालों पर हल्की सुरखी थी ग्रौर होंठ तो वहुत ही ज्यादा रंगे हुए थे।"

रामसिंह समझ गया कि फकीरचन्द की वीवी थी। पर उसने उसकी वीवी होना क्यों स्वीकार किया वह समझ नहीं सका। न ही वह इस वंडल का रहस्य जान सका। उसने इस वंडल की वस्तुएं समेटकर एक

ओर रख दीं और सोहनी को कहा, "चाय बना लाओ। अब फिर जाना होगा।"

सोहनी जाकर चाय बनाने लगी। इतनी देर तक रामसिंह विचार करने लगा कि उसने इस लड़की के सामने अपने को उसकी बीवी क्यों कहा? इसमें क्या रहस्य हो सकता है?

सोहनी ट्रे में चाय लेकर आई तो रामसिंह चाय बनाकर पीने लगा। सोहनी सामने ही बैठ गई। रामसिंह ने चाय की सुरकी लगाई तो सोहनी ने पूछ लिया, "सरकार! अपनी बीवी को लेने जा रहे हैं?"

"क्या?" रामसिंह ने ऐसे कहा मानो वह किसी स्वप्न से जाग उठा हो। फिर उसने सोहनी का मतलब समझकर कहा, "वह औरत झूठी है। वह मेरी बीवी नहीं है।"

"ऐसा भी कोई करता है कि झूठमूठ किसी आदमी की बीवी बन जाए?"

"हां, मुझको ठगने के लिए कर सकता है।"

सोहनी यह सुन विस्मय में पड़ गई। रामसिंह चाय पीता गया। साथ में आमलेट बना था। वह खा रहा था। सोहनी ने फिर साहस कर पूछा, "यदि वह ठगनी है तो आप उसके पास क्यों जा रहे हैं?"

"उससे ठगे जाने के लिए।" रामसिंह ने मुस्कराकर कहा।

"क्यों? क्या आवश्यकता है इसकी?"

"औरतें ठगा करती हैं और पुरुष ठगे जाकर प्रसन्न होते हैं।"

"पर आपने तो कहा था कि मुझे चोरी नहीं करनी।

"पर तुम औरत तो नहीं मालूम होतीं। तुम्हारा जीवन तो अभी बनना है। भगवान करे कि वह बहुत ही सुखमय हो।"

सोहनी का मुख लाल हो गया और वह भूमि की ओर देखने लगी। रामसिंह ने आगे कहा, "यह औरत बहुत ही बुरी है। उसने तुमको कहा है कि वह मेरी बीवी है। मैं उससे पूछने जा रहा हूं कि उसने ऐसा क्यों कहा है।"

"मैं कहती हूं कि आप मत जाइए। ऐसा कहने वाली औरत अच्छी नहीं हो सकती।"

"मैं जानता हूं कि वह अच्छी नहीं है। इसपर भी इस बंडल के विषय में जानना है।"

"इसके विषय में न जानने से कोई भारी हानि होने की सम्भावना है क्या?"

रामसिंह सोहनी को इस प्रकार आग्रह करते देख विस्मय में बैठा

रह गया। एकाएक उसने पूछा, "तुमको मेरा बहुत हित है?"

"जी हां" वह अभी भी भूमि की ओर देख रही थी और पांव के अंगूठे से भूमि पर लकीरें बनाने का यत्न कर रही थी।

एकाएक उसके मन में विचार आया कि सइ समय उससे अपने मन की बातकहदे परन्तु इस कुमारी लड़की से, जो कदाचित् विवाह के विषय में कुछ नहीं जानती, कैसे बात करे। उसको एक बात सूझी और उसने कह दिया।

: ३ :

"देखो सोहनी! यह स्त्री मेरी पत्नी नहीं है। यह एक गरीबवकाल की अमीर पत्नी है। मेरा विवाह एक अन्य से हो चुका है। वह इसकी भांति अवारा तो नहीं, परन्तु अभिमान की पुतली और धन की लोभिन है। वह मुझसे लड़ी हुई है। वह आज ही मुझको बाजार में मिली थी और मुझको इन निर्धनों के मुहल्ले में रहते देख, यह अनुमान लगा कि मैं भी निर्धन हूं, मुझको सहायता देने की बात कहती थी। मैंने इसमें अपना अपमान समझा।"

"अब एक बात का मैं विचार कर रहा हूं कि इसअभिमानी स्त्री से सदैव के लिए तिनका तोड़ देने के लिए अपने औरउनकेबीच एकदीवार खड़ी कर दूं।"

कुछ विचार कर वह आगे कहने लगा, "वह दीवार जानती हो क्या होगी? मैं अब एक नया विवाह करूंगा और मेरी नई बीवी मेरे और उसके बीच एक बड़ी दीवार हो जाएगी, जिसको लांघकर न वह इधर आ सकेगी और न ही मुझको उधर जाने की आवश्यकता पड़ेगी।"

सोहनी इन बातों का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ सकी, परन्तु वह चुपचाप गम्भीर सोच में पड़ी रही। रामसिंह ने अपना कहना जारी रखा, "मैं लगभग एक वर्ष से दीवार को ढूंढ़ रहा हूं। वह मुझको मिल गई मालूम देती है। मेरा मतलब है कि मैंने एक लड़की से विवाह का निश्चय कर लिया है।"

"कहां?" सोहनी ने उत्सुकतापूर्वक उसका मुख देखते हुए पूछा।

"सोहनी! जाओ अपनी मां को बुला लाओ। मुझको उससे कुछ काम है।"

"मां को?"

"हां हां जाओ। मैंने अभी बाज़ार जाना है।"

सोहनी जाकर मां को बुला लाई। मां के आने पर रामसिंह ने कहा, "सोहनी की मां! मैं चाहता हूं कि सोहनी का विवाह कर दूं। बताओ तुम क्या कहती हो?"

"पर लड़का कहां है?"

"कैसा लड़का चाहिए तुमको?"

"जो स्वस्थ हो, अच्छा हो, काम-काज करता हो और लड़की को प्रसन्न रख सके।"

"एक लड़का है। मेरी नजर में तो वैसा ही है, जैसा तुम चाहती हो।"

"तो ठीक है। कर दो। पर कुछ देना-लेना भी पड़ेगा क्या?"

"क्या है तुम्हारे पास देने के लिए?"

"कुछ भी नहीं।"

"तो कुछ नहीं देना पड़ेगा। पर एक बात है। वह सिख है।"

"मुझको सिखों पर विश्वास नहीं है।" सोहनी की मां ने कुछ परेशान होकर कहा।

"सब सिखों पर?"

सोहनी की मां को समझ आ गई कि वह एक सिख से बात कर रही है। साथ ही वह यह भी जानती थी कि एक सिख पर वह कितना विश्वास किए हुए है, कि अपनी लड़की को उसके पास रख छोड़ा है। उसको यह जानकर कि उसने एक भारी भूल कर दी है, भारी चिन्ता लग गई। उसने तुरन्त ही क्षमा भाव में कहा, "सबकी बात तो नहीं कह सकती। उनमें अच्छे और बुरे दोनों हैं। पर मैं तो यह कहना चाहती हूं कि कोई शराबी मिल गया तो लड़की की दुर्दशा कर देगा।"

"पर क्या सब सिख शराब पीते हैं?"

"नहीं। तुम नहीं पीते।"

"कई सिख तो मुझसे भी अच्छे हैं।"

"मुझको तो इतना ही अच्छा ठीक है, जितने तुम हो।"

"तो ठीक है। मेरा जितना अच्छा तो वह है ही। पर एक बात और है।

"उसका एक विवाह पहिले हो चुका है। उसकी पहली औरत बहुत धनी और उससे घृणा करती है।"

"क्यों घृणा करती है?"

"इस कारण कि वह लखपती है और लड़का मामूली आदमी है।"

"बहुत बुरी औरत है वह।"

'हां। लड़का उसके अभिमान से दुखी होकर उसको छोड़ बैठा है।"

"तब तो सोहनी के लिए बहुत कठिनाई होगी। यदि अनबन हो गई तो उसका अपना निर्वाह करना भी कठिन हो जाएगा, मैं तो बहुतगरीब हूं।"

"पर सोहनी की मां ! लड़का इतना कुछ तो रखता है कि वह अपना और सोहनी का निर्वाह कर सके। साथ ही सोहनी तो बहुत अच्छी लड़की है। उससे अनबन क्यों होगी ?"

"यह तुम जानो मालिक ! यदि तुमको पसंद है तो मुझको भी पसंद है। मैं वेचारी क्या जानूं ?"

"फिर भी लड़की तुम्हारी है। विना तुम्हारी इच्छा के उसका विवाह नहीं हो सकता। भला तुम सोहनी से पूछ तो लो कि वह एक ऐसे लड़के से विवाह करेगी या नहीं ?"

"वह बेचारी क्या जानती है कि विवाह क्या होता है ?"

"फिर भी उससे पूछ तो लो। लड़के का रंग लगभग मेरे जैसा ही होगा। रुपया उसके पास है। उसके बाप-भाई भी हैं। वह उसको अच्छे-अच्छे भूषण-वस्त्र भी देगा। केवल उसकी पहली बीवी है, जो उससे लड़ती है और जिसको वह छोड़ चुका है।"

सोहनी की मां विस्मय में रामसिंह का मुंह देखती रही। कुछ विचार कर बोली, "अच्छा रात को पूछकर बताऊंगी।"

"नहीं, सोहनी की मां ! मैं अभी उस लड़के के पास जा रहा हूं और उससे निश्चय कर लेना चाहता हूं। तुम भीतर चली आओ और पूछ आओ।"

सोहनी की मां भीतर चली गई। सोहनी रसोई में बैठी चूल्हे को देख रही थी। मां ने उससे पूछा, "क्यों खाली बैठी क्या कर रही हो ? चूल्हा नहीं जलाया ?"

"जला रही हूं मां।"

"क्या कर रही हो यहां बैठी हुई ?"

"विचार कर रही हूं कि मालिक मेरी शिकायत कर रहा होगा। न जाने किसलिए बुलाया है तुमको ?"

"बुलाया है तुम्हारे हाथ-पांव बांधने के लिए। कहते थे कि तुम बहुत घूमती रहती हो। अब जवान हो गई हो। घर पर बैठना चाहिए।"

"सच मां ?"

"क्या सच ?"

"मैं जवान हो गई हूं क्या ?"

"कुछ-कुछ तो मुझको भी लगने लगी हो। देखो, वह कहते थे कि

तुमको बांधकर रखना चाहिए। कहीं खराब न हो जाओ। बांधने के लिए एक रस्सा ढूंढा है। उससे तुम्हारा विवाह कर तुम्हें बांध देंगे।"

"नहीं मां! मैं अपने आप ही घर पर बैठ जाऊंगी। बांधने की ज़रूरत नहीं होगी।"

"पगली कहीं की! बात यह है कि तुम्हारे लिए एक लड़का ढूंढा है जिससे तुम्हारा विवाह करने को कह रहे हैं।"

सोहनी के पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया। वह रामसिंह की बातें सुनकर संदेह तो कर रही थी कि कहीं वह उससे ही विवाह का प्रस्ताव करना चाहता होगा। क्या उस जैसे धनी और सुन्दर युवक को उस जैसी निर्धन और बिना बाप की लड़की पसंद होगी वह समझ नहीं सकी थी। इस पर भी इतनी मधुर बात के मस्तिष्क में आने पर वह सुख-स्वप्न लेने लगी थी। यही कारण था कि वह भूल गई थी कि वह आग जलाने आई है और उसने रोटी भी बनानी है। वह आई तो चूल्हे के सामने ही बैठी रह गई।

उसकी मां ने उसको चुप देख कहा, "वे कहते हैं कि लड़का सुन्दर है, स्वस्थ है और कुछ धन भी रखता है। तुमको भूषण और वस्त्रों से लाद देगा और मज़े में गुज़ारा होगा। केवल यह है कि वह सिख है और उसकी पत्नी पहले है। वह पत्नी लखपती है और उस लड़के से घृणा करती है।"

मां इतना कह सोहनी के मुख पर देखने लगी। वह जानना चाहती थी, कि उसके प्रस्ताव का प्रभाव क्या हुआ है। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ था कि उसका मुख चमक उठा है। वह तो अभी भी भूमि की ओर देख रही थी और चुप थी।

"तो क्या कहूं उससे बेटी?"

"मैं क्या जानूं मां!"

"विवाह तो तुम्हारा ही होगा।"

"तो उनको कह दो।" सोहनी ने मुख नीचे और आंखें बन्द कर कहा, "कि यदि उनको पसन्द है तो मुझको भी पसन्द है।"

"तो कह दूं?"

सोहनी चुप रही। मां उठकर बाहर चली गई। रामसिंह बाहर शीशे में अपने मुख को देख रहा था। इससे सोहनी की मां ने बैठक में आकर कहा, "मालिक! लड़की कहती है कि आप इतने समझदार हैं कि कोई गलत बात नहीं कर सकते। यदि आप राजी हैं तो वह भी राजी है।"

रामसिंह ने शीशे से घूमकर सोहनी की मां की ओर देखकर पूछा, "और तुम?"

"मैंने तो आप पर इतना भरोसा कर रखा है कि आपके पास अपनी कुंवारी युवा लड़की रखी है। इससे ही समझ लीजिए कि आपपर कितना विश्वास है।"

"तो ठीक है। सोहनी की मां ! कल सोहनी का विवाह होगा। विवाह का प्रबन्ध मैं कर दूंगा। यहां मेरे घर में ही दूल्हा आ जाएगा और सब प्रबन्ध हो जाएगा। तुम केवल साफ-सुथरे कपड़े पहिन यहां आ जाना। तुम्हारी ओर से जो लेना-देना होगा, वह मैं समझ लूंगा। मुहल्ले के कुछ समझदार औरतों और मरदों को भी बुला रखना। लो अब मैं जाता हूं।"

इतना कह रामसिंह चला गया। उसके जाने के बाद सोहनी बाहर बैठक में आ गई। सोहनी की मां अभी भी बैठक के बीच में खड़ी विचारों में लीन थी। वह यह नहीं समझ सकी कि यह भले के लिए हो रहा है अथवा बुरे के लिए। इस समय सोहनी आई और मां को गले मिलकर कहने लगी, "मां ! तुम बहुत ही अच्छी हो।" इतना कहकर उसने कसकर मां से गले मिलकर उसको छोड़ दिया और प्रसन्नता से भरी हुई सामने रखे सोफे पर बैठ गई।

मां ने लड़की को इतना प्रसन्न देख पूछा, "तो तुम प्रसन्न हो ?"

"हां मां !" इतना कहते-कहते उसकी आंखें आनन्द के आंसुओं से भर गईं।"

"पर तुम तो रो रही हो ?"

"रो नहीं रही मां। खुशी के मारे पागल हो रही हूं।" वह रोती हुई और हँसती हुई फिर मां के गले से लिपट गई।

"भगवान जाने कैसे से वास्ता पड़ेगा !"

"सब ठीक होगा मां !"

इतना सोहनी कह तो गई परन्तु उसके मन में लज्जा और संकोच उभर आया और वह चुप रह गई।

मां लड़की की प्रसन्नता का अर्थ समझने के लिए पूछने लगी, "तो तुमने लड़के को देखा है ?"

सोहनी अपने मुख से हां निकालते निकालते रुक गई। एक ओर तो उसको लज्जा ने घर दबाया और दूसरी ओर उसके मन में यह भय समा गया कि कहीं उसका अनुमान असत्य ही सिद्ध हो गया तो। वह गम्भीर हो गई और सोफे से उठकर बोली, "मां ! मालिक जो करेंगे, वह गलत नहीं हो सकता।"

रामसिंह फकीरचन्द के घर जा पहुंचा। वह पार्सल का अर्थ जानना चाहता था। साथ ही सुशील का अपने को उसकी बीवी कहना, वह समझना चाहता था।

फकीरचन्द क्लब जा रहा था और रामसिंह को आया देख खड़ा हो गया। उसने पूछा, "बताओ रामसिंह ! कहां रहते हो आजकल ?"

"सुशील मेरे घर गई तो थी। उससे पूछ लेते कि कहां रहता हूं।"

"आओ, भीतर आ जाओ। एक बड़ी मजेदार बात हुई है।"

वे दोनों भीतर चले गए। सुशील पति से पृथक् कहीं जाने के लिए तैयार खड़ी थी। रामसिंह ने पूछा, "तो यह भी कहीं जा रही हैं ?"

"केवल बाजार से कुछ खरीदने जा रही हूं। पर अब आप आ गए हैं तो मैं कहीं नहीं जाऊंगी।"

"मैं बहुत जल्दी यहां से चला जाऊंगा। केवल एक बात पूछने आया हूं।"

सब बैठ गए। फकीरचन्द ने कहा, "मैं जानता हूं कि तुम किसलिए आए हो।"

"कल लाहौर का एक रईसजादा यहां आया था। उसके पिता को मैं जानता हूं। वह रईसजादा तुम्हारे प्रति भारी कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। बात यह है कि एक दिन वह लाहौर से एक प्रतिष्ठित नागपरक की लड़की भगाकर यहां ले आया था और तुम्हारे होटल में एक घंटा भर उसके साथ रहा था। उसका विचार था कि उसका पीछा किया जा रहा है और वह चाहता था कि लड़की तुम्हारे होटल में पकड़ी जाए और बदनाम हो जाए।

"इस कारण वह लड़की को सिखा-पढ़ाकर कमरे में बन्द कर ताला लगा चुपचाप खिसक गया। वह अपनी मोटर भी वहां से ले गया था। उसके जाने के पश्चात् लाहौर और अमृतसर की पुलिस ने तुम्हारे होटल पर छापा मारा और लड़की तुम्हारे होटल में बन्द मिली। लड़की ने वही बयान दे दिए जो वह रईसजादा उसको देने के लिए कह गया था। परिणाम यह हुआ कि तुम पकड़े गए। मुकदमा हुआ और तुमको दण्ड मिला।

"दूसरी ओर वह लड़की बदनाम हो गई और उसका विवाह उसी रईसजादा से हो गया। इस घटना से पहिले लड़की का बाप उससे विवाह करना नहीं चाहता था। उसके पश्चात् न केवल विवाह ही हुआ प्रत्युत एक भारी रकम दहेज में भी मिली। मुकदमे के एक महीने पीछे लड़की

का विवाह हो गया। मियां बीबी अपनी इस चालाकी पर खूब हँसे परन्तु उनको इस बात का शोक था कि व्यर्थ में तुम्हें कष्ट दिया है। ये कपड़े अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उन्होंने तुमको भेजे हैं।

"मैं तुम्हारी वकालत कर रहा था। इस कारण वे मुझसे तुम्हारा पता पूछने आए। मैंने तुम्हारी हानि और मुसीबत का एक रोचक चित्र खींचकर सुनाया तो वे बहुत अफसोस करने लगे। यह रईसज़ादा स्वयं था उसकी पत्नी अर्थात् वह लड़की जो तुम्हारे होटल में पकड़ी गई थी और उसकी गोदी में बच्चा, मतलब यह कि सारा परिवार तुम्हारा धन्यवाद करने और तुमसे क्षमा मांगने आया था।"

सुशील ने कहा, "मैंने तुमको एकबार उस गली में से निकलते देखा था। इस कारण कपड़े और उनकी चिट्ठी तुमको देने वहां जा पहुंची। तुम्हारा मकान ढूंढना कठिन नहीं था। तुम तो वहां एक प्रसिद्ध व्यक्ति बन गए हो।"

रामसिंह को अभी भी सन्तोष नहीं हुआ था। उसने अपनी जेब में से पत्र निकालकर फकीरचन्द के सामने रखकर कहा, "ज़रा इसका मतलब समझा दो।"

फकीरचन्द ने चिट्ठी पढ़ और उसका अनुवाद कर समझा दिया। उसने चिट्ठी इस प्रकार समझाई, "श्रीमान् सरदार जी! मैंने आपका नाम मुकदमे की रिपोर्ट में ही सुना था। इससे जो मज़ाक आपके साथ हो गया था, वह और भी संगीन हो गया है।

"मैं इन्द्रा, यह मेरी पत्नी का नाम है, को बहुत ही प्रेम करता था। इन्द्रा के पिता मुझको पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने लड़की का विवाह अस्वीकार कर दिया था। इस कारण मैंने यह षड्यन्त्र किया। मैंने इन्द्रा से सब राय पक्की कर एक टैक्सी उनकी कोठी के बाहर भेज दी। मैंने टैक्सी वालों को समझा दिया था कि यदि कोई पूछे तो कह देना कि रायल होटल अमृतसर से आई है।

"जब टैक्सी कोठी के बाहर पहुंची तो इन्द्रा ने घर की नौकरानी को कहा कि वह टैक्सी वाले से पूछे कि कहां से आया है। टैक्सी वाले ने वैसे ही बता दिया, जैसे मैंने कहा था। इन्द्रा ने नौकरानी के मुख से यह सुन कि टैक्सी कहां से आई है, बाहर आकर टैक्सी में बैठ गई और टैक्सी वाला उसको लेकर वहां आ गया, जहां मैंने उसको आने को कहा था। वहां से टैक्सीवाले को भाड़ा और इनाम देकर मैं इन्द्रा को लेकर आपके होटल में आ पहुंचा। मेरा अनुमान था कि इन्द्रा के पिता मेरा पीछा करेंगे और मुझसे दो घंटे पश्चात् होटल में आ पहुंचेंगे। मैं एक घंटे के लगभग

होटल में ठहरकर इन्द्रा को ताला लगाकर होटल से निकल आया। आगे आप जानते ही हैं कि क्या हुआ है।"

"मैंने लाहौर में पहुंचकर लड़की को मन भरकर बदनाम किया और उसका पिता उसका मुझसे विवाह करने पर विवश हो गया। मुझको एक भारी रकम दहेज में मिल गई है। अब हमारे घर में एक लड़का भी हो गया है। इससे आपको, जो इस पूर्ण मधुर जीवन के निर्माता हैं, अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मिलना अति आवश्यक जान पड़ा है। कल हमारे लड़के का नामकरण संस्कार है और हम चाहते हैं कि आप इस लड़के को आशीर्वाद दें। साथ ही हमारी हार्दिक इच्छा है कि आप हमारी ओर से यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। जो कुछ भी हम आपको भेज रहे हैं, वह उस हानि का, जो हमारे कारण आपको उठानी पड़ी है, कुछ भी प्रतिकार नहीं। इस पर भी आपको आर्थिक संकट में देख कुछ तो भेज ही रहा हूं। एक बात और बता देना चाहता हूं कि कभी कुछ आवश्यकता पड़े तो मुझे मिलिएगा। मैं अपनी शक्ति के अनुसार आपकी सहायता करूंगा।"

रामसिंह इस कहानी को सुन खिलखिलाकर हंस पड़ा। फिर उसको एकाएक यह समझ आया कि पत्र में लिखे का यह भी अर्थ निकलता है कि "इस बंडल के कपड़ों के साथ और क्या था?"

इस प्रश्न पर फकीरचन्द हंसने लगा। सुशील ने इसका उत्तर दे दिया। "आपके लिए कपड़े थे। साथ ही आपकी पत्नी के लिए साड़ी-जम्पर का कपड़ा था और कुछ रुपया भी था।"

फकीरचन्द ने वृत्तान्त पूर्ण कर दिया। उसने कहा, "साड़ी-जम्पर तो इसने ले लिया है। तुम्हारी पत्नी को तो साड़ी-जम्परों की कमी नहीं है। इसके पास कोई नई साड़ी नहीं थी सो इसने रख ली है। यह कहती है कि वह आपसे पत्नी का प्यार पा चुकी है। तुम्हारे पर किसी प्रकार का आर्थिक संकट भी नहीं। मेरी जेब आजकल खाली है। इस कारण वे रुपए मैंने रख लिए हैं।"

"कितने थे?"

"पांच हज़ार थे।"

"फकीरचन्द, यह तुमने ठीक नहीं किया। मैं तो यह सब कुछ उसको वापिस कर देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि रुपया दे दो। और साड़ी-जम्पर भी वापिस दे दो जिससे मैं ये सब उसको वापिस कर सकूं।"

"भाई रामसिंह! रुपया तो वापिस करने का स्वभाव नहीं है। साड़ी इसने पहिन ली है। जम्पर का कपड़ा दर्जी को दे आई। कदाचित् उसने काट लिया होगा। यह उसको ही दर्जी से लेने जा रही थी।

"मेरा मतलब है कि यह तो वापिस हो सकता नहीं। उनको लिख दो कि मैंने तुम्हारे मुकदमे का खर्चा नहीं लिया था, इस कारण वह रुपया मैंने ले लिया है और साड़ी-जम्पर फकीरचन्द साहब की बीवी ने ले लिया है। तुम्हारी अपनी कोई बीवी नहीं।"

रामसिंह फकीरचन्द और उसकी बीवी को यह कहकर, "मैं आप दोनों का मुख देखना नहीं चाहता, "उठकर चलने को तैयार हो गया।"

सुशील ने कहा, "रामसिंह जी! हुआ क्या? नाराज़ क्यों हो रहे हैं? मैंने कुछ ले लिया तो गज़ब किधर का हो गया?"

"यह महा अपमान है कि किसी के गुनाहों को अपने सिर लेकर दंड भोगने के लिए रुपए लूं।"

इस पर फकीरचन्द ने कहा, "वाह! आखिर हो तो गांव के ही न? इतने दिन नगर में रहे, पर रहे गंवार के गंवार ही। हां भाई! केवल नगर की गलियों की मिट्टी छानने से अक्ल थोड़े ही आती है?"

रामसिंह को भी क्रोध चढ़ आया और उसने भी दो-चार जली-कटी सुना दीं। "नगर की गलियों की मिट्टी नहीं छानी। फकीरचन्द! वैलिंगडन क्लब में रईसज़ादे की सोहबत की है। उसमें कुछ सीखने के स्थान कुछ भूला ही हूं।

"गांव में सरल सादा जीवन था। झूठ बोलने का न स्वभाव था और न ही कभी आवश्यकता पड़ी थी। चोरी करने का तो कभी विचार तक नहीं आया था। आवश्यकता ही नहीं थी। न किसी से वैर था और न किसी से ईर्ष्या।

"यहां नगर में आकर जीवन इतना मंहगा, पेचीदा और दुस्तर हो गया है कि चोरी-डाका, फरेब, द्वेष, ईर्ष्या सबकी सब शरीर में धंस आई हैं। भगवान का भला हो कि सहज में छुटकारा हो रहा है। एक वर्ष की जेल ने ही आंखें खोल दी हैं। इसी कारण धन रखते हुए भी गरीबों के मुहल्ले में जाकर रहना पसन्द किया है।"

"जानते हो क्या हुआ है? एक गरीब विधवा की युवा लड़की एक वर्ष से नौकरी करती है, परन्तु वह इतनी सरल चित्त है कि उस पर हाथ उठाने से जी डरता है। तुम्हारे साथ हंसी-मजाक और नीच व्यवहार करने में लुत्फ आता था परन्तु उस बेचारी की ओर तो नज़र भरकर देखने में संकोच होता है।"

"तुम एक वकील की बीवी हो। मुझको तंग कर लूट सकती हो। मेरी बदनामी कर मेरा हुलिया बिगाड़ सकती हो। तुमने लूटा भी था। इस पर भी तुमको देखकर जी डरता नहीं था।"

"वह निर्धन विधवा की लड़की है। सर्वथा निस्सहाय और किसी प्रकार भी हानि पहुंचाने में असमर्थ है। दिन रात मेरे पास रहती हुई भी सर्वथा पवित्र रह सकी है। इसमें कारण है। तुम वैलिंगडन क्लब के एक सदस्य की बीवी हो और कहीं जाने वाली सभ्य समाज की जीव हो। और वह प्रभु की कृपा के आश्रय।"

"तुमने उसको देखा तो है। तुमसे कम सुन्दर नहीं। उसके लिए मेरे मन में कम आदर नहीं। जानती हो क्यों? मेरे सैंकड़ों रुपए उसके पास पड़े रहते हैं। और एक पाई की भी चोरी नहीं होती।"

फकीरचन्द और उसकी बीवी बिना उत्तर दिए कोठी से निकल गए। रामसिंह को भी वहां से जाना पड़ा।

रामसिंह रात को बहुत देर से लौटा। सोहनी और उसकी मां दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। रामसिंह एक टांगे में बहुत से कपड़े खरीदकर लाया। उसने बहुत से भूषण भी खरीदे थे जो डिब्बों में बन्द कर वह लाया था। एक दर्जी अपनी सीने की मशीन, कैंची और फीता आदि लिए हुए साथ था।

टांगे में से सब सामान उतारकर वह घर में ले आया। उसको वहां रख उसने सोहनी की मां को कहा, "देखो, तुम्हारी लड़की के लिए कपड़े आए हैं, यह दर्जी साथ आया है। जिससे विवाह के पूर्व इसके दो सूट तो बन जाएं। यह दर्जी यहां बैठकर काम करेगा।

"लो भाई मजीरा! इस लड़की का नाप ले लो।"

दर्जी ने नाप लिया तो सोहनी रोटी लेने चली गई। सोहनी ने रामसिंह और दर्जी के लिए रोटी लगा दी। जब वे रोटी खा रहे थे तो रामसिंह ने कहा, "सोहनी! देखो तो, तुम्हारे लिए भूषण भी आए हैं। ज़रा देखो तो सही, पसन्द भी हैं या नहीं?"

सोहनी की मां, जो अभी तक वहां ही बैठी थी, भूषणों के डिब्बे खोल-खोलकर देखने लगी। पांच सैट, सोने की चूड़ियां और पांव की झांझरें तथा शृंगार का सामान था। मां ने सब डिब्बे खोल-खोलकर सामने रख दिए। मां-बेटी दोनों यह सब देखकर चकाचौंध रह गईं।

उनको अवाक् खड़े देखकर रामसिंह समझ गया कि उनको पसन्द हैं। उसने पूछा, "कैसे हैं सोहनी?"

"ये किसने भेजे हैं?"

"तुम्हारे होने वाले पति ने।"

सोहनी ने इस सबका रहस्य जानने के लिए रामसिंह की आंखों में देखा। उसका मन कहता था कि ये सब रामसिंह ही खरीदकर लाया है

ग्रौर वह ही उससे विवाह करने वाला है। इस पर भी वह यह निश्चय से जानना चाहती थी। इस कारण उसने रामसिंह के मुख की ग्रोर देखा था, परन्तु रामसिंह ग्रांखें नीची कर खाना खा रहा था।

सोहनी की मां ने पूछा, "कौन है वह, जो एक गरीब की लड़की को ठगने के लिए इतना कुछ व्यय कर रहा है ?" उसको भी रामसिंह के व्यवहार पर संदेह होने लगा था।

रामसिंह ने उसको ग्राश्वासन देने के लिए कह दिया, "ठगेगा नहीं सोहनी की मां ! कल ग्रन्थी ग्राएगा ग्रौर सबके सामने तुम्हारी लड़की का ग्रानन्द पढ़ाएगा। विधिवत् विवाह होगा ग्रौर विश्वास रखो कि वह तुम्हारी लड़की को बहुत प्रेम से ग्रौर सुखी रखेगा।"

मां ग्रौर बेटी, दोनों को संदेह हो रहा था कि रामसिंह स्वयं ही विवाह करेगा, परन्तु ग्रपने उस संदेह को मुख से कहने में डरती थीं। वे विचार करती थीं कि यदि उनका ग्रनुमान ग्रसत्य हुग्रा तो उनकी बहुत ही भद्द होगी।

रामसिंह ने भोजन समाप्त किया ग्रौर भूषणादि सब सामान भीतर ले जाकर तिजोरी में बन्द कर दिए। मां-बेटी दोनों को भोजन करने के लिए कह ग्रौर दर्जी को सीने के लिए कपड़े दे वह ऊपर की मंजिल पर सोने चला गया।

: ५ :

प्रात:काल रामसिंह उठा ग्रौर नीचे देखने ग्राया कि कितना काम हुग्रा है। उसको देख यह प्रसन्नता हुई कि दोनों सूट लगभग तैयार हैं। उसके साथ ही छोटे बड़े ग्रौर भी कई कपड़े काटकर रखे हुए हैं। दर्जी ग्रपनी मशीन के पास ही सो रहा था। सोहनी की मां भी ग्रभी सोकर ही उठी थी। सोहनी चाय बना रही थी।

रामसिंह ने स्नानादि से छुट्टी पाकर ग्रल्पाहार किया ग्रौर बाज़ार से मिठाइयां खरीदने चला गया। वह दोपहर को भोजन के समय लौटा तो ग्रपने साथ दो हलवाई तथा पूरी, साग ग्रादि बनाने का सामान भी ले ग्राया।

चार बजे ग्रन्थी ग्राया ग्रौर दरबार साहब लगाकर पाठ करने के लिए तैयार हो ग़या। मुहल्ले के लोग भी ग्राने लग गए थे ग्रौर नौकर ग्रादि उनको बैठाकर उनसे चाय-पानी की पूछने लग गए थे।

सोहनी की मां साफ-सुथरे कपड़े पहिनकर ग्राई तो रामसिंह ने कहा,

"सोहनी की मां ! सोहनी को भी तैयार कर दो।"

रामसिंह कपड़े पहिनकर नीचे उतरा तो सोहनी की मां ने आकर उससे कहा, "मालिक ! लड़का आ गया है क्या ?"

"हां मां !"

"कहां है ?"

"ढूंढ लो। जो सबसे अच्छे कपड़े पहिने दिखाई दे, वही तुम्हारा दामाद है।"

सोहनी की मां बाहर बैठे सभी लोगों को देखने लगी, जिससे वह देख सके कि कौन सबसे बढ़िया कपड़े पहिने हुए था। उस मुहल्ले के लोग प्रायः सभी निर्धन और सब बहुत ही साधारण कपड़े पहिने हुए थे। केवल रामसिंह ही था, जिसने बहुत बढ़िया अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहिना हुआ था। सिर पर उसने पगड़ी बांध रखी थी। उसके बराबर अच्छे कपड़े किसी के न थे। इस कारण जब सोहनी की मां को कोई भी ऐसा आदमी नहीं दिखाई दिया तो वह पुनः रामसिंह के पास आकर बोली, "मैं ढूंढ नहीं सकी, मालिक ! दिखा दो न कौन है वह ?"

"तो आओ, इधर।" यह कह वह भीतर चला गया। सोहनी की मां भी उसके पीछे-पीछे अन्दर आ गई। अन्दर सोहनी सजी-धजी बैठी थी। रामसिंह को आया देख उसने अपना मुख मोड़ लिया और लज्जावश दीवार की ओर मुख कर लिया।

रामसिंह वहां पहुंचा तो उसने सोहनी की मां से पूछा, "मां, सबसे अच्छे कपड़े किसने पहिने हैं ?"

"वह तो तुम हो मालिक !"

"तो फिर क्या हुआ ? क्या मैं तुम्हारा दामाद बनने योग्य नहीं हूं ?"

"तुम ? मेरी लड़की से विवाह करोगे ?" इतना कह मां वहीं दीवार का सहारा लेकर भूमि पर ही बैठ गई। उसका सिर घूमने लगा था। एक दो क्षण के लिए उसने आंखें मूंद लीं। फिर आंखें खोलकर रामसिंह को देखने लगी। उसकी आंखों में आंसू भर आए थे और होठों पर मुस्कराहट आ गई थी। उसके मुख से निकल गया, "तुम... तुम...बहुत अच्छे हो।"

रामसिंह ने नौकर को आवाज़ दी, जो बाहर आए हुओं को चाय-पानी पूछ रहा था। वह आया तो उसने कहा, "जाओ एक प्याला चाय मां के लिए ले आओ।"

"तो जल्दी करो।" रामसिंह ने कहा, "सोहनी को बाहर ले आओ।"

विवाह हो गया। मिठाई, हलवा-पूरी बांटी गई। मुहल्ले भर में खुशियां मनाई गईं। सब लोग आ-आकर बधाई देने लगे।

सब काम समाप्त होते-होते रात को एक बज गया। सब लोग विदा हो गए। घर में सोहनी, रामसिंह और सोहनी की मां ही रह गए। सोहनी की मां ने कहा, "तो अब मैं भी चलती हूं। अकेले घर में कुछ गड़बड़ भी हो सकती है।"

रामसिंह हंस पड़ा और कहने लगा, "देखो मां! पहिले तुम सोहनी की मां थीं, परन्तु अब तुम केवल मां हो क्योंकि आज से तुम मेरी भी मां बन गई हो। इस कारण मैं कहता हूं मां! अब तुम भी इस घर में रह जाओ। वह घर मेरी मां को शोभा नहीं देता। उसको छोड़ दो।"

सोहनी की मां ने कहा, "यह एक समस्या है। इस पर विचार करूंगी। परन्तु तुमने मुझे पहिले क्यों नहीं बताया? मैं अपने को इस परिस्थिति के लिए तैयार नहीं कर सकी थी।"

"तो मां! ऐसा करो। यह कमरा है। इसमें पलंग लगा है। इस पर आराम से लेटकर अपने मन को इस नई परिस्थिति के लिए तैयार कर लो। मैं अब तुमको इस घर से नहीं जाने दूंगा।"

"एक बात और है। मैं सोहनी को लेकर हरिद्वार जा रहा हूं। ज़रा इसको सैर कराना चाहता हूं। पीछे तुम यहां ही रहोगी।"

रामसिंह ने संक्षेप में अपनी जीवन कथा बताकर कहा, "मुझको मेरी स्त्री ने उल्लू बनाया हुआ था। मैं समझता था कि नगरों में लोग अधिक कमाते हैं और वे शीघ्र ही धनी हो जाते हैं।"

"मुझको यह भ्रम प्रतीत हुआ है। मेरा मत है कि ईमानदारी की कमाई से कोई धनी नहीं हो सकता। न गांव में न नगर में। यदि नगर में वेतन अधिक मिलता है तो यहां खर्चा भी अधिक होता है। हां, कमाई अधिक तब ही होती है, जब सरमाया पास हो और उस सरमाए को प्रयोग में लाने की योग्यता हो।"

सोहनी की मां रामसिंह की बात समझ रही थी। जब वह कह चुका तो उसने कहा, "तो अपना रुपया लेकर पुन: देहात में क्यों नहीं चले जाते?"

"यही मैं सोच रहा हूं। मैं कल सवेरे अपने पिता को पत्र लिखूंगा। उनसे क्षमायाचना करूंगा। यदि उन्होंने क्षमा कर दिया तो अपने गांव लौट जाऊंगा, और अपने पास जो कुछ है, उनके चरणों में रख दूंगा।"

"ठीक है मालिक! नगर सीधे-सादे आदमियों के लिए नहीं है।"

"देखो मां! अब तुम मुझको मालिक न कहा करो। अब तुम मुझको बेटा कह सकती हो।"

जब रामसिंह सोहनी को लेकर अपने कमरे में गया तो सोहनी ने एक ओर खड़े होकर कहा, "आप बहुत बड़े धोखेबाज प्रतीत होते हैं।" इतना कह सोहनी मुस्कराकर टेढ़ी दृष्टि से देखने लगी।

"क्यों ?" रामसिंह ने हंसते हुए कहा।

"यदि आप मुझको पहिले ही बता देते तो मैं कदाचित् न मानती। भला जिसके झूठे बर्तन मसले हों, उसकी पत्नी बनने में लज्जा नहीं लगेगी?"

रामसिंह ने हंसते हुए कहा, "तो अब क्या होगा ? अब तो तुमने गुरु महाराज के सामने वचन दिया है कि तुम मेरी निष्ठावान पत्नी बनकर रहोगी।"

"यही तो कठिनाई है। अपने संकोच को देखूं या अपने वचन को निभाऊं ?"

"मान लो अभी विवाह नहीं हुआ और मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम बहुत सुन्दर और भली लग रही हो। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं। अब बताओ क्या कहोगी ?"

"मैं आपसे पूछती कि आप कौन हैं ? कहां के रहने वाले हैं ? इस सूदखोरी के अतिरिक्त और क्या काम करते हैं ? आपके कोई मां, बाप, बहिन आदि हैं ?"

"अब तो मैं अपनी कहानी सुना चुका हूं। अब बताओ यदि यह कहानी विवाह से पूर्व तुमको पता होती, तो क्या कहतीं ?"

"कहती कि अपने घर वालों को बुलाओ, जिससे मैं अपनी सास-स्वसुर को देखूं। उनके आशीर्वाद लूं और उनकी सेवा कर उनकी स्नेह-पात्र बनूं।"

रामसिंह नहीं जानता था कि पत्नी के मन में ऐसे विचार भी उत्पन्न हो सकते हैं। उसको गुणवन्ती का अनुभव था, जो विवाह के पश्चात् पहिली रात ही को उसे अपने पिता, भाई, भाभियों को छोड़ने की कहने लगी थी। इस समय उसके मन में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि ये सब विचार कैसे इस छोटी सी कम पढ़ी-लिखी लड़की के मन में आ सके हैं। उसने सोहनी को अपने पास ही बैठकर पूछा, "किसने ये बातें बताई हैं तुमको ?"

"किसी ने नहीं। ये तो स्वाभाविक ही हैं। मैं अपनी मां को छोड़-कर आपके घर जा रही हूं। वहां पर भी तो कोई मां-बाप होने चाहिएं।

"जब मैं बच्ची थी तो मां मुझको सुलाते हुए लोरी दिया करती थी,

"सो जा बिटिया मेरी सोजा

मैं बलिहारी तुम पर वारी सदा स्नेह से रहो संवारी

मेरी सुन्दर बिटिया रानी को आए लेने इक राजा, सोजा बिटिया
मेरी सोजा

बिटिया मेरी भयी सियानी, पल पल में है उगे जवानी,
राजा आए उसे विवाहने, बीन बजे शहनाई, वाजा, सोजा बिटिया
मेरी सोजा।

सास स्वसुर को भी तुम भावो, ननद लड़े तुम उसे मनावो,
घर भर में तुम सदा सुहावो,
शुभ आशीश दें तुमको सारे, सेवा में तुम सबके खोजा, सोजा बिटिया
मेरी सोजा!!

"अच्छा बाबा! मैं हारा। अब आओ छोड़ो इस बात को। इस भूल को मैं शीघ्र ही सुधार लूंगा।"

: ६ :

दुर्गा को कंडेवाल आए हुए तीन मास हो चुके थे कि एक दिन मोहनसिंह बहुत से ट्रंक और बड़ा सा बिस्तर लिए गए वहां आ पहुंचा। वह रात के समय वहां पहुंचा था और जब उसने दरवाज़ा खटखटाया तो मीरा ने भीतर से पूछा, "कौन है?"

"मैं हूं मोहनसिंह।"

"मामा! मामा!!" इतना कहते हुए उसने दरवाज़ा खोल दिया। परन्तु वह विस्मय में खड़ी रह गई। यह तो उसका मामा मोहनसिंह प्रतीत नहीं होता था। एक आदमी कोट-पतलून, नेक्टईधारे, दाढ़ी-मूंछ सफा, वहां खड़ा था। द्वार खुला तो मीरा के हाथ में पकड़ी लैम्प का प्रकाश उसके मुख पर पड़ा था। मीरा ने पूछा, "तुम कौन हो?"

"और तुम कौन लड़की हो? मोहनसिंह ने मुस्कराते हुए पूछा, "तुम मीरा हो क्या? पर मीरा तो एक छोटी सी लड़की थी।"

इस समय तक मीरा ने उसे पहिचान लिया था। इस पर भी उसने चाचा को आवाज़ दी, "चाचा! चाचा!! देखो मामा आए हैं।"

सबसे पहिले सुन्दरसिंह आया और उसने मोहनसिंह को पहिचान कर कहा, "आओ मोहन? क्या बहुरूपियों का सा रूप बनाए हो?"

इस समय तक घर से सब प्राणी द्वार पर ही आ गए थे। सुन्दरसिंह मोहन को अपने कमरे में ले गया और उसको बैठाकर पूछने लगा, "कहां रहे हो इतने महीने?"

"चाचा! यह तो कल सुबह सुनाऊंगा। पच्चीस हजार मील की

यात्रा कर आ रहा हूं।',

"अच्छा जाओ। वह देखो केवली कितनी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। जाओ महिन्दर! अपने भाई को भोजन कराओ।"

मोहन दुर्गा को वहां देख विस्मय में खड़ा रह गया। "दुर्गा! तुम? तुम यहां कैसे आई हो?"

"बस आपको ढूंढती-ढूंढती यहां आ पहुंची हूं। तीन मास से आपकी प्रतीक्षा कर रही हूं। अब आप थके हुए हैं। यह बात तो कल भी हो जाएगी।"

अगले दिन स्कूल में छुट्टी रही। किसी को भी स्कूल में जाने का अवकाश नहीं था। मोहनसिंह आया था और सब छोटे बड़े प्रसन्नता से उसके चारों ओर चक्कर काट रहे थे।

प्रातः के अल्पाहार के पश्चात् मोहन ने अपनी कथा बता दी। उसने कहा, "मैं कोचीन से चला तो विचार आया कि बम्बई देखता चलूं। बम्बई पहुंचा और सारा शहर घूम चुका तो जहाज़ देखने जा पहुंचा। मैं बम्बई की गोदियों पर जहाज़ और उनमें से माल उतरना देख रहा था कि मेरे कद और बलवान शरीर को देखकर एक आदमी मेरे पास आया और कहने लगा, "सरदार नौकरी करोगे?"

"कैसी नौकरी?"

"जहाज पर।"

"किस काम पर?"

"जहाज़ में पचास मज़दूर हैं। उन पर जमादारी। दस रुपए नित्य वेतन और खाना तथा साथ ही दुनिया भर के बड़े-बड़े नगरों की सैर।"

"मेरे मुख में पानी भर आया। मैंने सोचा कि चलो दुनिया भर की सैर तो हो जाएगी। साथ ही दुनिया के नगरों की लालसा तीव्र हो उठी। मैंने नौकरी स्वीकार कर ली। वह आदमी मुझे जहाज के कप्तान के पास ले गया। वह जहाज़ अमरीका के एक सौदागर का था। उनके जहाज़ का जमादार बीमार पड़ जाने के कारण वहीं ठहर गया था और जहाज़ उसी दिन वापिस जाने वाला था। उसके स्थान वे मुझे मेरी कदों कदामत देखकर रखना चाहते थे। ऐसा हुआ कि जब क्रेन से माल लद रहा था, मैं वहीं खड़ा था। जहाज के कप्तान ने मुझे देखकर मुझे बुला भेजा था। जहाज़ पर पचास हिन्दुस्तानी कुली नौकर थे और मुझको एक बलवान तथा मज़बूत आदमी देख उनका जमादार बनाने के विचार से नौकर रखना चाहते थे।

"मैं नौकर हो गया। चाचा ! बम्बई से कैंयरो, कैंयरो से नेपल्ज़, वहां से रोम, फिर मारसेल्ज़। मारसेल्ज़ से बैंनकोवर, लन्दन, लिवरपूल, न्यूयार्क। वहां से अमरीका के किनारे-किनारे पनामा पार कर हवाई द्वीप और वहां से जापान, टोकियो, पीकिंग, हौंगकौंग और घूमते हुए सिंगापुर तथा कलकत्ता, मद्रास और कोलम्बो और फिर बम्बई। इस प्रकार पूरी दुनिया का चक्कर लगा आया हूं।"

"मुझको तीन सौ नव्वे दिन लगे हैं और उसका तीन हज़ार नौ सौ रुपया वेतन मिला है। उसमें से दो हज़ार का सामान ले आया हूं। शेष रुपया मेरे पास है।"

"और यह बाल कहां से कटवाए हैं ?"

"चाचा ! उस जहाज़ पर मैं अकेला ही सिख था और मुझको केस भले नहीं लगे। मैंने कटवा दिए। दाढ़ी-मूंछ भी सफा करवा दी। अब तुम कहोगे तो फिर रख लूंगा।"

"मैं तुमको क्यों कहूंगा।"

"बचपन में जो रखवा दिये थे।

"वह बात दूसरी थी। मेरे मन में केशों के लिए कोई मोह नहीं था। मैं तो गुरु महाराज का भक्त हूं। इस भक्ति के स।थ केशों का कोई सम्बंध है, मैं नहीं जानता। तुम बचपन में वालों में बहुत सुन्दर मालूम होते थे। सो मैंने रखवा दिए। अब तुम बड़े हो गए हो, जो मन में आवे करो।"

एक दिन दुर्गा ने अपनी समस्या मोहनसिंह के सम्मुख रख दी। मोहन स्कूल देखने जा रहा था। दुर्गा भी साथ हो ली। मार्ग में उसने कहा, "मालिक ! तुम्हारी बीवी तो बहुत सुन्दर है। भला तुम उसको छोड़कर कैंसे जा सके ?"

"मैं बीवी से लड़कर नहीं गया था। हमारे घर में नगर की पत्नी एक लड़की का विवाह हो गया था। मेरे छोटे भाई रामसिंह की बीवी जब हमारे घर में आई थी तो नगरों का गुणगान करने लगी थी। वह मेरे भाई को वरगला कर नगर में ले गई। उसको नगर में गया देख मेरे मन में भी किसी नगर में जाकर अपने भाग्य की परीक्षा करने का विचार प्रबल हो उठा। मैं बिना किसी को बताए, घर से निकल दिल्ली जा पहुंचा। वहां रंगा बाबू से भेंट हो गई। वास्तव में उन्होंने मुझे बचा लिया। यहां आकर देखता हूं कि हमारे चाचा और मास्टर ने तो गांव को भी नगर सा बना दिया है। यह हमारे घर में अब नल लग गया। मास्टर बिजली का भी प्रबन्ध करने वाले हैं। चाचा ने मकान में भी परिवर्तन कर दिया है, जिससे वह नगर के हवादार मकान की भांति साध-सुथरा हो गया

है। मज़ेदार बात यह है कि गांव में सड़कें बनगई हैं। नालियां और घर-घर में टट्टियां बनाई जा रही हैं। अब तो फर्नीचर भी बन गया है, जिससे प्रत्येक प्रकार का सुख-आराम मिलने लगा है।"

इस समय दुर्गा ने अपने विषय में कह दिया, "जब आप कोचीन से चले आए तो मेरे विवाहकी चर्चा होनेलगी। रंगा बाबू ने कई स्थानों पर मेरे विवाह की चर्चा की, परन्तु कुछ काम जमा नहीं। मैंने किसी को भी पसन्द नहीं किया। इससे रंगा बाबू मुझसे नाराज़ रहने लगे। मैंने उनको एक दिन स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं विवाह करूंगी तो आपसे ही करूंगी। किसी अन्य से नहीं करूंगी।"

इस पर उन्होंने कहा, "तो जाओ कर लो।"

"रंगा बाबू के खेतों की आय बहुत कम हो गई। सुब्बाराव उनका प्रबन्ध करता है। पैदावार कम हुई है। पत्ती समय पर सुखाई नहीं जा सकी। गरम हवा की मशीन ठीक समय पर बिगड़ गई, जिससे बहुत सी पत्ती जल गई। माल कम्पनी में गया तो वहां उसका मूल्य बहुत कम लगा। परिणाम यह हुआ कि लाभ पहिले से बहुत कम हुआ और रंगा बाबू आपको स्मरण किया करते हैं। उनका विचार था कि यदि मैं तुमसे विवाह कर लू तो तुम अवश्य विल्योर चले चलोगे। और फिर रंगा बाबू के खेत अच्छी उपज देने लगेंगे।"

"मैं यहां आई तो आप नहीं पहुंचे थे। इस पर भी आपके घर वालों ने मेरे साथ अच्छा और बहुत ही सहानुभूति का व्यवहार किया है। चाचा तो मुझको अपनी लड़की के ही समान समझते हैं।

"यह मास्टर जी मुझको पढ़ाने लगे हैं। उनका कहना है कि मैं छः मास में ही स्कूल में पढ़ाने का काम कर सकूंगी। तब मैं यहां रहकर किसी पर बोझा नहीं बनूंगी।"

"पर तुम बोझा हो क्या ?"

"यह मैं नहीं बता सकती। न मुझको आज तक किसी ने कहा है। जब मैं यहां आई थी तो मैं समझती थी कि आपसे विवाह करने में सफल हो जाऊंगी। 'विल्योर' में मुझको कभी-कभी कुछऐसा प्रतीत होनेलगता था कि आप मुझको विवाह के लिए कहेंगे। इससे मैं यहां इसी आशा से आई थी, परन्तु आपकी पत्नी को देख मेरे मन में इस बात की न तो आशा रही है और न ही अच्छा।

"अब इच्छा भी नहीं है ?"

"जी नहीं। केवली बहिन की सहृदयता देखकर तो उसकी सम्पत्ति पर डाका डालना भला नहीं लग रहा।"

"तो तुमने उससे बात की है ?"

इस समय वे स्कूल के समीप पहुंच गए थे। मोहनसिंह ने स्कूल जाने के स्थान अपने पग नदी के तट की ओर घुमा दिए। अब वे नदी के किनारे-किनारे टहलने लगे। दुर्गा कह रही थी, "केवली बहिन से मैंने तो कुछ नहीं कहा, परन्तु उन्होंने स्वयं ही एक दिन इस विषय पर चर्चा की थी। उन्होंने कहा, "दुर्गा ! तुम्हारा उनसे कैसा सम्बन्ध रहा है ?"

"मैंने सत्य-सत्य बता दिया। इस पर वे बोलीं, "विश्वास नहीं आता। एक पुरुष तुम्हारे जैसी चंचल स्त्री के पास रहता हुआ कैसे बचकर रह सकता है ?"

"मैंने कहा कि वे आपका मूल्य नहीं जानतीं। तभी ऐसा कहती हैं। मैंने अपने मन की बात सरल भाव में बता दी और कहा, "केवली बहिन ! कौन स्त्री है, जो ऐसे व्यक्ति से प्रेम किए बिना रह सकती है। परन्तु वे देवता हैं।"

"इस पर उनको विश्वास आया कि नहीं कह नहीं सकती। इतना तो मैं समझ गई कि वे आपसे अगाध प्रेम करती हैं। इस कारण उस प्रेम में किसी प्रकार की बाधा बनना, तो घोर पाप हो जाएगा।"

"एक बात और देखी है, इस घर में। आपकी बहिन महिन्दर मास्टर जी से प्रेम करती हैं परन्तु एक ही छत के नीचे रहते हुए वे एक दूसरे से सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं। उनको देखकर तो मैं विचार करती हूं कि भला मैं ऐसे क्यों नहीं रह सकती ?"

" तो हमारे गांव में एक भारी समस्या बन जाओगी।"

"तो फिर यहां से निकाल दी जाऊंगी।"

"तो कहां जाओगी ?"

"यह अभी कैसे कह सकती हूं। अभी तो चाचा ने आश्वासन दिया हुआ है कि अगर नेक बनकर रहूंगी तो यहां रह सकूंगी।"

स्कूल के समीप सुन्दरसिंह एक खुला सा मकान बनवा रहा था और वह सारा दिन मकान की देख-रेख करने वहां आकर बैठा रहता था। उसने मोहनसिंह और दुर्गा को नदी के किनारे टहलते और बातें करते देख बुला लिया। दोनों जब समीप पहुंचे तो उसने पूछा, "बहुत देर से बातें हो रही हैं। क्या विचार कर रहे हो ?"

मोहनसिंह ने कहा, "चाचा ! इसके भविष्य के विषय में विचारकर रहा हूं।"

"रंगा बाबू की चिट्ठी आई है। चिट्ठी अंग्रेजी में है और मैंने मास्टर जी को दे दी है। जाओ उनसे पता कर लो कि क्या लिखा है।"

मोहनसिंह ने दुर्गा के विषय में बात कर दी। उसने कहा, "चाचा! यह कहती है कि महिन्दर की भांति इसको भी इस घर में रहने दिया जाए तो जीवन भर यह यहीं रहेगी।"

"मोहन! मैंने तो इसको कह दिया कि नेक औरतों की भांति यहां रहेगी तो यहां रह सकती है।"

दुर्गा और मोहन स्कूल में मास्टर जी से मिलने चले गए। मास्टर ने चिट्ठी पढ़कर सुना दी। रंगा बाबू ने पूछा था कि मोहन का कुछ पता मिला है या नहीं। उस चिट्ठी में दुर्गा के विषय में एक अक्षर तक नहीं था।

मोहनसिंह ने मास्टर जी से कह दिया, "आप रंगा बाबू को मेरे यहां पहुंचने के विषय में लिख दीजिए।"

"सो तो लिखने ही वाला हूं।"

: ७ :

मोहनसिंह की बड़ी इच्छा थी कि रामसिंह से मिलने अमृतसर जाए, परन्तु गुणवन्ती का घर वालों के साथ व्यवहार सुन, उसका साहस नहीं होता था कि अपने जाने की बात किसी से कहे। इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गए। एक दिन चौधरी मध्याह्न के समय घर आया तो उसके हाथ में एक पत्र था। पत्र गुरुमुखी में था। चौधरी का मुख गम्भीर था। मोहनसिंह खेतों में से पहिले ही लौट आया था और स्नानादि से निवृत्त हो भोजन करने ही बैठा था। सुन्दरसिंह ने आते ही कहा, "मोहन! लो एक और समस्या आ उपस्थित हुई है।"

"क्या बात है चाचा?"

"यह चिट्ठी पढ़ लो।"

मोहनसिंह चिट्ठी पढ़ने लगा। इस समय सोहन भी वहां आ पहुंचा। इस कारण मोहन ने चिट्ठी ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर सुना दी। लिखा था,

"पूज्य चाचा जी! आज तीन वर्ष से ऊपर हो चुके हैं कि गुणवन्ती से पृथक् एक मकान में रहता हूं। मेरा उससे किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं है। इसका दोष मैं उसको क्या दूं। वास्तव में दोषी तो मैं ही हूं। जो आपकी सीख न मानकर उसके पीछे-पीछे उसका दास बनकर यहां आया था। तब से बहुत सी घटनाएं हो चुकी हैं, जिनके विषय में तो आपके चरणों में ही बैठकर कहूंगा। इस समय तो इतना ही निवेदन करना चाहता हूं कि मैं पुनः गांव में आना चाहता हूं। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक आप मेरे अपराधों को क्षमा न कर दें। कठिनाई यह है कि कल

मैंने एक विधवा की सरल स्वभाव वाली लड़की से विवाह कर लिया है और वह मुझको आपसे क्षमा मांगकर आपके पास वापिस चले आने के लिए आग्रह कर रही है। यूं तो यहां पर भी एक पत्नी के आग्रह पर आया था। अब गंगा उल्टी बहने लगी है। एक दूसरी पत्नी मिली है और मुझे कहती है कि वापिस गांव चला चलूं।

"सो चाचा! यदि तुम मानो तो घर वापिस चला आऊं। एक बार फिर लाठी लिए हुए खेतों की मेंढ़ पर घूमने को चित्त करने लगा है।"

रामसिंह का पत्र परिवार में चर्चा और विचार का विषय बन गया। उसी रात चौधरी, महिन्दर और सोहनलाल, मोहनसिंह, केवली, परमेश्वरी तथा मास्टर इस विचार-बिनिमय में सम्मिलित हो गए। अब तो मीरा भी परिवार की गोष्ठियों में बैठा करती थी। वह चौदह वर्ष की हो चुकी थी।

रामसिंह का पत्र कई बार पढ़ा गया। सब इस बात पर सहमत थे कि रामसिंह को तुरन्त लौट आना चाहिए। विचारणीय बात यह थी कि यह नई बहू कैसी होगी और गुणवन्ती का घर से क्या सम्बन्ध रहेगा।

मास्टर ने परिस्थिति को समझकर बात का विश्लेषण कर दिया। उसने कहा, "चाचा! गुणवन्ती का विषय आज विचारणीय नहीं है। वह अभी रामसिंह के साथ नहीं आ रही। जब आना चाहेगी तो विचार कर लिया जाएगा।"

इस पर गुणवन्ती के विषय में विचार करना छोड़ दिया गया। मास्टर ने नई बहू के विषय में कह दिया, "हम तो उसके विषय में कुछ जानते नहीं। इस कारण अच्छी अथवा बुरी, जैसी भी वह है, उसको आने ही दीजिए। यदि उसको यहां का वातावरण अनुकूल नहीं बैठा तो अपने आप भाग जाएगी।"

चौधरी ने अपने मन का संशय कह दिया, "मैं समझता हूं कि नई बहू एक विधवा की लड़की होने से अवश्य ही सुशील होगी। यह आएगी और अपने को यहां के अनुकूल कर लेगी। कठिनाई यह है कि वह यहां आकर रहने लगी तो गुणवन्ती भी आ सकती है और फिर वह बेचारी नई बहू को तंग करने लगेगी।"

इस पर केवली ने राय दे दी, "नहीं चाचा! वह नहीं आएगी और यदि ईर्ष्यावश आ भी गई तो हम सब उसको यहां रहने नहीं देंगे।"

सुन्दरसिंह हंस पड़ा और हंसते हुए बोला, "केवली! वह तुम्हारी पत्नी नहीं होगी, जो तुम्हारे कहने से निकल जाएगी।"

इस पर सब हंस पड़े। मास्टर ने कहा, "चाचा! यह परिस्थिति

जब आएगी, विचार कर लेंगे। 'किवल अर्ज मर्ज़ वावेला' की कहावत वाली वात हो रही है। अव तो यह विचार करना चाहिए कि राम की इस नई बहू को लेने जाना है अथवा लिख देना काफी है कि वह यहां आ सकता है।"

समस्या के इस रूप पर सब चाचा का मुख देखने लगे। इस समस्या का सुझाव मीरा ने दे दिया, "चाचा! मैं तो अपनी नई मामी को लेने अमृतसर जाऊंगी।"

मोहनसिंह ने कहा, "मैं भी कई दिनों से विचार कर रहा था कि अमृतसर घूम आऊं। सो चाचा! यदि तुम कहो तो रामसिंह और उसकी बहू को लेता आऊंगा।"

इस पर केवली ने कहा, "मैं भी तो चलूंगी। बहू को लिवाने के लिए एक स्त्री भी तो साथ चलनी चाहिए।"

इस प्रकार एक-एक कर सिवाए मास्टर और चौधरी के सारा परिवार चलने को तैयार हो गया।

चौधरी का यह निर्णय हो गया कि मोहनसिंह, सोहनलाल, महिन्दर, केवली और मीरा जा सकती है। गांव में मास्टर, वह स्वयं और दुर्गा रहेगी।

अमृतसर वे पहुंच एक धर्मशाला में टिक गए और नहा-धोकर रामसिंह के लिखे पते पर जा पहुंचे। उस मकान का दरवाज़ा खटखटाया गया तो एक बुढ़िया ने दरवाज़ा खोला। वह इन सबको खड़े देख पूछने लगी, "किसको चाहते हैं?"

"मोहनसिंह से मिलने आए हैं।"

"वह तो हरिद्वार गया हुआ है।"

"उसका वहां का क्या पता है?"

"उसका पत्र तो आया है, परन्तु वहां का पता नहीं लिखा। आप कंडेवाल से आए हैं क्या?"

सोहनलाल का विचार था कि रामसिंह का घर भी देख ले। इससे वह अनुमान लगाना चाहता था कि वह कितना सुखी और खुशहाल है। उसने पूछा, "क्या हम भीतर नहीं आ सकते?"

"गोली किसकी और गहने किसके? आइए भीतर आ जाइए।"

यह वृद्धा सोहनी की मां थी। उसने सबको भीतर ले जाकर बैठाया और कहने लगी, "एक सप्ताह हुआ कि उनका मेरी लड़की से विवाह हुआ है। विवाह के अगले दिन उन्होंने अपने पिता को एक पत्र लिखा था। इस कारण मैं आशा करती थी कि आपके यहां से कोई न कोई

अवश्य आएगा। आपने तो आशा से भी अधिक कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ण घर भर के दर्शन कर रही हूं।"

"आप भोजन करेंगे क्या ?"

"नहीं मां ! हम खा आए हैं।" महिन्दर ने कहा।

"वीबी ! तुम राम की वहिन प्रतीत होती हो। क्या मैं गलत समझी हूं ?"

सब हंस पड़े। महिन्दर ने हंसते हुए कहा, "आपने ठीक जाना है। राम भैया से मेरी सूरत मिलती है।"

"उनके पिता नहीं आए क्या ?"

"घर पर भी तो किसी ने रहना था। साथ ही वे वृद्ध हो गए हैं। उनको कष्ट देना ठीक नहीं समझा गया।"

सोहनी की मां ने दीवार के साथ लगी घड़ी देखकर कहा, "इस समय दो बज रहे हैं। आप चाय-पानी किस समय लेते हैं?"

इस पर मीरा ने कह दिया, "मामी तो यहां हैं नहीं। चाय कैसे पी सकते हैं ?"

"क्यों बेटी ! यह घर तो तुम्हारे मामा का है और मैं उनकी नौकरी में हूं। उन्होंने इसी काम के लिए मेरे पास रुपया दे रखा है।"

"किस काम के लिए रुपया दे रखा है ?" सोहनलाल ने पूछा।

"कोई मेहमान आ जाए तो उसके चाय-पानी के लिए"

"तो और भी मेहमान यहां आया करते हैं ?"

"कल एक औरत आई थी। कहती थी कि वह उनकी पत्नी है। मैंने उनको चाय-पानी पूछा तो पूछने लगी कि मैं कौन हूं? मैंने केवल यह कहा कि मैं उनकी नौकरानी हूं।" इसपर बैठकर मज़े में चाय पी गई।"

"कैसी थी वह ?"

"गोरे-गोरे रंग की। नाक तीखा और लम्बा, आंखें बहुत ही सुन्दर और बाल काले तथा घुंघराले थे। लम्बे और छरहरे शरीर की थी।"

"अवश्य गुणवन्ती होगी।" परमेश्वरी ने कहा, "उसने कुछ कहा था ?"

"यही कहती थी कि सुना है कि उसके पति ने नौकरानी को अपने घर में डाल लिया है। वह यदि नौकरानी से सम्बन्ध रखेगा तो वह खर्च के लिए दावा कर देगी। मैंने उसको कहा कि उसकी नौकरानी तो मैं हूं। वह मुझको घर में क्या डालेगा। मैं तो उसकी मां के बराबर हूं।"

"वह चाय समाप्त कर चली गई। कहती थी कि फिर आएगी।"

"देखो मां !" महिन्दर ने कहा, "उस औरत का घर में मत आने

देना। दरवाज़ा ही न खोलना। वह पागल है और घर का सामान तोड़-फोड़ सकती है।"

"अब नहीं आने दूंगी।"

: ८ :

अगले दिन वे सब हरिद्वार जा पहुंचे। एक धर्मशाला में सामान रख रामसिंह को ढूंढने निकल पड़े। वे हर की पैड़ी पर स्नान करने पहुंचे तो रामसिंह को सामने चबूतरे पर पलथी मारे बैठे देख लिया। उसके पास ही एक नवविवाहिता स्त्री भी बैठी थी जो हाथ में एक माला पकड़े फेर रही थी।

सबसे पहिले महिन्दर ने ही रामसिंह को पहचाना। उसने केवली की बांह को पकड़कर उंगली से संकेत कर कहा, "वह देखो भाभी! भैया नहीं हैं क्या ?"

सबने देख लिया और एक क्षण तक उसको इस रूप में बैठे देख उसकी ओर चल पड़े। वे सब सामने वाले चबूतरे पर जा रामसिंह के सामने जा खड़े हुए। रामसिंह आंखें मूंदे सूर्याभिमुख बैठा था। सोहनी हाथ में माला लिए जप कर रही थी परन्तु आंखें खोले हुए थी। वह सबको सामने आ खड़े और मुस्कराते देख संदेह करने लगी कि ये लोग उसके पति को पहिचान गए हैं। हो न हो ये उसके घर वाले हैं। इस पर भी वह विस्मय कर रही थी कि वे हरिद्वार कैसे आ पहुंचे हैं।

मोहनसिंह की हंसी निकल गई। इस पर अन्य सब भी हंसने लगे। हंसने की आवाज़ सुनकर रामसिंह की आंखें खुल गईं। वह अपने भाई तथा भाभियों को देख एक क्षण तो विस्मय में उनकी ओर देखता रहा और फिर लपककर उठकर खड़ा हो गया तथा सोहन तथा मोहन से गले मिलने लगा।

इसी से सोहनी समझ गई कि वे कौन हैं। वह भी अपनी माला समेट उठ खड़ी हुई। जब सब मिल चुके तो बैठ गए। रामसिंह ने कहा, "मैं यह तो आशा करता था कि आप मुझको मिलने आवेंगे परन्तु भाभियां भी आएंगी, महिन्दर तथा मीरा भी आएंगी, और फिर सब हरिद्वार पहुंच जाएंगे, विचार नहीं कर सका था।

"अब बताओ चाचा कसे हैं ?"

"ठीक हैं। अभी तक सख्त से सख्त भोजन कर सकते हैं। वे अभी भी खेतों में जाते हैं और काम देखते हैं।"

"ग्रौर गांव की क्या हालत है ?"

"ऐसी है कि वर्णन नहीं की जा सकती।"

"ग्रौर मोहन भापा ! तुम कहां गए थे ?"

"दुनिया की सैर करने।"

"ग्रढ़ाई हज़ार रुपये से ?"

"खर्च तो इससे भी कम हुग्रा है।"

"ग्राप कितने दिन के लिए यहां ग्राए हैं ?"

"बस तुमको ढूंढने ग्रौर घर ले चलने के लिए।"

"मैं तो ग्रभी चलने के लिए तैयार हूं।"

"तो भक्ति का ज्वर उतर गया है क्या ?"

"इस भक्तिनी ने वह ज्वर चढ़ा दिया है। यह ग्रब चढ़ा ही रहेगा।"

"तो इस भक्तिनी को भी ले चलेंगे जिससे यह ज्वर चढ़ा ही रहे।"

"यह तो चलेगी ही।"

सब स्नानादि से निवृत्त हो बाज़ार से पूरी तथा मिठाई लेकर तथा खाकर धर्मशाला की ग्रोर लौट ग्राए। रामसिंह एक दूसरी धर्मशाला में ठहरा हुग्रा था। वह ग्रपना सामान उठा लाया ग्रौर सब इकट्ठे हो गए। यह निश्चय हुग्रा कि दो दिन तक हरिद्वार ठहरकर सब ग्रमृतसर ग्रौर वहां से कंडेवाल चलेंगे।

केवली ने हंसी-हंसी में ग्रपने पति मोहनसिंह से कहा' "ग्रापसे तो रामसिंह ही ग्रच्छा रहा। ग्राप तो घूमघाम कर खाली हाथ ही चले ग्राए। रामसिंह की भांति एक नया विवाह रच लेते तो मानती।"

"दो-दो बीवियां सबके भाग्य में नहीं लिखी होतीं, केवली !"

"यही तो कह रही हूं। ग्रापके पीछे-पीछे भी एक चली ग्राई है। ग्राप उसकी ग्रोर देखते ही नहीं तो क्या किया जाए ?"

"पर वह तो कहती है कि केवली की सूरत देखकर उस पर दया ग्राती है ग्रौर उस पर सौंकन पड़ना ग्रच्छा नहीं जान पड़ता। कहीं तुम भी गुणवन्ती हो जातीं तो निश्चय वह मुझसे विवाह कर लेती।"

"मुझे बहुत दुःख है कि मैं गुणवन्ती नहीं हूं।"

"तब तो दुर्गा मुझसे विवाह नहीं करेगी।" इस पर दोनों हंसने लगे।

जब वह हरिद्वार से लौटे तो परिवार में एक नए प्राणी के ग्राने पर चर्चा चलने लगी। यात्रा में ग्रौर घर पर सब सोहनी के रहन-सहन ग्रौर व्यवहार का निरीक्षण करते रहे थे। सब इस विषय में यही मत रखते थे कि सोहनी के परिवार में ग्राने से किसी प्रकार की ग्रव्यस्था नहीं हो रही।

वह सवेरे से लेकर शाम तक चुपचाप अपने काम में व्यस्त रहती । यह ठीक था कि वह एक ज़मीदार के घर के काम-काजों से भलीभांति परिचित नहीं थी, इस पर भी वह प्रत्येक काम को, जो उसकोकरने को दिया जाता था, करने में लग जाती थी ।

सोहनी को कंडेवाल में आए एक मास हो चुका था । इस बीच में रामसिंह कई वार अमृतसर जा चुकाथा। वह प्राय:प्रात:कालकीगाड़ी से जाता और अगले दिन मध्यान्ह के समय वापिस लौट आता । इस बीच में सोहनी घर पर ही रहती थी । रामसिंह जब आता तो वह अपनी मां के विषय में पूछा करती और वह कहता कि वह मज़े में हैं ।

इस वार आया तो सोहनी के अपनी मां के विषय में पूछने पर रामसिंह ने कहा, "तुम्हाराअपनीमां से मिलने को जीनहीं करता क्या ?"

"क्यों ? क्या मां ने पूछा है ?"

"नहीं । मैं तो वैसे ही कह रहा हूं । सब लड़कियों का मां से मिलने को चित्त करता है ।"

"यदि मां का चित्त मिलने को करे तो उसे किसी दिन यहां ले आइएगा ।"

"तो तुम नहीं मिलना चाहतीं ?"

"जब तक मां बुलाए नहीं, मैं उसके घर कैसे जा सकती हूं"

"ओह ! तो उसको कहूंगा ।"

एकाएक सुन्दरसिंह ने प्रस्ताव रख दिया कि अब मीरा का विवाह हो जाना चाहिए ।

इस पर घर की पंचायत बैठ गई । महिन्दर का कहनाथा, "चाचा! अभी तो वह पन्द्रह वर्ष की भी नहीं हुई ।"

"ठीक है महिन्दर ! पर मेरा विचार है कि अब उसका विवाह हो जाना चाहिए ।"

सब चाचा का मुख देखते रह गए । सुन्दरसिंह ने सबको अपनी ओर देखते पा कहा, "जब से रामसिंह सोहनी को लेकर आया है, मेरे मन में एक विचार उठ रहा है कि महिन्दर को मेरी स्वीकृति की प्रतीक्षा करते हुए देर हो गई है । मैने उसके लिए स्कूल के समीप मकान बनवाया है । मकान पूरा हो गया है और जिनके लिए वह बना है, उनको उसमें जाकर रहना चाहिए । क्यों महिन्दर ! क्या विचार है ?"

महिन्दर की आंखों में आंसू भर आए थे । जब सब उसके उत्तर की प्रतीक्षा में उसका मुख देखने लगेतो उसने कहनेका यत्न किया, चाचा ! ......।" इसके आगे वह कुछ कह नहीं सकी । उसका गला रुंध गया

था। जब वह कुछ कह नहीं सकी तो वह उठकर भीतर चली गई।

उसके चले जाने पर मोहनसिंह ने कह दिया, "चाचा! तो कर दो न उसका विवाह। देख क्या रहे हो?"

"वही तो विचार कर रहा हूं। इस पर भी मेरा विचार है कि पहिले मीरा का विवाह होना चाहिए। उसके लिए मैंने एक लड़का सोचा है। यदि तुम सब उसको स्वीकार करो तो एक सप्ताह के भीतर ही उसका विवाह कर दूंगा।

"मैंने मास्टर चुन्नीलाल को उसके लिए चुना है। लड़का दसवीं श्रेणी तक पढ़ा है और घर के खाने-पीने वाले हैं।"

बात तय हो गई। चुन्नीलाल के पिता से जब बात हुई तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। परिणामस्वरूप विवाह की तैयारियां होने लगीं। मीरा के लिए आभूषण, कपड़े आदि तैयार किए जाने लगे। सुन्दरसिंह के घर हलवाई लग गए और मिठाई आदि बनने लगीं।

समीप और दूर के सब सम्बन्धी आमन्त्रित थे। प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि गुणवन्ती को आमंत्रित किया जाए अथवा नहीं। चौधरी का कहना था कि रामसिंह को भी बुलाया जाना चाहिए। परिवार के लोगों ने पहले तो आपत्ति की परन्तु चौधरी के समझाने पर सब मान गए और दोनों को गुरुमुखी में पत्र लिखकर भेज दिया गया।

: ९ :

यह गुणवन्ती थी, जो रामसिंह की अनुपस्थिति में सोहनी की मां से चाय पी गई थी।

एक दिन फकीरचन्द को भगीरथ से कुछ काम था। जब वह अपना काम कर चुका तो रामसिंह की चर्चा होने लगी। रामसिंह ने गुणवन्ती की ओर उससे रामसिंह की नौकरानी की बात चल पड़ी। यह बात फकीरचन्द ने ही कही थी कि रामसिंह ने अपनी नौकरानी को घर में डाल लिया है। भगीरथ ने यह समाचार गुणवन्ती को बताया तो उसको बहुत दुःख हुआ।

जब रामसिंह जेल से छूटने के पश्चात् उससे मिलने आया था, तो गुणवन्ती ने उसको डांट बताई थी। उसका विचार था कि वह निकम्मा आदमी है और अन्त में उसके पास आएगा ही और उससे अपने पिछले कर्मों के लिए क्षमा मांगेगा। तब वह उसको अपने पास रख लेगी और यदि वह चाहेगा तो कभी-कभी उसके गांव भी हो आया करेगी। परन्तु

रामसिंह उससे क्षमा मांगने नहीं आया। रामसिंह अपनी मुसीवत का कारण उसको ही मानता था, इसकारण उसका उसके पास दुबारा जाने में कोई कारण नहीं था। इससे दोनों में वैमनस्य बढ़ गया।

शामसिंह जब अपनी नौकरी से रिटायर हुआ था तो वह गुणवन्ती के साथ उनके कारोवार में पत्तीदार वन गया। शामसिंह ने अपनी पत्नी का पचास हजार इस कारोबार में डाला था।

वैसे तो शामसिंह पहिले भी ठेकेदारी में रुचि लिया करता था, परन्तु अब जब वह पत्तीदार वन गया तो इसमें सक्रिय भाग लेने लगा। भगीरथ ने इसमें अपना लाभ ही समझा था। और उसने शामसिंह के हाथ कम्पनी का हिसाव-किताव सौंप दिया। साथ ही शामसिंह वैंक में एकाऊंट ओपरेट करने लगा।

शामसिंह जब नौकरी करता था तो थोड़ा-वहुत सोने का सट्टा किया करता था। नौकरी के काल में उसको इसमें लाभ ही हुआ था। अब जब उसके हाथ में ठेकेदारी आ गई और वह लाखों का हिसाव-किताव चलाने लगा तो उसकी यह लत और भी उग्र हो गई। एक समय ऐसा आया कि उसने अपनी सारी सम्पत्ति और साथ ही ठेकेदारी का वहुत सा रुपया सट्टे में लगा दिया। उसके दुर्भाग्य से इसमें उसको वहुत अधिक घाटा हुआ। उसने परिस्थिति को बिगड़ने से रोकना चाहा परन्तु यह छुपी नहीं रह सकी। जब सारा रहस्य खुला तो भगीरथ लाल-पीला होने लगा। उसने शामसिंह को कह दिया कि वह उसको 'अमानत में ख्यानत' में पकड़वा देगा। उसने पुलिस में रिपोर्ट करने के लिए टेलिफून उठाई तो गुणवन्ती ने उसको रोकते हुए कहा, "क्या चाहते हैं आप?"

"मैं सारा हिसाव इसी समय करना चाहता हूं। मुझे मेरा सारा रुपया तुरन्त मिल जाना चाहिए और यह ठेकेदारी, जो मैंने इतने परिश्रम से चलाई है, मेरे नाम हो जाए।"

इंडियन पीनल कोड की धारा ४०७-४०८ के अधीन दावा करने की धमकी देकर भगीरथ ने गुणवन्ती और शामसिंह को उसी समय हिसाव करने पर विवश कर लिया।

हिसाव गिना गया। शामसिंह का पूर्ण धन व्यय हो चुका था। गुणवन्ती के लाभ का वहुत भारी भाग शामसिंह सट्टे में फूंक चुका था। अतः भगीरथ पूर्ण कारोवार का मालिक वन गया। गुणवन्ती की कोठी भी भगीरथ के पास विक गई। भगीरथ ने वीस हजार नकद देकर व्यापार और कोठी से गुणवन्ती को पृथक् कर दिया। गुणवन्ती उसी कोठी का एक भाग किराए पर लेकर रहने लगी। इस बीस हज़ार रुपए से उसने

एक कम्पनी के हिस्से खरीद लिए और एक निर्धन स्त्री की भांति रहने लगी।

गुणवन्ती यद्यपि अपने पिता से लड़ी नहीं थी परन्तु उनके व्यवहार से बहुत ही निराश हो चुकी थी और इस कारण उसने उनसे सब सम्पर्क त्याग दिया था।

इस पर भी भाग्य ने अभी उसका पीछा नहीं छोड़ा था। गुणवन्ती ने एक दिन डर्बी का टिकट खरीदा और उसके विस्मय तथा प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा, जब उसने देखा कि उसका प्रथम नम्बर आया है। शीघ्र ही उसको अढ़ाई लाख रुपया मिल गया। इससे उसके पुराने रहन-सहन के ढंग पुनः आ विराजमान हुए। उसके मस्तिष्क में पुनः धन की खुमारी चढ़ गई।

जिस दिन रामसिंह की उससे भेंट हुई थी, उसको 'डर्बी' का रुपया मिल चुका था और इसका खुमार उसके मस्तिष्क में भर चुका था। यही कारण था कि वह उससे अभिमान से भर कर बातें करती रही।

भगीरथ से जब उसने यह सुना कि रामसिंह ने अपनी नौकरानी को घर में डाल लिया है तो वह क्रोध में उबलने लगी। वास्तव में उसको कुछ-कुछ समझ आया था कि एक पुरुष साथ होना कुछ लाभ की बात ही है। उसने रुपया मिलने के पश्चात् प्रयत्न किया था कि वह भगीरथ के साथ ठेकेदारी में पुनः पत्तीदार बन जाए। परन्तु भगीरथ ने उसको कहा था, "जहाँ तक रुपए का प्रश्न है, वह मुझे नहीं चाहिए। जहाँ तक सहायक की आवश्यकता है, तुम किसी भी प्रकार से मेरी सहायता नहीं कर सकतीं। और फिर पत्तीदार के झंझट में अब मैं नहीं पड़ना चाहता।"

इसका अर्थ यह हुआ था कि उसका अढ़ाई लाख रुपया भी अब उसको इतना लाभ नहीं दे सकता था, जितना वह व्यापार में लगा होने से दे सकता था। इससे वह कम्पनियों के हिस्से ही खरीद सकती थी और मध्यम श्रेणी की साधारण स्त्री की भांति जीवन व्यतीत कर सकती थी। वह अनुभव करती थी कि ऐसे समय पर पुरुष की उसको आवश्यकता है। अपने पिता पर उसको विश्वास नहीं रहा था।

इस परिस्थिति में उसको रामसिंह का स्मरण हो आया। वह समझने लगी कि उसका कुछ तो लाभ था ही। वह चाहती थी कि उसकी उससे पुनः सुलह हो जाए।

परन्तु जब उसे पता चला कि उसने नौकरानी को घर में डाल लिया है तो उसे अपनी आशा धूल में मिलती दिखाई देने लगी। इससे उसे क्रोध चढ़ आया। ऐसी अवस्था में वह उससे मिलने उसके घर जा पहुंचा। वह प्रयत्न करना चाहती थी कि किसी प्रकार रामसिंह उस

नौकरानी को छोड़ दे।

सोहनी की मां से उसको कुछ पता नहीं चला। उसने मुहल्ले वालों से पता करना चाहा तो उसे पता चला कि रामसिंह ने उससे विधिवत् विवाह किया है। इससे वह विक्षुब्ध हो उठी।

रामसिंह हरिद्वार से लौटकर कंडेवाल जा पहुंचा था कि एक दिन गुणवन्ती पुनः उसके मकान पर गई। वहां जाकर जब उसे पता चला कि सोहनी कंडेवाल में सुखपूर्वक अपने पति के साथ रह रही है, तो वह पूर्ण रूप से हतोत्साह हो गई।

ऐसी मनःस्थिति में उसको मीरा के विवाह का निमंत्रण मिला। उसको यह देख कि उसको, और उसके पिता के पूर्ण परिवार को, निमंत्रण मिला है, बहुत आश्चर्य हुआ। इस निमंत्रण की पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि वह इस विवाहपर न जाए और साथ ही निमंत्रण को अस्वीकार कर दो-चार जली-कटी सुना दे। फिर उसने सोचा कि इस निमंत्रण का उत्तर ही न दे, परन्तु उसका यह निश्चय भी स्थिर नहीं रहा। विवाह की तिथि के एक दिन पूर्व उसने निश्चय किया कि वह विवाह पर जाएगी और रामसिंह और उसकी नई पत्नी को खूब सुनाएगी। साथ ही अपने को पाक-साफ और निर्दोष सिद्ध करने के लिए उसने मीरा को भेंट में देने के लिए एक भूषणों का सेट तथा कुछ वस्त्र खरीद लिये और मोटर में सवार होकर कंडेवाल जा पहुंची।

कंडेवाल में गुणवन्ती के आने की कोई आशा नहीं रखता था। इस कारण जब वह घर के सामने पहुंच मोटर में से उतरी, तो सब देखते रह गए। गुणवन्ती ने बिना किसी की ओर ध्यान किए अपना बंडल मोटर में से उतरवाया और ड्राईवर को कह कि मोटर को पीपल के पेड़ के नीचे खड़ी कर दे, मकान के अन्दर चली गई।

महिन्दर ने गुणवन्ती को देखा तो उसने दोनों हाथ फैलाकर उसका स्वागत किया और उसको वहां ले गई, जहां अन्य स्त्रियां बैठीं मीरा का शकुन कर रही थीं। वहां पहुंच उसने कहा, "लो भाभी आ गई हैं। मैं कहती थी कि अवश्य आएंगी।"

परमेश्वरी ने उसके लिए अपने पास स्थान बनाते हुए कहा, "आओ आओ गुणवन्ती! बहुत देर करदी है तुमने। इस समय तक तो लड़की की 'माईयां' पड़ जानी चाहिए थीं।"

गुणवन्ती वहां बैठ गई और पश्चात् सब लोग अपने-अपने काम में लग गए। सोहनी भी वहीं थी। एक अपरिचित स्त्री को वहां अच्छे-अच्छे भूषण-वस्त्र पहिने देख गुणवन्ती ने अनुमान किया कि यही उसकी सौतिन

हो सकती है।

जब कार्य समाप्त हुआ तो महिन्दर गुणवन्ती को अपने कमरे में ले गई। वहाँ पहुंच उसने गुणवन्ती की ओर कृतज्ञता भरी दृष्टि में देखते हुए कहा, "भाभी ! तुम आई हो, मैं बहुत ही कृतज्ञ हूं। बताओ भोजन यहाँ ही करोगी अथवा भैया के कमरे में ?"

गुणवन्ती ने हंसते हुए कहा, "महिन्दर ! तुम क्या समझती हो कि मुझको पता नहीं कि उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया है।"

"तभी तो पूछ रही हूं ?"

"मैं समझती हूं कि यहां ही इसी कमरे में मंगवा लो। बाहर गाड़ी का ड्राईवर बैठा है, उसके लिए भी भोजन का प्रबन्ध करना है।"

महिन्दर की सहिष्णुता देख यहाँ गुणवन्ती अपना क्रोध प्रकट नहीं कर सकी। महिन्दर गई और भोजन के लिए कह आई। बाहर गुणवन्ती के विषय में विचार-विनिमय हो रहा था। सुन्दरसिंह का कहना था कि वह आई है तो घर की पतोहू की भाँति ही प्रतिष्ठा पाएगी। उसने रामसिंह से भी कह दिया, "देखो राम ! अमृतसर में उसका तुम्हारे साथ जैसे भी व्यवहार रहा हो, वहाँ जो तुम चाहो करो, यहाँ उसके साथ सद्-व्यवहार ही होगा। मैं नहीं चाहता कि यहाँ उसके साथ किसी प्रकार का भी झगड़ा खड़ा हो जाए।"

रामसिंह जब सोहनी को यही बात बताने गया तो उसने देखा कि सोहनी महिन्दर के कमरे में गुणवन्ती के साथ हँसकर बातें कर रही है। गुणवन्ती भोजन कर रही थी। महिन्दर किसी काम से बाहर आई तो रामसिंह कमरे के भीतर चला गया। उसने वहाँ जाकर कहा, "ओह ! तो श्रीमती जी आ गई हैं ?"

"तो क्या यहाँ आने के लिए स्वीकृति की आवश्यकता थी ?"

"नहीं सरकार ! यह घर आपका है। आप जब भी आएँ और जब तक के लिए यहाँ रहना चाहें रह सकती हैं।"

"सच ?"

"तो क्या मैं झूठ कह रहा हूं ?" कहते-कहते रामसिंह गुणवन्ती के सामने बैठ गया। गुणवन्ती ने खाते हुए कहा, "तुम्हारी बहू भी तो कुछ कह रही है।"

"क्या ?"

"कह रही है कि मैं अब यहाँ रह जाऊँ। नगर में क्या रखा है ?"

"ठीक तो कहती है।"

"मैंने इसको कहा है कि यदि मैं यहाँ रह गई तो वह बेचारी मात पड़

जाएगी। यह बात इसकी समझ में नहीं आई।"

इस समय सोहनी बोल उठी, "परन्तु बताओ न कि मैं क्यों मात पड़ जाऊंगी ?"

"मैंने मात पड़ जाने का अर्थ नहीं समझा। क्यों गुणवन्ती ! क्या मतलब है तुम्हारा ?"

"मतलब तो स्पष्ट ही है। मैं इससे अधिक सुन्दर हूं। मेरे यहाँ आ जाने से किसी भी समय तुम इसको छोड़ दोगे और मेरे पास आ जाओगे।"

रामसिंह हंस पड़ा। उसने कहा, "सोहनी ! कहो अब तुम क्या कहती हो ?"

"मैं तो इसमें कोई कारण नहीं समझती। मैं आपको एक बच्चा नहीं समझती कि बाहरी रंग-रोगन पर लुभक उठेंगे।" सोहनी का कहना था।

"गुणवन्ती ! मेरा विचार है कि सोहनी ठीक ही कहती है। तुम रूप-रंग में इससे श्रेष्ठ हो सकती हो, परन्तु इसके अतिरिक्त भी तो कुछ है, और इसको विश्वास है कि उसमें वह मुझसे बाज़ी ले जाएगी।"

'तो क्या यह मुझको बहुत बुरी औरत समझती है ?"

' नहीं गुणवन्ती बहिन ! सोहनी ने कहा, "मेरे कहने का यह अभि-प्राय नहीं। मैं तो कह रही हूं कि आप आ जाइए। यदि आप जीत भी जाएँगी तब भी मैं एक काम में आपको जीतने नहीं दूंगी। वह काम है सेवा-कार्य। उसमें आप मेरी तुलना नहीं कर सकेंगी।"

"ओह !" गुणवन्ती ने गम्भीर होकर कहा, "सोहनी ! तुम ठीक कहती हो। मैं और मेरी माँ नौकरी नहीं करती रहीं। इस काम में तुम अवश्य बाजी ले जाओगी।"

"इसी से कह रही हूं कि आप आ जाइए। जब इनका मन विनोद के लिए करेगा तो ये अपनी सुन्दर पत्नी के पास चले जायेंगे और सेवा के समय तो ये मेरे पास आ ही जाया करेंगे।"

रामसिंह इस पर हंस पड़ा। उसके हँसने में प्रयोजन यह था कि इस कटाक्ष से दोनों में कहीं झगड़ा न होने दे। इसी समय गुणवन्ती, जो कुछ भेंट में देने के लिए लाई थी, महिन्दर अन्दर लाकर दिखाने लगी। परमेश्वरी और केवली भी आ गईं और इन वस्तुओं को देखने लगीं।

विवाह-कार्य आरम्भ हुआ और समाप्त हुआ। इसमें रात बहुत देर हो गई। इस कारण गुणवन्ती रात वहीं ठहर गई।

अगले दिन गुणवन्ती जाने के लिए तैयार होने लगी तो सुन्दरसिंह ने उसको बुला भेजा। गुणवन्ती आई तो उसने कहा, "देखो बेटी गुणवन्ती! मेरा कहा मानो। अब तो बहुत कमाई हो चुकी है। ठेकेदारी बन्द कर

यहाँ चली आओ। यहाँ अपने पति के पास रहते हुए शोभा पाओगी। और वहाँ पति से दूर रहने में कोई लाभ नहीं।"

गुणवन्ती ने लम्बा साँस खींचते हुए कहा, "चाचा जी! अब ठेकेदारी नहीं रही। किसी कारण से वह सारा कुछ समाप्त हो गया है। उसकाम का सब रुपया समाप्त हो चुका है। अब तो मेरे पास लौटरी का अढ़ाई लाख रुपया है और मैं अपनी ही कोठी में किराया देकर रहती हूं।

"इस कारण यह बात तो मेरे यहां आने अथवा न आने में बाधा नहीं हो सकती। यहां आने में जो वस्तु अब बाधा बन गई है, वह आपके लड़के का नवीन विवाह है।"

"हूं, मैंने रामसिंह और सोहनी से बातचीत की है। मुझे विश्वास है कि उनको तुम्हारे यहां आने से दुःख कदापि नहीं होगा। रही तुम्हारी ओर से कोई आपत्ति। वह तुम स्वयं सोच लो। मुझसे पूछो तो मैं इस प्रकार समझाता हूँ कि तुमको अपने पति से पृथक् रहते हुए चार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तो जैसे तुम वहां रह रही हो, वैसे ही यहां तुम एक पृथक् कमरे में ठहर सकोगी। इसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। यहां रहकर दोनों में सुलह हो जाने की अधिक संभावना है।

"परन्तु एक बात औरहै, जिसकारण मैं कहता हूं कि तुम एक-दो दिन और ठहर जाओ। मैं कल महिन्दर का मास्टर जगतराम से विवाह कर रहा हूं।"

"सच ? तो मैं अवश्य ठहरूँगी। आगे के लिए तो अभी नहीं कह सकती। वह तो आपके लड़के से बातचीत कर ही निर्णय करूंगी, परन्तु इस विवाह तक मैं यहीं रहूंगी।

"ठीक है। तुम आपस में निर्णय कर लो। गांव के हाल-चाल भी देख लो। वह अब वैसा बदसूरत और गन्दा नहीं, जैसा तुमने उस समय देखा था।"

इतना कह सुन्दरसिंह उठकर चला गया। रामसिंह और सोहनी वहां उसके पास आ बैठे। सोहनी ने कहा, "बहिन गुणवन्ती ! आप तो अमृतसर की शानदार कोठियों में रही हैं और मैं अभी तक एक कच्चे मकान में, जिसका फर्श भी कच्चा थाऔर जिसको साफ-सुथरा रखनेके लिए हर दूसरे दिन गोबर की पुताई करनी पड़ती थी। इस कारण मैं यह तो नहीं कह सकती कि यह स्थान आपकी कोठी से अधिक सुन्दर है। इस पर भी इतना तो आप भी मानेंगी कि यह नदीका किनारा वहां नहीं मिलसकता। कितना सुन्दर स्थान है यह ? जब सवेरे मन्दिर पर जल चढ़ाने जाती हूं तो जी करता है कि वहां ही बैठकर भगवान का जप किया करूँ।"

गुणवन्ती हँस पड़ी और पूछने लगी, "मेरी छोटी बहिन ! क्या तुमने इनसे विवाह इस कारण किया है कि इनका गांव नदी के किनारे है ?"

सोहनी इस प्रश्न ने विचार में पड़ गई। गुणवन्ती उसको निरुत्तर समझ पुनः कहने लगी, "विवाह तो इन गुरु के प्यारों से किया है न ? तनिक इनके जीवन की कथा सुनोगी तो दांतों तले उँगली देने लगोगी और यहां आने पर पश्चात्ताप करने लगोगी।"

रामसिंह समझ गया कि पारा चढ़ता जाता है। इस कारण उसने सोहनी की सहायता के लिए कह दिया, "गुणवन्ती ! मैं विवाह से पूर्व अपनी पूर्ण कथा इसको बता चुका हूं। जानती हो, इसने क्या कहा था? यह कहने लगी, 'आप कुछ भी रहे हों मुझको उससे क्या ? मैं तो यह जानती हूं कि एक वर्ष से आप मुझसे कैसा व्यवहार करते रहे हैं। मैं तो यही कहूंगी कि आप देवता हैं। जब तक आपका व्यवहार ऐसा रहेगा, मैं तो यही समझूंगी कि यह बात आपने डराने के लिए कही है।'

"मैंने इसको कहा था कि कथा तो सत्य ही है, पर आज अब मैं वैसा नहीं बनूंगा। इस पर यह कहने लगी कि मुझे आपकी बातों पर विश्वास नहीं होता।"

"मैं यही तुमसे भी कहने गया था, परन्तु तुमको मेरे वचन का विश्वास नहीं आया। और मैं तुम्हारी आंखों को देख रहा हूं कि तुमको अभी भी विश्वास नहीं आ रहा।"

"विश्वास कैसे करूं ? इस भोलभाली लड़की को ठगकर यहां ले आए हो। मुझको पक्का विश्वास है कि तुम इसको भी ऐसे ही छोड़ दोगे, जैसे तुमने मुझे छोड़ दिया था।"

"यह तो मैं ही जानता हूं कि तुमने मुझे छोड़ा था या मैंने तुम्हें छोड़ा था। देखो सोहनी !" रामसिंह ने सोहनी की ओर देखते हुए कहा, "तुमको गुणवन्ती की बातों पर गम्भीरतापूर्वक मनन करना चाहिए। इससे तुम जरा यह भी पूछ लो कि यदि मैं तुमको छोड़ दूं तो तुमको क्या करना चाहिए। इसने तो पुलिस बुलाने की धमकी देकर मुझको कोठी से निकाल दिया था।"

"सच ?" सोहनी ने विस्मय में पूछा, "मुझको विश्वास नहीं आता। इतनी सुन्दर, पढ़ी-लिखी स्त्री और और आपके बच्चों की मां, भला आपको पुलिस के हवाले करना चाहती थी ? जी नहीं आप दोनों मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। ये कह रही थीं कि आप खराबी करते थे और आप कहते हैं कि आप बुरा व्यवहार करती थीं। भला मैं दोनों में से किसका विश्वास करूं ?"

गुणवन्ती समझ नहीं सकी कि सोहनी नाटक कर रही है, अथवा सत्य

ही अपने मन में उठ रहे संशय को प्रकट कर रही है। वह उसके मन के भावों को न समझ कहने लगी, "ये बहुत बुरे आदमी हैं सोहनी ! इनके एक मित्र हैं फकीरचन्द। उनकी स्त्री सुशील......।"

सोहनी ने बातचीत में ही काटकर कहा, "मैं उसको जानती हूं। एक दिन वह आई थी और थोड़े से कपड़े और रुपये ऐंठने के लिए कहने लगी कि वह इनकी पत्नी है। जब मुझको पता चला कि वह किसी दूसरे की पत्नी है, तो मेरे मन में उसके प्रति ग्लानि भर गई। ऐसी स्त्री तो वेश्या ही हो सकती है।"

गुणवन्ती इस प्रकार बीच में टोकी जाने पर आश्चर्य में सोहनी का मुख देखने लगी। रामसिंह ने बात बदल दी। उसने कहा, "देखो गुणवन्ती ! एक दूसरे को समझने के लिए कुछ दिन तक साथ-साथ रहना आवश्यक है। मेरा कहा मानो, यहां ही रह जाओ। बच्चों को मैं अमृतसर जाकर ले आऊँगा।"

गुणवन्ती आई तो थी लड़ाई-झगड़ा करने। उसके पास एक ही 'ट्रंप कार्ड' था। वह रामसिंह के पिछले इतिहास को बताकर उसको सोहनी की दृष्टि में गिराना चाहती थी परन्तु वह ऐसा कर नहीं सकी। इससे वह खीझ उठी और महिन्दर के कमरे में चली गई।

वह चाहती थी कि महिन्दर को बधाई देकर उसी समय अमृतसर चली जाए, परन्तु महिन्दर की सरस, तरल और बड़ी-बड़ी आंखें देख वह जा नहीं सकी। वह उसके विवाह तक के लिए वहीं ठहर गई।

विवाह के अगले दिन वह अमृतसर लौट गई। मार्ग में वह सोचती जा रही थी कि कुछ भी हो कंडेवाल एक गांव ही है, वह गांव में नहीं रह सकती। यदि रामसिंह सोहनी के साथ अमृतसर चलकर रहना चाहता तो शायद वह पुनः उसके साथ मुलह कर लेता परंतु रामसिंह तैयार नहीं था और गुणवन्ती गांव में रहना नहीं चाहती थी।

उसे गांव में कुछ अभाव सा प्रतीत होता था। यद्यपि वह इस अभाव को समझ नहीं सकी थी, इस पर भी वह लौटी जा रही थी। क्यों ? वह समझ नहीं पाती थी। क्या यह नगर में रहने की लालसा था अथवा क्या यह अपने को गांव में आत्मसात् न कर सकने की अयोग्यता थी। ●